अध्याय २४

आत्माराम श्लोक की ६१ व्याख्याएँ

इस अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में इस प्रकार दिया है। श्री सनातन गोस्वामी के अनुरोध पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने *श्रीमद्भागवत* के सुविख्यात श्लोक *आत्मारामाश्च मुनयः* की व्याख्या की। उन्होंने ६१ भिन्न प्रकारों से इस श्लोक की व्याख्या प्रस्तुत की। उन्होंने सभी शब्दों का विश्लेषण किया और प्रत्येक शब्द की विभिन्न अर्थों के साथ व्याख्या की। उन्होंने *च* तथा *अपि* शब्द जोड़कर श्लोक के विभिन्न अर्थों का वर्णन किया। इसके बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सभी वर्गों के अध्यात्मवादी (ज्ञानी, कर्मी तथा योगी) इस श्लोक की व्याख्या अपने-अपने अनुसार करते हैं, किन्तु यदि वे इन विधियों को त्यागकर कृष्ण की शरण ग्रहण कर लें, जैसा इस श्लोक से ही संकेत मिलता है, तो वे इस श्लोक के वास्तविक अर्थ को समझ सकते हैं। इस सम्बन्ध में श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक कहानी सुनाई कि किस तरह महर्षि नारद ने एक शिकारी को महान् वैष्णव बनाया, और इसकी प्रशंसा नारद के मित्र पर्वत मुनि ने किस तरह की। इसके बाद सनातन गोस्वामी ने चैतन्य महाप्रभु की स्तुति की और श्री चैतन्य महाप्रभु ने *श्रीमद्भागवत* की कीर्ति का वर्णन किया। इसके बाद महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को *हरिभक्ति-विलास* की रूपरेखा बतलाई, जिसे बाद में सनातन गोस्वामी ने सभी वैष्णवों के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्त का रूप प्रदान किया।

आत्मारामेति पद्यार्कस्यार्थांशून् यः प्रकाशयन् ।
जगत्तमो जहारान्ध्रात्स चैतन्योदयाचलः ॥१॥

आत्मारामेति पद्यार्कस्यार्थांशून् यः प्रकाशयन् ।
जगत्तमो जहाराव्यात्स चैतन्योदयाचलः ॥ १ ॥

आत्माराम इति—आत्माराम शब्द से प्रारम्भ; **पद्य**—श्लोक; **अर्कस्य**—सूर्य के समान; **अर्थ-अंशून्**—विभिन्न अर्थों की चमकती किरणें; **यः**—जिन्होंने; **प्रकाशयन्**—प्रकाशित करके; **जगत्-तमः**—भौतिक जगत् के अन्धकार को; **जहार**—नष्ट कर दिया; **अव्यात्**—रक्षा करें; **सः**—वे; **चैतन्य-उदय-अचलः**—श्री चैतन्य महाप्रभु, जो सूर्योदय की पूर्व दिशा के समान हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो, जिन्होंने पूर्व दिशा के क्षितिज की तरह व्यवहार किया, जहाँ आत्माराम श्लोक का सूर्य उदित हुआ। उन्होंने विभिन्न अर्थों के रूप में इसकी किरणें बिखेरीं और इस तरह उन्होंने भौतिक जगत् के अन्धकार को दूर किया। वे ब्रह्माण्ड की रक्षा करें।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ २ ॥
जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ २ ॥

जय जय—जय हो; **श्री-चैतन्य**—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **जय**—जय हो; **नित्यानन्द**—नित्यानन्द प्रभु की; **जय**—जय हो; **अद्वैत-चन्द्र**—अद्वैत आचार्य की; **जय**—जय हो; **गौर-भक्त-वृन्द**—भगवान् चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैतचन्द्र की जय हो तथा श्री चैतन्य के समस्त भक्तों की जय हो!

तबे सनातन प्रभुर चरणे धरिया ।
पुनरपि कहे किछु विनय करिया ॥ ३ ॥
तबे सनातन प्रभुर चरणे धरिया ।
पुनरपि कहे किछु विनय करिया ॥ ३ ॥

तबे—फिर; **सनातन**—सनातन गोस्वामी; **प्रभुर चरणे धरिया**—श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल पकड़कर; **पुनरपि**—दोबारा; **कहे**—कहते हैं; **किछु**—कुछ; **विनय करिया**—अत्यन्त विनम्रता के साथ।

अनुवाद

इसके बाद सनातन गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिए और विनीत भाव से इस प्रकार याचना की।

'पूर्वे शुनियाछोँ, तुमि सार्वभौम-स्थाने ।
एक श्लोके आठार अर्थ कैराछ व्याख्याने ॥ ४ ॥

'पूर्वे शुनियाछों, तुमि सार्वभौम-स्थाने ।
एक श्लोके आठार अर्थ कैराछ व्याख्याने ॥ ४ ॥

पूर्वे—पहले; **शुनियाछों**—मैंने सुना; **तुमि**—आपने; **सार्वभौम-स्थाने**—सार्वभौम भट्टाचार्य के स्थान पर; **एक श्लोके**—एक श्लोक में; **आठार अर्थ**—१८ अर्थ; **कैराछ व्याख्याने**—व्याख्यान किये।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने कहा, "हे प्रभु, मैंने सुना है कि आप इससे पहले सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर आत्माराम श्लोक की अठारह प्रकार से विविध व्याख्याएँ कर चुके हैं।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूत-गुणो हरिः ॥ ५ ॥

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूत-गुणो हरिः ॥ ५ ॥

आत्म-आरामाः—जो लोग भगवान् की सेवा में दिव्य रूप से लगे रहने में आनन्द लेते हैं; **च**—तथा; **मुनयः**—ऐसे महान् साधु, जिन्होंने भौतिक इच्छाओं, सकाम कर्मों इत्यादि का पूर्णतया त्याग कर दिया है; **निर्ग्रन्थाः**—जिन्हें किसी भी भौतिक इच्छा में रुचि नहीं है; **अपि**—भी; **उरुक्रमे**—अद्भुत कार्यकलाप करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति; **कुर्वन्ति**—करते हैं; **अहैतुकीम्**—निःस्वार्थ या भौतिक इच्छाओं से रहित; **भक्तिम्**—प्रेममयी सेवा; **इत्थम्-भूत**—इस प्रकार के (आत्म-तुष्ट लोगों के भी ध्यान को आकृष्ट करने वाले); **गुणः**—जिनके दिव्य गुण हैं; **हरिः**—परम भगवान्।

अनुवाद

"'जो लोग आत्म सन्तुष्ट (आत्माराम) हैं तथा बाह्य भौतिक इच्छाओं द्वारा आकृष्ट नहीं होते, वे भी श्रीकृष्ण की प्रेमाभक्ति द्वारा आकृष्ट हो जाते हैं, क्योंकि उनके गुण दिव्य और कार्यकलाप अद्भुत हैं। भगवान् हरि इसीलिए कृष्ण कहलाते हैं, क्योंकि उनके लक्षण इतने दिव्य और आकर्षक हैं।

तात्पर्य

यह *श्रीमद्भागवत* (१.७.१०) का सुप्रसिद्ध आत्माराम श्लोक है।

आश्चर्य शुनिया मोर उत्कण्ठित मन ।
कृपा करि' कह यदि, जुड़ाय श्रवण' ॥६॥
आश्चर्य्य शुनिया मोर उत्कण्ठित मन ।
कृपा करि' कह य्यदि, जुड़ाय श्रवण' ॥६॥

आश्चर्य्य—अद्भुत; **शुनिया**—सुनकर; **मोर**—मेरा; **उत्कण्ठित**—आतुर; **मन**—मन; **कृपा करि'**—अपनी कृपा करके; **कह य्यदि**—यदि आप कहें; **जुड़ाय**—आनन्द देगा; **श्रवण**—कानों को।

अनुवाद

"मैंने यह अद्भुत कथा सुनी है, इसीलिए मैं आपकी व्याख्या पुनः सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ। यदि आप इसे फिर से कहें, तो मैं इसे सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हूँगा।"

प्रभु कहे,—"आमि बातुल, आमार बचने ।
सार्वभौम बातुल ताहा सत्य करि' माने ॥७॥
प्रभु कहे,—"आमि वातुल, आमार वचने ।
सार्वभौम वातुल ताहा सत्य करि' माने ॥७॥

प्रभु कहे—श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **आमि**—मैं; **वातुल**—एक उन्मत्त व्यक्ति; **आमार वचने**—मेरे वचनों को; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **वातुल**—एक अन्य उन्मत्त व्यक्ति; **ताहा**—उन्हें (मेरी व्याख्या को); **सत्य करि' माने**—सत्य समझ बैठे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु बोले, "मैं एक पागल व्यक्ति हूँ और सार्वभौम भट्टाचार्य दूसरे पागल व्यक्ति हैं। अतएव उन्होंने मेरे शब्दों को सच मान लिया।

किवा प्रलापिलाङ, किछु नाहिक स्मरणे ।
तोमार सङ्ग-बले यदि किछु हय मने ॥८॥

किबा प्रलापिलाङ; किछु नाहिक स्मरणे ।
तोमार सङ्ग-बले यदि किछु हय मने ॥८॥

किबा—क्या; **प्रलापिलाङ**—मैंने कह दिया; **किछु**—कुछ भी; **नाहिक**—नहीं है; **स्मरणे**—याद; **तोमार**—तुम्हारे; **सङ्ग-बले**—संग के बल द्वारा; **यदि**—अगर; **किछु**—कुछ; **हय**—आता है; **मने**—मेरे मन में।

अनुवाद

"मुझे स्मरण नहीं है कि मैंने उस सम्बन्ध में क्या कहा था, किन्तु यदि तुम्हारी संगति से मेरे मन में कुछ आता है, तो मैं उसे बतलाऊँगा।

सहजे आमार किछु अर्थ नाहि भासे ।
तोमा-सबार सङ्ग-बले ये किछु प्रकाशे ॥९॥

सहजे आमार किछु अर्थ नाहि भासे ।
तोमा-सबार सङ्ग-बले ये किछु प्रकाशे ॥९॥

सहजे—सामान्यतया; **आमार**—मेरा; **किछु**—कोई; **अर्थ**—अर्थ; **नाहि भासे**—नहीं निकलता; **तोमा-सबार सङ्ग-बले**—तुम सबके संग के बल पर; **ये**—जो; **किछु**—कुछ; **प्रकाशे**—प्रकट हो सकता है।

अनुवाद

"सामान्यतया मैं अपने आप कोई व्याख्या नहीं कर सकता, किन्तु भले ही तुम्हारी संगति से कुछ अपने आप प्रकट हो जाये।

एकादश पद एई श्लोके सुनिर्मल ।
पृथक्‌ना अर्थ पदे करे झलमल ॥१०॥

एकादश पद एइ श्लोके सुनिर्मल ।
पृथक् नाना अर्थ पदे करे झलमल ॥ १० ॥

एकादश पद—ग्यारह शब्द; **एइ**—इस; **श्लोके**—श्लोक में; **सु-निर्मल**—अत्यन्त स्पष्ट; **पृथक्**—अलग से; **नाना**—अनेक; **अर्थ**—अर्थ; **पदे**—प्रत्येक शब्द में; **करे झलमल**—प्रकाशित होते हैं।

अनुवाद

"इस श्लोक में ग्यारह स्पष्ट शब्द हैं, किन्तु जब उनका अलग-अलग अध्ययन किया जाता है, तो प्रत्येक शब्द से विविध अर्थ झलकते हैं।

तात्पर्य

ग्यारह अलग-अलग शब्द हैं—(१) *आत्मारामाः,* (२) *च,* (३) *मुनयः,* (४) *निर्ग्रन्थाः,* (५) *अपि,* (६) *उरुक्रमे,* (७) *कुर्वन्ति,* (८) *अहैतुकीम्,* (९) *भक्तिम्,* (१०) *इत्थम्-भूत-गुणः* तथा (११) *हरिः ।* श्री चैतन्य महाप्रभु इन ग्यारहों शब्दों के अलग-अलग अर्थ तथा व्याख्यायें बतलायेंगे।

'आत्मा'-शब्दे ब्रह्म, देह, मन, यत्न, धृति ।
बुद्धि, स्वभाव,—एই সাত অর্থ-প্রাপ্তি ॥ ১১ ॥
'आत्मा'-शब्दे ब्रह्म, देह, मन, यत्न, धृति ।
बुद्धि, स्वभाव,—एइ सात अर्थ-प्राप्ति ॥ ११ ॥

आत्मा-शब्दे—आत्मा शब्द द्वारा; **ब्रह्म**—परम सत्य; **देह**—शरीर; **मन**—मन; **यत्न**—प्रयास; **धृति**—दृढ़ता; **बुद्धि**—बुद्धि; **स्वभाव**—स्वभाव; **एइ सात**—ये सात; **अर्थ-प्राप्ति**—अर्थ प्राप्त होते हैं।

अनुवाद

"आत्मा शब्द के सात विभिन्न अर्थ हैं : परम सत्य, शरीर, मन, प्रयत्न, दृढ़ता, बुद्धि तथा स्वभाव।

''आत्मा देह-मनो-ब्रह्म-स्वभाव-धृति-বুদ্ধিষু, প্রয়ত্নে চ'' ইতি ॥ ১২ ॥
"आत्मा देह-मनो-ब्रह्म-स्वभाव-धृति-बुद्धिषु, प्रयत्ने च" इति ॥ १२ ॥

आत्मा—आत्मा शब्द; **देह**—शरीर; **मनः**—मन; **ब्रह्म**—परम सत्य; **स्वभाव**—स्वभाव; **धृति**—दृढ़ता; **बुद्धिषु**—बुद्धि के अर्थ में; **प्रयत्ने**—प्रयत्न में; **च**—तथा; **इति**—इस प्रकार।

अनुवाद

"'आत्मा के पर्याय हैं—शरीर, मन, परम सत्य, स्वभाव, धृति, बुद्धि तथा प्रयत्न।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *विश्व-प्रकाश* कोश का है।

एइ साते रमे येइ, सेइ आत्माराम-गण ।
आत्माराम-गणेर आगे करिब गणन ॥ १३ ॥

एइ साते—इन सात में; **रमे**—आनन्द लेते हैं; **येइ**—जो; **सेइ**—वे; **आत्माराम-गण**—आत्माराम लोग; **आत्माराम-गणेर**—आत्माराम व्यक्तियों की; **आगे**—आगे; **करिब गणन**—गिनती करेंगे।

अनुवाद

"'आत्माराम' शब्द उसका द्योतक है, जो इन सातों (परम सत्य, शरीर, मन इत्यादि) में आनन्द लेता है। बाद में मैं आत्मारामों के नाम गिनाऊँगा।

'मुनि'-आदि शब्देर अर्थ शुन, सनातन ।
पृथक्पृथकर्थ पाछे करिब मिलन ॥ १४ ॥

मुनि—मुनि शब्द; **आदि**—आदि; **शब्देर**—शब्दों का; **अर्थ**—अर्थ; **शुन**—सुनो; **सनातन**—मेरे प्रिय सनातन; **पृथक्-पृथक्**—अलग-अलग; **अर्थ**—अर्थ; **पाछे**—बाद में; **करिब मिलन**—मैं मिलाऊँगा।

अनुवाद

"हे सनातन, पहले 'मुनि' इत्यादि अन्य शब्दों के अर्थ सुनो। सर्वप्रथम मैं उनके अलग-अलग अर्थ बतलाऊँगा और बाद में उन्हें जोड़ूँगा।

'मुनि'-शब्दे मनन-शील, आर कहे मौनी ।
तपस्वी, व्रती, यति, आर ऋषि, मुनि ॥ १५॥

'मुनि'-शब्दे मनन-शील, आर कहे मौनी ।
तपस्वी, व्रती, यति, आर ऋषि, मुनि ॥ १५॥

मुनि-शब्दे—मुनि शब्द द्वारा; **मनन-शील**—जो विचारवान है; **आर**—तथा; **कहे**—इसका अर्थ; **मौनी**—जो मौन है; **तपस्वी**—एक तपस्वी; **व्रती**—महान् व्रत करने वाला; **यति**—संन्यासी; **आर**—तथा; **ऋषि**—साधु; **मुनि**—ये मुनि कहलाते हैं।

अनुवाद

"'मुनि' शब्द उसका सूचक है, जो मननशील है, जो गम्भीर या मौन रहता है, तपस्वी है, जो बड़े व्रत रखता है, जो संन्यासी है और जो सन्त है। ये 'मुनि' शब्द के विविध अर्थ हैं।

'निर्ग्रन्थ'-शब्दे कहे, अविद्या-ग्रन्थि-हीन ।
विधि-निषेध-वेद-शास्त्र-ज्ञानादि-विहीन ॥ १६॥

'निर्ग्रन्थ'-शब्दे कहे, अविद्या-ग्रन्थि-हीन ।
विधि-निषेध-वेद-शास्त्र-ज्ञानादि-विहीन ॥ १६॥

निर्ग्रन्थ-शब्दे—*निर्ग्रन्थ* शब्द द्वारा; **कहे**—अर्थ है; **अविद्या**—अज्ञान के; **ग्रन्थि-हीन**—बन्धन से रहित; **विधि-निषेध**—विधि और निषेध के नियमों के; **वेद-शास्त्र**—वैदिक शास्त्र; **ज्ञान-आदि**—ज्ञान आदि; **विहीन**—रहित।

अनुवाद

"'निर्ग्रन्थ' शब्द उसका सूचक है, जो अज्ञान की भौतिक गाँठ से छूट चुका है। यह उसका भी सूचक है, जो वैदिक साहित्य में दिये गये समस्त विधि-विधानों से विहीन है। यह ज्ञान से शून्य का भी सूचक है।

मूर्ख, नीच, म्लेच्छ आदि शास्त्र-रिक्त-गण ।
धन-सञ्चयी—निर्ग्रन्थ, आर ये निर्धन ॥ १७॥

मूर्ख, नीच, म्लेच्छ आदि शास्त्र-रिक्त-गण ।
धन-सञ्चयी—निर्ग्रन्थ, आर ये निर्धन ॥ १७॥

मूर्ख—मूर्ख, अनपढ़ लोग; **नीच**—अधम कुल के; **म्लेच्छ**—धर्मविहीन अशुद्ध लोग; **आदि**—आदि; **शास्त्र-रिक्त-गण**—शास्त्रों में बताये गये सभी नियमों से रहित; **धन-सञ्चयी**—एक पूँजीपति (जो सम्पत्ति इकट्ठी करता है); **निर्ग्रन्थ**—*निर्ग्रन्थ* कहे जाते हैं; **आर**—तथा; **ग्रे**—जो; **निर्धन**—धन रहित।

अनुवाद

"'निर्ग्रन्थ' उनका भी सूचक है, जो अशिक्षित हैं, नीच हैं, दुराचारी हैं, असंयमित हैं और जो वैदिक साहित्य के प्रति आदर से रहित हैं। यह शब्द पूँजीपति तथा निर्धन का भी सूचक है।

निर्निश्चये निष्क्रमार्थे निर्निर्माण-निषेधयोः ।
ग्रन्थो धनेऽथ सन्दर्भे वर्ण-सङ्ग्रथनेऽपि च ॥१८॥

निर्निश्चये निष्क्रमार्थे निर्निर्माण-निषेधयोः ।
ग्रन्थो धनेऽथ सन्दर्भे वर्ण-सङ्ग्रथनेऽपि च ॥१८॥

निः—*निः* उपसर्ग; **निश्चये**—निश्चय के भाव में; **निः**—*निः* उपसर्ग; **क्रम-अर्थे**—क्रम के अर्थ में; **निः**—*निः* उपसर्ग; **निर्माण**—निर्माण के अर्थ में; **निषेधयोः**—निषेध के अर्थ में; **ग्रन्थः**—ग्रन्थ शब्द; **धने**—सम्पत्ति के अर्थ में; **अथ**—तथा; **सन्दर्भे**—संकलित ग्रन्थ; **वर्ण-सङ्ग्रथने**—शब्दों को जोड़ने के अर्थ में; **अपि**—तथा; **च**—और।

अनुवाद

"'उपसर्ग "निः" का प्रयोग निश्चय, वर्गीकरण, निर्माण या निषेध के अर्थ में किया जाता है। "ग्रन्थ" शब्द का अर्थ धन, निबन्ध तथा शब्दों को जोड़ना है।'"

तात्पर्य

यह भी *विश्व-प्रकाश* कोश का एक अन्य उद्धरण है।

'उरुक्रम'-शब्दे कहे, बड़ याँर क्रम ।
'क्रम'-शब्दे कहे एइ पाद-विक्षेपण ॥१९॥

'उरुक्रम'-शब्दे कहे, बड़ याँर क्रम ।
'क्रम'-शब्दे कहे एइ पाद-विक्षेपण ॥१९॥

उरुक्रम-शब्दे—ऊरुक्रम शब्द द्वारा; **कहे**—अर्थ होता है; **बड़**—विराट्; **याँर**—जिसके;

क्रम—कदम; **क्रम-शब्दे**—*क्रम* शब्द द्वारा; **कहे**—अर्थ होता है; **एइ**—यह; **पाद-विक्षेपण**—पैर को आगे बढ़ाना।

अनुवाद

"'उरुक्रम' शब्द का अर्थ है, जिसका क्रम अर्थात् कदम बड़ा हो। 'क्रम' शब्द का अर्थ है "पाँव को आगे रखना" अर्थात् कदम, डग।

शक्ति, कम्प, परिपाटी, युक्ति, शक्त्ये आक्रमण ।
चरण-चालने काँपाइल त्रिभुवन ॥ २० ॥

शक्ति, कम्प, परिपाटी, युक्ति, शक्त्ये आक्रमण ।
चरण-चालने काँपाइल त्रिभुवन ॥ २० ॥

शक्ति—शक्ति; **कम्प**—कम्पन; **परिपाटी**—विधि; **युक्ति**—तर्क; **शक्त्ये**—बलपूर्वक; **आक्रमण**—आक्रमण; **चरण-चालने**—चरण को हिलाकर; **काँपाइल**—कँपा दिया; **त्रि-भुवन**—तीनों लोकों को।

अनुवाद

"'क्रम' के अन्य अर्थ भी हैं—शक्ति, काँपना, विधि, तर्क तथा आगे बढ़कर बलपूर्वक आक्रमण करना। इस तरह वामन ने तीनों लोकों को कँपा दिया था।

तात्पर्य

उरु का अर्थ है अतीव विशाल तथा *क्रम* का अर्थ है डग, पदचाप या कदम। जब भगवान् वामनदेव को तीन पग भूमि दे दी गई, तो उन्होंने तीनों कदमों को इतना बढ़ाया कि उन्हीं में सारा ब्रह्माण्ड समेट लिया। इस तरह तीनों लोक काँपने लगे और इसीलिए भगवान् विष्णु के अवतार श्री वामनदेव उरुक्रम कहे जाते हैं।

বিষ্ণোর্নু বীর্য-গণনাং কতমোঽর্হতীহ
যঃ পার্থিবান্যপি কবির্বিমমে রজাংসি ।
চস্কম্ভ যঃ স্ব-রংহসাস্খলতা ত্রি-পৃষ্ঠং
যস্মাদ্ত্রি-সাম্য-সদনাদুরু কম্পয়ানম্ ॥ ২১ ॥

विष्णोर्नु वीर्य्य-गणनां कतमोऽर्हतीह
यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ।
चस्कम्भ यः स्व-रंहसास्खलता त्रि-पृष्ठं
यस्मात्त्रि-साम्य-सदनादुरु कम्पयानम् ॥ २१ ॥

विष्णोः—भगवान् विष्णु की; **नु**—निश्चित रूप से; **वीर्य्य-गणनाम्**—विभिन्न शक्तियों की गिनती; **कतमः**—कौन; **अर्हति**—करने में समर्थ है; **इह**—इस संसार में; **यः**—जिसने; **पार्थिवानि**—पृथ्वी के; **अपि**—यद्यपि; **कविः**—एक विद्वान; **विममे**—गणना कर ली है; **रजांसि**—परमाणुओं की; **चस्कम्भ**—वश में कर लिया; **यः**—जिन्होंने; **स्व**—अपनी; **रंहसा**—शक्ति द्वारा; **अस्खलता**—बिना रूकावट के; **त्रि-पृष्ठम्**—सर्वोपरि लोक (सत्यलोक); **यस्मात्**—कुछ कारण से; **त्रि-साम्य**—जहाँ तीन गुणों की समता है; **सदनात्**—स्थान से (भौतिक स्थान के मूल से); **उरु कम्पयानम्**—जोर से काँपने लगे।

अनुवाद

'"भले ही विद्वान व्यक्ति इस भौतिक जगत् के सूक्ष्म परमाणुओं की गणना कर ले, फिर भी वह भगवान् विष्णु की शक्तियों की गणना नहीं कर सकता। भगवान् विष्णु ने वामन अवतार के रूप में भौतिक जगत् के मूल से लेकर सत्यलोक तक के सारे लोकों को बिना किसी बाधा के वश में कर लिया। निस्सन्देह, उन्होंने अपने कदमों के बल से प्रत्येक लोक को कँपा दिया।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (२.७.४०) से है। *ऋग्वेद मन्त्र* (१.२.१५४.१) में कहा गया है :

ॐ विष्णोर्नु वीर्याणि कं प्रावोचं
यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
योऽस्कम्भयद् उत्तरं सधस्थं
विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥

इस श्लोक का अर्थ लगभग *श्रीमद्भागवत* के उपरि-लिखित श्लोक के समान ही है।

বিভু-রূপে ব্যাপে, শক্ত্যে ধারণ-পোষণ ।
মাধুর্য-শক্ত্যে গোলোক, ঐশ্বর্যে পরব্যোম ॥২২॥

विभु-रूपे व्यापे, शक्त्ये धारण-पोषण ।
माधुर्य्य-शक्त्ये गोलोक, ऐश्वर्य्ये परव्योम ॥ २२ ॥

विभु-रूपे—अपने सर्वव्यापक रूप में; **व्यापे**—व्याप्त हो जाते हैं; **शक्त्ये**—अपनी शक्ति द्वारा; **धारण-पोषण**—पालन तथा पोषण करते हैं; **माधुर्य्य-शक्त्ये**—अपनी माधुर्य शक्ति द्वारा; **गोलोक**—गोलोक वृन्दावन; **ऐश्वर्य्ये**—तथा ऐश्वर्य द्वारा; **पर-व्योम**—आध्यात्मिक जगत्।

अनुवाद

"अपने सर्वव्यापी रूप के माध्यम से पूर्ण पुरुषोत्तम पुरुषोत्तम भगवान् ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का विस्तार किया है। वे अपनी असाधारण शक्ति से इस सृष्टि का धारण और पोषण करते हैं। वे अपनी माधुर्य शक्ति से गोलोक वृन्दावन का पालन करते हैं। वे अपने छः ऐश्वर्यों से अनेक वैकुण्ठ लोकों का पालन करते हैं।

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण अपने विराट् रूप से सृष्टि को आच्छादित करते हैं। वे सारे लोकों को धारण करके अपनी अचिन्त्य शक्तियों से उनका पालन करते हैं। इसी तरह वे अपने माधुर्य-प्रेम से अपने निजी धाम गोलोक वृन्दावन का पालन करते हैं और अपने ऐश्वर्यों से वैकुण्ठ लोकों से युक्त आध्यात्मिक जगत् का पालन करते हैं।

माया-शक्त्ये ब्रह्माण्डादि-परिपाटी-सृजन ।
'उरुक्रम'-शब्देर एइ अर्थ निरूपण ॥ २३ ॥
माया-शक्त्ये ब्रह्माण्डादि-परिपाटी-सृजन ।
'उरुक्रम'-शब्देर एइ अर्थ निरूपण ॥ २३ ॥

माया-शक्त्ये—अपनी बहिरंगा शक्ति द्वारा; **ब्रह्माण्ड-आदि**—भौतिक ब्रह्माण्डों की; **परिपाटी**—एक क्रमबद्ध व्यवस्था; **सृजन**—सृष्टि; **उरुक्रम-शब्देर**—उरुक्रम शब्द का; **एइ**—यही; **अर्थ**—अर्थ; **निरूपण**—निश्चित किया गया है।

अनुवाद

"'उरुक्रम' शब्द पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का द्योतक है, जिन्होंने अपनी बहिरंगा शक्ति से असंख्य ब्रह्माण्डों की सम्यक् रचना की है।

''क्रमः शक्तौ परिपाट्यां क्रमश्चालन-कम्पयोः'' ॥२४॥

"क्रमः शक्तौ परिपाट्यां क्रमश्चालन-कम्पयोः" ॥२४॥

क्रमः—*क्रम* शब्द; **शक्तौ**—शक्ति के अर्थ में; **परिपाट्याम्**—सुव्यवस्थित करने के अर्थ में; **क्रमः**—*क्रम* शब्द; **चालन**—गति में; **कम्पयोः**—काँपने में।

अनुवाद

'''''क्रम" शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। यह शक्ति, क्रमबद्ध योजना, डग (पग), चालन या कम्पन के लिए प्रयुक्त होता है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *विश्व-प्रकाश* कोश का है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सर्वव्यापक हैं। वे न केवल तीनों लोकों को अपनी अचिन्त्य शक्ति से धारण करते हैं, अपितु उनका पालन भी करते हैं। वे अपने माधुर्य-प्रेम से अपने आध्यात्मिक लोक, गोलोक वृन्दावन का भी पालन करते हैं और अपने ऐश्वर्यों से वैकुण्ठ लोकों का पालन करते हैं। वे भौतिक ब्रह्माण्डों का पालन अपनी बहिरंगा शक्ति द्वारा करते हैं। भौतिक ब्रह्माण्ड इसीलिए सम्यक् व्यवस्थित ढंग से स्थित हैं, क्योंकि उनकी रचना पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा की गई है।

'कुर्वन्ति'-पद एइ परस्मैपद हय ।
कृष्ण-सुख-निमित्त भजने ताण्पर्य कहय ॥२५॥

'कुर्वन्ति'-पद एइ परस्मैपद हय ।
कृष्ण-सुख-निमित्त भजने तात्पर्य्य कहय ॥ २५॥

कुर्वन्ति-पद—*कुर्वन्ति* शब्द; **एइ**—यह; **परस्मै-पद**—दूसरों के लिए कुछ करने को व्यक्त करती क्रिया; **हय**—है; **कृष्ण-सुख-निमित्त**—कृष्ण को सन्तुष्ट करने के लिए; **भजने**—प्रेममयी सेवा में; **तात्पर्य्य**—तात्पर्य; **कहय**—कहा जाता है।

अनुवाद

'''कुर्वन्ति' शब्द का अर्थ है, 'वे दूसरों के लिए कुछ करते हैं,' चूँकि यह 'करना' क्रिया का एक रूप है, अतः यह 'अन्यों के लिए किये गये कार्य' को सूचित करता है। यह उस भक्ति के सन्दर्भ में प्रयुक्त होता है, जिसे कृष्ण की तुष्टि के लिए की जाती है। 'कुर्वन्ति' शब्द का यही तात्पर्य है।

तात्पर्य

संस्कृत में "करना" क्रिया के दो रूप होते हैं— *परस्मैपद* तथा *आत्मनेपद*। जब अपनी तुष्टि के लिए कुछ किया जाता है, तो उसे *आत्मनेपद* कहते हैं। अंग्रेजी में "करना" शब्द संस्कृत में *कुर्वते* है। जब कोई काम दूसरों के लिए किया जाता है, तब क्रिया का रूप बदलकर *कुर्वन्ति* हो जाता है। इस तरह चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को बतलाया कि आत्माराम श्लोक में *कुर्वन्ति* क्रिया का अर्थ यह है कि कृष्ण की तुष्टि के लिए ही काम किया जाए। इसकी पुष्टि व्याकरणवेत्ता पाणिनि द्वारा होती है। जब कोई कार्य अपने लाभ के लिए किया जाता है, तो *आत्मनेपद* क्रिया-रूप प्रयुक्त किया जाता है, किन्तु जब वही कार्य दूसरों के लिए किया जाता है, तो वह *परस्मैपद* कहलाता है। इस तरह अपनी तुष्टि या दूसरे की तुष्टि के लिए किये जाने वाले कार्य के अनुसार क्रिया का प्रयोग होता है।

"स्वरित-ञितः कर्त्रभिप्राये क्रिया-फले" ॥२६॥

"स्वरित-ञितः कर्त्रभिप्राये क्रिया-फले" ॥ २६ ॥

स्वरित-ञ्-इतः—ञ या अ स्वर संकेत करती क्रियाओं के; **कर्तृ-अभिप्राये**—कर्तृ के अभिप्राय से; **क्रिया-फले**—क्रिया के फल में।

अनुवाद

"'आत्मनेपद के अन्त्य तभी प्रयुक्त होते हैं, जब कर्म का फल क्रियाओं के कर्ता को मिलता है, जिसका सूचक ञ या स्वरित स्वर होता है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *पाणिनि-सूत्र* (१.३.७२) का है।

'हेतु'-शब्दे कहे——भुक्ति-आदि वाञ्छान्तरे ।
भुक्ति, सिद्धि, मुक्ति——मुख्य एइ तिन प्रकारे ॥२७॥

'हेतु'-शब्दे कहे——भुक्ति-आदि वाञ्छान्तरे ।
भुक्ति, सिद्धि, मुक्ति——मुख्य एइ तिन प्रकारे ॥ २७॥

हेतु-शब्दे—हेतु शब्द द्वारा; **कहे**—कहा जाता है; **भुक्ति**—कर्म के फलों को स्वयं भोगना; **आदि**—आदि; **वाञ्छा-अन्तरे**—एक अन्य उद्देश्य के कारण; **भुक्ति**—कर्म के फल को भोगना; **सिद्धि**—कुछ करने की सिद्धि; **मुक्ति**—मुक्ति; **मुख्य**—प्रमुख; **एइ**—इन; **तिन प्रकारे**—तीन प्रकार से।

अनुवाद

"हेतु शब्द का अर्थ यह है कि किसी उद्देश्य से कोई कार्य किया जाता है। उद्देश्य तीन हो सकते हैं : चाहे कोई उस फल को स्वयं भोगना चाहता हो, चाहे कोई भौतिक सिद्धि प्राप्त करना चाहता हो या मुक्ति प्राप्त करना चाहता हो।

এক ভুক্তি কহে, ভোগ—অনন্ত-প্রকার ।
সিদ্ধি—অষ্টাদশ, মুক্তি—পঞ্চ-বিধাকার ॥২৮॥

एक भुक्ति कहे, भोग—अनन्त-प्रकार ।
सिद्धि—अष्टादश, मुक्ति—पञ्च-विधाकार ॥ २८ ॥

एक—पहला; **भुक्ति**—कुछ करके भौतिक भोग; **कहे**—जाना जाता है; **भोग**—भोग; **अनन्त-प्रकार**—असंख्य प्रकार के; **सिद्धि**—योग सिद्धियाँ; **अष्टादश**—अठारह; **मुक्ति**—मुक्ति; **पञ्च-विधा-आकार**—पाँच प्रकार की।

अनुवाद

"सर्वप्रथम हम 'भुक्ति' (भौतिक भोग) शब्द लेते हैं। यह भुक्ति अनन्त प्रकार की होती है। हम 'सिद्धि' शब्द को भी ले सकते हैं, जो अठारह प्रकार की होती है। इसी तरह 'मुक्ति' शब्द के पाँच प्रकार हैं।

এই যাঁহা নাহি, তাহা ভক্তি—'অহৈতুকী' ।
যাহা হৈতে বশ হয় শ্রী-কৃষ্ণ কৌতুকী ॥২৯॥

एइ याँहा नाहि, ताहा भक्ति—'अहैतुकी' ।
याहा हैते वश हय श्री-कृष्ण कौतुकी ॥ २९ ॥

एइ—ये; **याँहा**—जहाँ; **नाहि**—नहीं रहते; **ताहा**—वहाँ; **भक्ति**—प्रेममयी सेवा; **अहैतुकी**—निष्काम; **याहा हैते**—जिसके द्वारा; **वश हय**—वश में आ जाते हैं; **श्री-कृष्ण**—भगवान् श्रीकृष्ण; **कौतुकी**—सर्वाधिक मनोविनोदी।

अनुवाद

"अहैतुकी भक्ति भोग, सिद्धि या मुक्ति द्वारा प्रेरित नहीं होती। जब मनुष्य इन सारे कल्मषों से मुक्त हो जाता है, तब वह अत्यन्त कौतुकी कृष्ण को अपने वश में कर सकता है।

'भक्ति'-शब्देर अर्थ हय दश-विधाकार ।
एक—'साधन', 'प्रेम-भक्ति'—नव प्रकार ॥३०॥

'भक्ति'-शब्देर अर्थ हय दश-विधाकार ।
एक—'साधन', 'प्रेम-भक्ति'—नव प्रकार ॥ ३० ॥

भक्ति-शब्देर—भक्ति शब्द के; **अर्थ**—अर्थ; **हय**—हैं; **दश-विध-आकार**—दस प्रकार के; **एक**—एक; **साधन**—साधना भक्ति के नियमों का पालन; **प्रेम-भक्ति**—प्रेम भक्ति; **नव प्रकार**—नौ प्रकार की।

अनुवाद

"भक्ति शब्द के दस अर्थ हैं। इनमें से एक है विधि-विधानों के अनुसार भक्ति करना (साधन भक्ति) और दूसरी भक्ति, जिसे प्रेमभक्ति कहते हैं, नौ प्रकार की है।

तात्पर्य

प्रेमभक्ति के नौ प्रकार हैं—रति (आकर्षण), प्रेम, स्नेह, मान (प्रतिकूल भाव), प्रणय (घनिष्ठता), राग, अनुराग, भाव तथा महाभाव। साधन भक्ति का केवल एक अर्थ है 'विधि-विधानों के अनुसार भक्ति करना"।

'रति'-लक्षणा, 'प्रेम'-लक्षणा, इत्यादि प्रचार ।
भाव-रूपा, महाभाव-लक्षण-रूपा आर ॥३१॥

'रति'-लक्षणा, 'प्रेम'-लक्षणा, इत्यादि प्रचार ।
भाव-रूपा, महाभाव-लक्षण-रूपा आर ॥ ३१ ॥

रति—रति के; **लक्षणा**—लक्षण; **प्रेम**—प्रेम के; **लक्षणा**—लक्षण; **इति-आदि**—इत्यादि; **प्रचार**—जाने जाते हैं; **भाव-रूपा**—प्रेमभाव के रूप में; **महा-भाव**—महाभाव के; **लक्षण-रूपा**—अनेक लक्षण; **आर**—अन्य।

अनुवाद

'इसके बाद भगवत्प्रेम के लक्षणों की व्याख्या की गई है, जो नौ प्रकार के हैं—रति से लेकर भाव और अन्त में महाभाव तक।

शान्त-भक्तेर रति बाड़े 'प्रेम'-पर्यन्त ।
दास्य-भक्तेर रति हय 'राग'-दशा-अन्त ॥ ३२॥

शान्त-भक्तेर—शान्तभाव में स्थित भक्तों की; **रति**—रति (आकर्षण); **बाड़े**—बढ़ती है; **प्रेम-पर्यन्त**—भगवत्प्रेम के स्तर तक; **दास्य-भक्तेर**—दास्यभाव के भक्तों की; **रति**—रति; **हय**—बढ़ती है; **राग-दशा-अन्त**—रागानुग आसक्ति के स्तर तक।

अनुवाद

"शान्त भाव के भक्तों का कृष्ण के प्रति आकर्षण भगवत्प्रेम तक बढ़ता जाता है और दास्य भाव के भक्तों का आकर्षण राग तक बढ़ता है।

सखा-गणेर रति हय 'अनुराग' पर्यन्त ।
पितृ-मातृ-स्नेह आदि 'अनुराग'-अन्त ॥ ३३॥

सखा-गणेर—सखाओं की; **रति**—रति; **हय**—हो जाती है; **अनुराग पर्यन्त**—अनुराग तक; **पितृ-मातृ-स्नेह**—वात्सल्य स्नेह; **आदि**—आदि; **अनुराग-अन्त**—अनुराग के अन्त तक।

अनुवाद

"वृन्दावन के भक्तगण, जो कि भगवान् के मित्र हैं, वे अपने प्रेम को अनुराग तक वर्धित कर सकते हैं। कृष्ण के माता-पिता का वात्सल्य-स्नेह अनुराग-दशा के अन्त को प्राप्त हो सकता है।

কান্তা-গণের রতি পায় 'মহাভাব'-সীমা ।
'ভক্তি'-শব্দের এই সব অর্থের মহিমা ॥৩৪॥

कान्ता-गणेर रति पाय 'महाभाव'-सीमा ।
'भक्ति'-शब्देर एइ सब अर्थेर महिमा ॥ ३४॥

कान्ता-गणेर—माधुर्यप्रेम के भक्तों का; **रति**—आकर्षण; **पाय**—प्राप्त करता है; **महा-भाव-सीमा**—महाभाव की सीमा; **भक्ति-शब्देर**—भक्ति शब्द के; **एइ सब**—इन सभी; **अर्थेर**—अर्थों की; **महिमा**—महिमा।

अनुवाद

"वृन्दावन की गोपियाँ, जो कृष्ण से माधुर्य-प्रेम द्वारा युक्त हैं, वे अपने प्रेम को महाभाव दशा तक ले जा सकती हैं। 'भक्ति' शब्द के ये कुछ महिमायुक्त अर्थ हैं।

'इत्थम्भूत-गुणः'-शब्देर शुनह व्याख्यान ।
'इत्थं'-शब्देर भिन्न अर्थ, 'गुण'-शब्देर आन ॥৩৫॥

'इत्थम्भूत-गुणः'-शब्देर शुनह व्याख्यान ।
'इत्थं'-शब्देर भिन्न अर्थ, 'गुण'-शब्देर आन ॥ ३५॥

इत्थम्-भूत-गुणः-शब्देर—इत्थम्भूतगुणः शब्द की; **शुनह**—सुनो; **व्याख्यान**—व्याख्या; **इत्थम्-शब्देर**—इत्थम् शब्द के; **भिन्न अर्थ**—भिन्न अर्थ; **गुण-शब्देर**—गुण शब्द के; **आन**—अन्य।

अनुवाद

"अब आत्माराम श्लोक में आये 'इत्थम्भूतगुण' शब्द का अर्थ सुनो। 'इत्थम्भूत' के विभिन्न अर्थ होते हैं और 'गुण' के उससे भिन्न अर्थ होते हैं।

'इत्थम्भूत'-শব্দের অর্থ——পূর্ণানন্দময় ।
যাঁর আগে ব্রহ্মানন্দ তৃণ-প্রায় হয় ॥৩৬॥

'इत्थम्भूत'-शब्देर अर्थ——पूर्णानन्दमय ।
याँर आगे ब्रह्मानन्द तृण-प्राय हय ॥ ३६॥

इत्थम्-भूत-शब्देर—*इत्थम्भूत* शब्द का; **अर्थ**—अर्थ; **पूर्ण-आनन्द-मय**—दिव्य आनन्द से पूर्ण; **याँर आगे**—जिसके सामने; **ब्रह्म-आनन्द**—निराकार ब्रह्म से उत्पन्न दिव्य आनन्द; **तृण-प्राय**—तिनके के समान; **हय**—है।

अनुवाद

"'इत्थम्भूत' शब्द दिव्य रूप से बहुत ही उन्नत है, क्योंकि इसका अर्थ है 'दिव्य आनन्द से पूर्ण।' इस दिव्य आनन्द के समक्ष ब्रह्म-तादात्म्य से प्राप्त आनन्द (ब्रह्मानन्द) तिनके के समान तुच्छ प्रतीत होता है।

त्वत्साक्षात्करणाह्लाद-विशुद्धाब्धि-स्थितस्य मे ।
सुखानि गोष्पदायन्ते ब्राह्माण्यपि जगदगुरो ॥ ३७॥
त्वत्साक्षात्करणाह्लाद-विशुद्धाब्धि-स्थितस्य मे ।
सुखानि गोष्पदायन्ते ब्राह्माण्यपि जगद्गुरो ॥ ३७॥

त्वत्—आपके; **साक्षात्**—दर्शन; **करण**—इस कारण; **आह्लाद**—आनन्द; **विशुद्ध**—दिव्य रूप से शुद्ध; **अब्धि**—समुद्र; **स्थितस्य**—स्थित; **मे**—मेरे; **सुखानि**—सुख; **गोष्-पदायन्ते**—एक बछड़े खुरों द्वारा किए गये गड्ढे के समान हो जाते हैं; **ब्राह्माणि**—निराकार ब्रह्मज्ञान द्वारा प्राप्त आनन्द; **अपि**—भी; **जगत्-गुरो**—हे जगत् के स्वामी।

अनुवाद

"'हे प्रभु, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, चूँकि मैंने आपका प्रत्यक्ष दर्शन किया है, इसलिए मेरे आनन्द ने महासमुद्र का रूप धारण कर लिया है। अब इस समुद्र में स्थित होने के कारण मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि अन्य सारे तथाकथित आनन्द बछड़े के खुर की छाप में भरे जल के समान हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *हरिभक्ति-सुधोदय* (१४.३६) से है।

सर्वाकर्षक, सर्वाह्लादक, महा-रसायन ।
आपनार बले करे सर्व-विस्मारण ॥ ३८॥
सर्वाकर्षक, सर्वाह्लादक, महा-रसायन ।
आपनार बले करे सर्व-विस्मारण ॥ ३८॥

सर्व-आकर्षक—सर्वाकर्षक; **सर्व-आह्लादक**—सर्वाधिक आनन्ददायक; **महा-रस-अयन**—दिव्य रसों के सम्पूर्ण धाम; **आपनार बले**—अपने बल द्वारा; **करे**—करवाते हैं; **सर्व-विस्मारण**—अन्य सुखों का विस्मरण।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण इतने महान् हैं कि वे अन्य किसी से भी अधिक आकर्षक तथा प्रसन्न करने वाले हैं। वे आनन्द के सर्वोत्तम धाम हैं। वे अपने बल से अन्य सारे आनन्दों को भुलवा देने वाले हैं।

ভুক্তি-মুক্তি-সিদ্ধি-সুখ ছাড়য় যার গন্ধে ।
অলৌকিক শক্তি-গুণে কৃষ্ণ-কৃপায় বান্ধে ॥ ৩৯॥

ভুক্তি-মুক্তি-সিদ্ধি-সুখ ছাড়য় যার গন্ধে ।
অলৌকিক শক্তি-গুণে কৃষ্ণ-কৃপায় বান্ধে ॥ ৩৯॥

ভুক্তি—भौतिक आनन्द भोग; **মুক্তি**—भौतिक कष्टों से मुक्ति; **সিদ্ধি**—योग सिद्धि; **সুখ**—इन सबसे प्राप्त सुख; **ছাড়য়**—छोड़ देता है; **যার**—जिसकी; **গন্ধে**—अल्प सुगन्ध द्वारा; **অলৌকিক**—असामान्य, दिव्य; **শক্তি-গুণে**—शक्ति और गुण द्वारा; **কৃষ্ণ-কৃপায়**—भगवान् कृष्ण की कृपा द्वारा; **বান্ধে**—बँध जाता है।

अनुवाद

"शुद्ध भक्ति इतनी उत्कृष्ट होती है कि व्यक्ति इसके आगे भौतिक सुख, भौतिक मुक्ति तथा योगसिद्धि का सुख आसानी से भूल जाता है। इसलिए भक्त कृष्ण की कृपा तथा उनकी असामान्य शक्ति तथा गुणों से बँध जाता है।

শাস্ত্র-যুক্তি নাহি ইহাঁ সিদ্ধান্ত-বিচার ।
এই স্বভাব-গুণে, যাতে মাধুর্যের সার ॥ ৪০॥

শাস্ত্র-যুক্তি নাহি ইহাঁ সিদ্ধান্ত-বিচার ।
এই স্বভাব-গুণে, যাতে মাধুর্যের সার ॥ ৪০॥

শাস্ত্র-যুক্তি—प्रामाणिक शास्त्रों के आधार पर तर्क; **নাহি**—नहीं; **ইহাঁ**—यहाँ; **সিদ্ধান্ত-বিচার**—तार्किक निष्कर्षों का विचार; **এই**—यह; **স্বভাব-গুণে**—एक स्वाभाविक गुण; **যাতে**—जिसमें; **মাধুর্যের সার**—समस्त दिव्य आनन्द का सार।

अनुवाद

"जब मनुष्य दिव्य पद पर कृष्ण के प्रति आकृष्ट हो जाता है, तब न शास्त्र के आधार पर कोई तर्क काम करता है, न ही ऐसे सिद्धान्तों पर कोई विचार हो पाता है। यही उनका दिव्य गुण है, जो समस्त दिव्य माधुर्य का सार है।

'गुण' शब्देर अर्थ——कृष्णेर गुण अनन्त ।
सच्चिद्रूप-गुण सर्व पूर्णानन्द ॥ ४१ ॥

'गुण' शब्देर अर्थ——कृष्णेर गुण अनन्त ।
सच्चिद्-रूप-गुण सर्व पूर्णानन्द ॥ ४१ ॥

गुण शब्देर अर्थ—गुण शब्द का अर्थ; **कृष्णेर गुण अनन्त**—कृष्ण के अनन्त गुण हैं; **सत्-चित्-रूप-गुण**—ये गुण दिव्य तथा नित्य हैं; **सर्व पूर्ण-आनन्द**—समस्त दिव्य आनन्द से परिपूर्ण।

अनुवाद

"कृष्ण के गुण दिव्य और अनन्त हैं। समस्त आध्यात्मिक गुण दिव्य आनन्द से पूर्ण हैं।

ऐश्वर्य-माधुर्य-कारुण्ये स्वरूप-पूर्णता ।
भक्त-वात्सल्य, आत्म-पर्यन्त वदान्यता ॥ ४२ ॥

ऐश्वर्य्य-माधुर्य्य-कारुण्ये स्वरूप-पूर्णता ।
भक्त-वात्सल्य, आत्म-पर्य्यन्त वदान्यता ॥ ४२ ॥

ऐश्वर्य्य—ऐश्वर्य; **माधुर्य्य**—दिव्य माधुर्य; **कारुण्ये**—करुणा; **स्वरूप-पूर्णता**—दिव्य स्वरूप की पूर्णता; **भक्त-वात्सल्य**—भक्त के प्रति स्नेह; **आत्म-पर्य्यन्त**—अपने आप की सीमा तक; **वदान्यता**—उदारता।

अनुवाद

"ऐश्वर्य, माधुर्य तथा करुणा जैसे कृष्ण के दिव्य गुण सब तरह से पूर्ण हैं। जहाँ तक अपने भक्तों के प्रति कृष्ण की वत्सलता का प्रश्न है, वे इतने वदान्य हैं कि वे अपने भक्तों को अपने आप तक को दे देते हैं।

অলৌকিক রূপ, রস, সৌরভাদি গুণ ।
কারো মন কোন গুণে করে আকর্ষণ ॥ ৪৩ ॥

অলৌকিক রূপ, রস, সৌরভাদি গুণ ।
কারো মন কোন গুণে করে আকর্ষণ ॥ ৪৩ ॥

অলৌকিক রূপ—দিব্য রূপ; **রস**—রস; **সৌরভ-আদি গুণ**—দিব্য সুগন্ধ আদি গুণ; **কারো মন**—এক भक्त के मन को; **कोन गुणे**—किसी विशिष्ट गुण द्वारा; **करे**—करते हैं; **आकर्षण**—आकर्षण।

अनुवाद

"कृष्ण के गुणों की कोई सीमा नहीं है। भक्तगण उनके असाधारण सौन्दर्य, रसों तथा सुगन्धि से आकृष्ट होते हैं। इस तरह वे विभिन्न दिव्य रसों में विभिन्न रूप से स्थित होते हैं। इसीलिए कृष्ण को सर्व-आकर्षक कहा जाता है।

সনকাদির মন হরিল সৌরভাদি গুণে ॥ ৪৪ ॥

सनकादिर मन हरिल सौरभादि गुणे ॥ ४४ ॥

सनक-आदिर मन—सनक तथा सनातन जैसे साधुओं के मन; **हरिल**—हर लिए; **सौरभ-आदि**—अपने चरणकमलों की दिव्य सुगन्ध आदि; **गुणे**—गुणों द्वारा।

अनुवाद

"चारों कुमार-मुनियों (सनक, सनातन, सनन्दन तथा सनत्कुमार) के मन भगवान् को अर्पित तुलसी की सुगन्ध के कारण भगवान् के चरणकमलों के प्रति आकृष्ट हो गये।

তস্যারবিন্দ-নয়নস্য পদারবিন্দ-
কিঞ্জল্ক-মিশ্র-তুলসী-মকরন্দ-বায়ুঃ ।
অন্তর্গতঃ স্ব-বিবরেণ চকার তেষাং
সঙ্ক্ষোভমক্ষর-জুষামপি চিত্ত-তন্বোঃ ॥ ৪৫ ॥

तस्यारविन्द-नयनस्य पदारविन्द-
किञ्जल्क-मिश्र-तुलसी-मकरन्द-वायुः ।

अन्तर्गतः स्व-विवरेण चकार तेषां
सङ्क्षोभमक्षर-जुषामपि चित्त-तन्वोः ॥ ४५ ॥

तस्य—उनके; **अरविन्द-नयनस्य**—कमल की पंखुड़ियों के समान नेत्रों वाले परम भगवान् के; **पद-अरविन्द**—चरणकमलों के; **किञ्जल्क**—केसर के साथ; **मिश्र**—मिले हुए; **तुलसी**—तुलसी पत्तों की; **मकरन्द**—सुगन्ध के साथ; **वायुः**—वायु; **अन्तः-गतः**—प्रवेश की; **स्व-विवरेण**—नासिका के द्वारा; **चकार**—उत्पन्न कर दिया; **तेषाम्**—उनका; **सङ्क्षोभम्**—महान् उत्तेजना; **अक्षर-जुषाम्**—निराकार साक्षात्कार प्राप्त कुमारों के; **अपि**—भी; **चित्त-तन्वोः**—मन तथा शरीर का।

अनुवाद

"'जब कमलनयन भगवान् के चरणकमलों से तुलसी-दल तथा केसर की सुगन्धि ले जाने वाली वायु उन कुमारों के नासारन्ध्रों से होकर हृदयों में प्रविष्ट हुई, तो उन्हें शरीर तथा मन दोनों में परिवर्तन का अनुभव हुआ, यद्यपि वे निराकार ब्रह्म धारणा के प्रति आसक्त थे।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (३.१५.४३) का है। इसकी व्याख्या के लिए देखें *मध्यलीला* १७.१४२।

শুকদেবের মন হরিল লীলা-শ্রবণে ॥ ৪৬ ॥
शुकदेवेर मन हरिल लीला-श्रवणे ॥ ४६ ॥

शुकदेवेर—शुकदेव गोस्वामी का; **मन**—मन; **हरिल**—हर लिया; **लीला-श्रवणे**—भगवान् की लीलाएँ सुनकर।

अनुवाद

"शुकदेव का मन भगवान् की लीलाओं के श्रवण में खो गया था।

পরিনিষ্ঠিতোঽপি নৈর্গুণ্যে উত্তমঃশ্লোক-লীলয়া ।
গৃহীত-চেতা রাজর্ষে আখ্যানং যদধীতবান্ ॥ ৪৭ ॥
परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमःश्लोक-लीलया ।
गृहीत-चेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ॥ ४७ ॥

परिनिष्ठितः—स्थित; **अपि**—यद्यपि; **नैर्गुण्ये**—प्रकृति के भौतिक गुणों से मुक्त दिव्य

स्थिति में; **उत्तमः-श्लोक-लीलया**—उत्तम श्लोक, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की लीलाओं द्वारा; **गृहीत-चेताः**—मन पूरी तरह वश में हो गया; **राजा-ऋषे**—हे महान् राजा; **आख्यानम्**—वर्णन; **यत्**—जो; **अधीतवान्**—पढ़ा।

अनुवाद

"[शुकदेव गोस्वामी ने परीक्षित महाराज से कहा :] 'हे राजन, यद्यपि मैं पूर्णतया दिव्य पद को प्राप्त था, किन्तु फिर भी मैं भगवान् कृष्ण की लीलाओं के प्रति आकृष्ट हो गया। इसीलिए मैंने अपने पिता से श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (२.१.९) का है।

स्व-सुख-निभृत-चेतास्तद्व्युदस्तान्य-भावो
ऽप्यजित-रुचिर-लीलाकृष्ट-सारस्तदीयम् ।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्व-दीपं पुराणं
तमखिल-वृजिन-घ्नं व्यास-सूनुं नतोऽस्मि ॥ ४८ ॥

स्व-सुख-निभृत-चेताः—जिनका मन सदैव आत्म-साक्षात्कार के आनन्द में पूर्णतया निमग्न था; **तत्**—उसके द्वारा; **व्युदस्त-अन्य-भावः**—अन्य सभी आकर्षणों से मुक्त; **अपि**—यद्यपि; **अजित-रुचिर-लीला**—भगवान् अजित की सर्वाधिक आकर्षक लीलाओं द्वारा; **आकृष्ट**—आकर्षित; **सारः**—जिनका हृदय; **तदीयम्**—भगवान् सम्बन्धित; **व्यतनुत**—वर्णन तथा प्रचार किया; **कृपया**—कृपा द्वारा; **यः**—जिन्होंने; **तत्त्व-दीपम्**—परम सत्य का दीपक; **पुराणम्**—पूरक वैदिक ग्रन्थ, *श्रीमद्भागवत;* **तम्**—उनको; **अखिल-वृजिन-घ्नम्**—जो सब प्रकार के भौतिक दुःखों का नाश कर सकते हैं; **व्यास-सूनुम्**—व्यासदेव के पुत्र, शुकदेव गोस्वामी को; **नतः अस्मि**—मैं प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

"'मैं समस्त पापफलों को नष्ट करने वाले व्यासपुत्र श्रील शुकदेव गोस्वामी को सादर नमस्कार करता हूँ। आत्म-साक्षात्कार एवं आनन्द से

पूर्ण होने के कारण उनकी कोई भौतिक इच्छा नहीं थी। फिर भी वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य लीलाओं के प्रति आकृष्ट हुए और लोगों पर दया करके उन्होंने श्रीमद्भागवत नामक दिव्य ऐतिहासिक ग्रन्थ का वर्णन किया। यह ग्रन्थ परम सत्य के दीपक के समान है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१२.१२.६९) से है।

श्री-अङ्ग-रूपे हरे गोपिकार मन ॥ ४९॥

श्री-अङ्ग-रूपे हरे गोपिकार मन ॥ ४९ ॥

श्री-अङ्ग—अपने दिव्य शरीर के; **रूपे**—सौंदर्य द्वारा; **हरे**—हर लेते हैं; **गोपिकार मन**—गोपियों के मन।

अनुवाद

" भगवान् श्रीकृष्ण अपने सुन्दर दिव्य स्वरूप द्वारा समस्त गोपियों के मन को हर लेते हैं।

वीक्ष्यालकावृत-मुखं तव कुण्डल-श्री-
गण्ड-स्थलाधर-सुधं हसितावलोकम् ।
दत्ताभयं च भुज-दण्ड-युगं विलोक्य
वक्षः श्रियैक-रमणं च भवाम दास्यः ॥ ५०॥

वीक्ष्यालकावृत-मुखं तव कुण्डल-श्री-
गण्ड-स्थलाधर-सुधं हसितावलोकम् ।
दत्ताभयं च भुज-दण्ड-युगं विलोक्य
वक्षः श्रियैक-रमणं च भवाम दास्यः ॥ ५० ॥

वीक्ष्य—देखकर; **अलक-आवृत-मुखम्**—घुँघराले बालों की लटों से सुशोभित मुख को; **तव**—आपके; **कुण्डल-श्री**—कुण्डलों की सुन्दरता; **गण्ड-स्थल**—आपके गालों पर लगते हुए; **अधर-सुधम्**—तथा आपके होठों से निकलता अमृत; **हसित-अवलोकम्**—आपकी मुस्कानयुक्त चितवन; **दत्त-अभयम्**—जो अभय प्रदान करती है; **च**—तथा; **भुज-दण्ड-युगम्**—दो भुजाएँ; **विलोक्य**—देखकर; **वक्षः**—छाती; **श्रिया**—सुन्दरता द्वारा; **एक-रमणम्**—प्रमुख रूप से संगम का आकर्षण उत्पन्न करते; **च**—तथा; **भवाम**—हम हो गई; **दास्यः**—आपकी सेविकाएँ।

अनुवाद

"'हे कृष्ण, हम तो आपकी दासियों के रूप में आत्मसमर्पण कर चुकी हैं, क्योंकि हमने बालों की लटों से अलंकृत आपके सुन्दर मुख को, आपके गालों पर लटकते आपके कुण्डलों को, आपके होठों के अमृत को तथा आपके मृदुहास्य की सुन्दरता को देखा है और साहस प्रदान करने वाली आपकी भुजाओं द्वारा हम आलिंगित भी हुई हैं। चूँकि हमने आपके सुन्दर तथा प्रशस्त वक्षस्थल को देखा है, अतएव हम आपकी शरण में हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.२९.३९) का है और गोपियों ने इसे तब कहा था, जब वे पूर्णिमा की रात में रासनृत्य के लिए कृष्ण के पास पहुँची थीं। सारी की सारी मुग्ध गोपियाँ आश्चर्यचकित थीं और वे कृष्ण को बताने लगीं कि वे किस तरह रासनृत्य का आनन्द लूटने आई हैं।

রূপ-গুণ-শ্রবণে রুক্মিণ্যাদির আকর্ষণ ॥৫১॥

रूप-गुण-श्रवणे रुक्मिण्यादिर आकर्षण ॥५१॥

रूप—सुन्दरता; **गुण**—गुण; **श्रवणे**—सुनने से; **रुक्मिणी-आदिर**—रुक्मिणी आदि; **आकर्षण**—आकर्षित हो जाती हैं।

अनुवाद

"रुक्मिणी आदि द्वारका की रानियाँ भी कृष्ण के दिव्य सौन्दर्य तथा गुणों को सुनकर उनकी ओर आकृष्ट हो जाती हैं।

শ্রুত্বা গুণান্ভুবন-সুন্দর শৃণ্বতাং তে
নির্বিশ্য কর্ণ-বিবরৈর্হরতোঽঙ্গ-তাপম্ ।
রূপং দৃশাং দৃশিমতামখিলার্থ-লাভং
ত্বয়্যচ্যুতাবিশতি চিত্তমপত্রপং মে ॥৫২॥

श्रुत्वा गुणान्भुवन-सुन्दर शृण्वतां ते
निर्विश्य कर्ण-विवरैर्हरतोऽङ्ग-तापम् ।

रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थ-लाभं
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ॥ ५२ ॥

श्रुत्वा—सुनकर; **गुणान्**—दिव्य गुण; **भुवन-सुन्दर**—हे सम्पूर्ण सृष्टि में सबसे सुन्दर; **शृण्वताम्**—सुनने वालों के; **ते**—आपके; **निर्विश्य**—प्रवेश करके; **कर्ण-विवरैः**—कानों के छिद्रों द्वारा; **हरतः अङ्ग-तापम्**—शरीर की समस्त प्रकार की कष्टदायक स्थिति को हर लेते हैं; **रूपम्**—सुन्दरता; **दृशाम्**—आँखों की; **दृशि-मताम्**—जो देख सकते हैं, उनके; **अखिल-अर्थ-लाभम्**—सब प्रकार के लाभों की प्राप्ति; **त्वयि**—आपके प्रति; **अच्युत**—हे अच्युत; **आविशति**—प्रवेश करता है; **चित्तम्**—चित्त; **अपत्रपम्**—लज्जारहित होकर; **मे**—मेरा।

अनुवाद

'"हे अतीव सुन्दर कृष्ण, मैंने दूसरों से आपके दिव्य गुणों के विषय में सुना है, जिसके कारण मेरे शरीर के सारे दुःख जाते रहे हैं। यदि कोई आपके दिव्य सौन्दर्य का दर्शन कर लेता है, तो उसके नेत्रों को जीवन का सारा लाभ प्राप्त हो जाता है। हे अच्युत, आपके गुणों के विषय में सुनकर मैं लज्जाविहीन हो गई हूँ और मैं आपके प्रति आकृष्ट हो चुकी हूँ।'

तात्पर्य

यह श्लोक (*श्रीमद्भागवत* १०.५२.३७) रुक्मिणीदेवी ने श्रीकृष्ण को अपने पत्र में लिखा था, जिसमें उन्होंने अपने आपको हरण करके ले जाने के लिए बुलावा भेजा था। जब महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा कि रुक्मिणी का हरण किस प्रकार हुआ, तो उन्होंने यह श्लोक बतलाया। रुक्मिणी ने विभिन्न लोगों से कृष्ण के गुणों के विषय में सुन रखा था, अतः सुनने के बाद उन्होंने उन्हें ही पति रूप में स्वीकार करने का निश्चय किया। शिशुपाल से उनके विवाह की सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं; अतः उन्होंने एक पत्र लिखकर एक ब्राह्मण के हाथों उसे कृष्ण के पास भेजा और उन्हें आमन्त्रित किया कि वे उसका हरण कर लें जाएँ।

বংশী-গীতে হরে কৃষ্ণ লক্ষ্ম্যাদির মন ॥ ৫৩ ॥
वंशी-गीते हरे कृष्ण लक्ष्म्यादिर मन ॥ ५३ ॥

वंशी-गीते—अपनी वंशी की ध्वनि से; **हरे**—आकर्षित करते हैं; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **लक्ष्मी-आदिर**—लक्ष्मी देवी आदि के; **मन**—मन।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण अपनी दिव्य वंशी बजाकर लक्ष्मी देवी आदि के भी मन को आकृष्ट कर लेते हैं।

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे
तवाङ्घ्रि-रेणु-स्परशाधिकारः ।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो
विहाय कामान्सु-चिरं धृत-व्रता ॥५४॥

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे
तवाङ्घ्रि-रेणु-स्परशाधिकारः ।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो
विहाय कामान्सु-चिरं धृत-व्रता ॥५४॥

कस्य—किसका; **अनुभावः**—परिणाम; **अस्य**—इस नाग का (कालिय); **न**—नहीं; **देव**—हे प्रभु; **विद्महे**—हम जानते; **तव-अङ्घ्रि**—आपके चरणकमलों की; **रेणु**—धूलि का; **स्परश**—स्पर्श करने का; **अधिकारः**—अधिकार; **यत्**—जिसकी; **वाञ्छया**—इच्छा करके; **श्रीः**—लक्ष्मीदेवी; **ललना**—सर्वश्रेष्ठ स्त्री; **अचरत्**—पालन की; **तपः**—तपस्या; **विहाय**—त्यागकर; **कामान्**—समस्त इच्छाएँ; **सु-चिरम्**—दीर्घकाल तक; **धृत**—धारण कर; **व्रता**—व्रत।

अनुवाद

"'हे प्रभु, हम नहीं जानतीं कि कालिय सर्प को किस तरह आपके चरणकमलों की धूल को स्पर्श करने का सुअवसर प्राप्त हो सका। ऐसा अवसर पाने के लिए तो लक्ष्मीजी ने सारी इच्छाएँ त्यागकर सदियों तक कठोर व्रत लेकर तपस्या की थी। निस्सन्देह, हम नहीं जानती हैं कि इस कालिय सर्प को यह सुअवसर कैसे प्राप्त हो सका?'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.१६.३६) का है, जिसे कालिय सर्प की पत्नियों ने कहा था।

योग्य-भावे जगते यत युवतीर गण ॥५५॥
य्रोग्य-भावे जगते य्रत य्रुवतीर गण ॥५५॥

य्रोग्य-भावे—उचित व्यवहार द्वारा; **जगते**—तीनों लोकों में; **य्रत**—समस्त; **य्रुवतीर गण**—युवतियों के समूहों को।

अनुवाद

"कृष्ण न केवल गोपियों एवं लक्ष्मीओं के मनों को आकृष्ट करने वाले हैं, अपितु वे तीनों लोकों की युवतियों के भी मनों को आकृष्ट करते हैं।

का स्त्र्यङ्ग ते कल-पदामृत-वेणु-गीत-
सम्मोहितार्य-चरितान्न चलेत्त्रि-लोक्याम् ।
त्रैलोक्य-सौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
यदेगा-द्विज-द्रुम-मृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥५६॥

का स्त्र्यङ्ग ते कल-पदामृत-वेणु-गीत-
सम्मोहितार्य-चरितान्न चलेत्त्रि-लोक्याम् ।
त्रैलोक्य-सौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
य्रद्गो-द्विज-द्रुम-मृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥५६॥

का स्त्री—वह कौन स्त्री है; **अङ्ग**—हे कृष्ण; **ते**—आपकी; **कल-पद**—धुनों द्वारा; **अमृत-वेणु-गीत**—वेणु की अमृत समान मधुर; **सम्मोहिता**—मोहित होकर; **आर्य-चरितात्**—वैदिक संस्कृति के अनुसार निर्देशित पतिव्रत-धर्म के मार्ग से; **न**—न; **चलेत्**—भटक जाए; **त्रि-लोक्याम्**—तीनों लोकों में; **त्रै-लोक्य-सौभगम्**—जो तीनों लोकों का सौभाग्य है; **इदम्**—यह; **च**—तथा; **निरीक्ष्य**—देखकर ; **रूपम्**—सुन्दरता; **य्रत्**—जिसने; **गो**—गायों में; **द्विज**—पक्षियों में; **द्रुम**—वृक्षों को; **मृगाः**—हिरण आदि जंगली पशुओं को; **पुलकानि**—दिव्य आनन्द; **अबिभ्रन्**—उत्पन्न कर दिया।

अनुवाद

"'हे भगवान् कृष्ण, भला तीनों लोकों में वह कौन-सी स्त्री होगी, जो आपकी अद्भुत बाँसुरी से निकले मधुर संगीत की लहरियों से मोहित न हो जाए? भला इस तरह कौन-सी स्त्री अपने पतिव्रता पथ से विचलित नहीं हो जायेगी? आपका सौन्दर्य तीनों लोकों में सर्वोत्कृष्ट है। आपके सौन्दर्य को देखकर गौवें, पक्षी, पशु तथा वन के वृक्ष भी हर्ष के मारे जड़ हो जाते हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.२९.४०) का है।

गुरु-तुल्य स्त्री-गणेर वात्सल्ये आकर्षण ।
दास्य-सख्यादि-भावे पुरुषादि गण ॥५७॥

गुरु-तुल्य स्त्री-गणेर वात्सल्ये आकर्षण ।
दास्य-सख्यादि-भावे पुरुषादि गण ॥५७॥

गुरु-तुल्य—वरिष्ठ लोगों के स्तर की; **स्त्री-गणेर**—वृन्दावन की स्त्रियों का; **वात्सल्ये**—वात्सल्य स्नेह में; **आकर्षण**—आकर्षण; **दास्य-सख्य-आदि**—दास्य, सख्य आदि; **भावे**—के भाव में; **पुरुष-आदि गण**—वृन्दावन के सभी पुरुष।

अनुवाद

"वृन्दावन की स्त्रियाँ, जो वयोवृद्धा हैं, कृष्ण के प्रति मातृ-स्नेह से आकृष्ट होती हैं। वृन्दावन के पुरुष कृष्ण के प्रति सेवक, मित्र तथा पिता के रूप में आकृष्ट होते हैं।

पक्षी, मृग, वृक्ष, लता, चेतनाचेतन ।
प्रेमे मत्त करि' आकर्षये कृष्ण-गुण ॥५८॥

पक्षी, मृग, वृक्ष, लता, चेतनाचेतन ।
प्रेमे मत्त करि' आकर्षये कृष्ण-गुण ॥५८॥

पक्षी—पक्षी; **मृग**—पशु; **वृक्ष**—पेड़; **लता**—लता; **चेतन-अचेतन**—सारे जीव तथा पत्थर और लकड़ी को भी; **प्रेमे**—प्रेमभाव में; **मत्त**—उन्मत्त; **करि'**—करके; **आकर्षये**—आकर्षित करते हैं; **कृष्ण-गुण**—कृष्ण के गुण।

अनुवाद

"कृष्ण के गुण जड़ तथा चेतन को समान रूप से मोहने वाले हैं। यहाँ तक कि पक्षी, पशु तथा वृक्ष भी कृष्ण के गुणों से आकृष्ट हो जाते हैं।

'हरिः'-शब्दे नानार्थ, दुई मुख्यतम ।
सर्व अमङ्गल हरे, प्रेम दिया हरे मन ॥५९॥

'हरिः'-शब्दे नानार्थ, दुइ मुख्यतम ।
सर्व अमङ्गल हरे, प्रेम दिया हरे मन ॥ ५९ ॥

हरिः-शब्दे—हरि शब्द द्वारा; **नाना-अर्थ**—विभिन्न अर्थ; **दुइ**—दो; **मुख्य-तम**—सबसे प्रमुख; **सर्व**—सभी; **अमङ्गल**—अशुभ; **हरे**—हर लेते हैं; **प्रेम दिया**—प्रेमभाव देकर; **हरे**—हर लेते हैं; **मन**—मन।

अनुवाद

"यद्यपि हरि शब्द के अनेक अर्थ हैं, किन्तु उनमें से दो मुख्य हैं। एक अर्थ यह है कि भगवान् अपने भक्त का सारा अमंगल हर लेते हैं और दूसरा अर्थ यह है कि वे भगवत्प्रेम द्वारा मन को आकृष्ट करते हैं।

यैछे तैछे योहि कोहि करये स्मरण ।
चारि-विध ताप तार करे संहरण ॥ ६० ॥

यैछे तैछे—जैसे तैसे; **योहि कोहि**—कहीं भी-कभी भी; **करये स्मरण**—याद करता है; **चारि-विध**—चार प्रकार के; **ताप**—जीवन के कष्ट; **तार**—उस भक्त के; **करे संहरण**—वे हर लेते हैं।

अनुवाद

"जब भक्त जहाँ कहीं भी और जैसे कैसे भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सदैव स्मरण करता है, तो भगवान् हरि जीवन के चार प्रकार के तापों को हर लेते हैं।

तात्पर्य

चार प्रकार के ताप चार प्रकार के पापकर्मों के फल हैं। ये हैं (१) पातक, (२) उरुपातक, (३) महापातक तथा (४) अतिपातक—प्रारम्भिक पाप, महान् पाप, उच्चतर पाप तथा उच्चतम पाप। किन्तु कृष्ण अपने भक्त को आश्वासन देते हैं—*अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः*—"मैं सारे पापों के फलों से तुम्हारी रक्षा करूँगा। डरो मत।" *सर्वपापेभ्यः* शब्द चार प्रकार के पापकृत्यों (पातकों) का सूचक है। ज्योंही भक्त भगवान् के चरणकमलों में अपने आपको समर्पित कर देता है, त्योंही वह अपने सारे

पापकर्मों और उनके फलों से मुक्त हो जाता है। ये चारों आधारभूत पापकृत्य हैं—अवैध सम्बन्ध, नशा, जुआ खेलना तथा मांसाहार।

यथाग्निः सु-समृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्म-साৎ ।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥ ६१॥

यथाग्निः सु-समृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्म-सात् ।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥ ६१ ॥

यथा—जिस प्रकार; **अग्निः**—आग; **सु-समृद्ध-अर्चिः**—पूरी तरह से प्रज्वलित; **करोति**—कर देती है; **एधांसि**—ईंधन को; **भस्म-सात्**—भस्म; **तथा**—उसी प्रकार; **मत्-विषया भक्तिः**—मुझसे सम्बन्धित प्रेममयी सेवा; **उद्धव**—हे उद्धव; **एनांसि**—सभी प्रकार के पापकर्मों को; **कृत्स्नशः**—पूर्ण रूप से।

अनुवाद

"'जिस प्रकार पूरी तरह प्रज्वलित अग्नि द्वारा सारा ईंधन जलकर राख हो जाता है, उसी तरह मेरी सेवा में लगने पर मनुष्य के सारे पापकृत्य पूर्णतया दूर हो जाते हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (११.१४.१९) का है और कृष्ण द्वारा कहा गया है।

तबे करे भक्ति-बाधक कर्म, अविद्या नाश ।
श्रवणाद्येर फल 'प्रेमा' करয়ে প্রকাশ ॥ ৬২॥

तबे करे भक्ति-बाधक कर्म, अविद्या नाश ।
श्रवणाद्येर फल 'प्रेमा' करये प्रकाश ॥ ६२ ॥

तबे—फिर; **करे**—करती है; **भक्ति-बाधक**—प्रेममयी सेवा के मार्ग के बाधक; **कर्म**—कर्मों का; **अविद्या**—अविद्या का; **नाश**—विनाश; **श्रवण-आद्येर**—श्रवण कीर्तन आदि का; **फल**—परिणाम; **प्रेमा**—भगवत्प्रेम; **करये प्रकाश**—प्रकट करवाता है।

अनुवाद

"इस तरह जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा से सारे पापकर्म दूर हो जाते हैं, तो धीरे-धीरे भक्ति के मार्ग के सारे अवरोध एवं उसी के साथ

इन अवरोधों से उत्पन्न अज्ञान भी दूर हो जाते हैं। इसके बाद मनुष्य श्रवण, कीर्तन आदि नौ प्रकार की भक्ति के माध्यम से अपने मूल भगवत्प्रेम को पूरी तरह से प्रकट करता है।

নিজ-গুণে তবে হরে দেহেন্দ্রিয়-মন ।
ঐছে কৃপালু কৃষ্ণ, ঐছে তাঁর গুণ ॥৬৩॥

निज-गुणे तबे हरे देहेन्द्रिय-मन ।
ऐछे कृपालु कृष्ण, ऐछे ताँर गुण ॥६३॥

निज-गुणे—दिव्य गुणों द्वारा; **तबे**—फिर; **हरे**—आकर्षित करते हैं; **देह-इन्द्रिय-मन**—देह, इन्द्रियों तथा मन को; **ऐछे**—इस प्रकार; **कृपालु कृष्ण**—कृपालु कृष्ण; **ऐछे**—ऐसे; **ताँर**—उनके; **गुण**—दिव्य गुण।

अनुवाद

"जब भक्त सारे भौतिक पापकर्मों से मुक्त हो जाता है, तो कृष्ण उसके शरीर, मन तथा इन्द्रियों को अपनी सेवा में लगा लेते हैं। इस तरह कृष्ण अत्यन्त कृपालु हैं और उनके दिव्य गुण अत्यन्त आकर्षक हैं।

চারি পুরুষার্থ ছাড়ায়, গুণে হরে সবার মন ।
'হরি'-শব্দের এই মুখ্য কহিলুঁ লক্ষণ ॥৬৪॥

चारि पुरुषार्थ छाड़ाय, गुणे हरे सबार मन ।
'हरि'-शब्देर एइ मुख्य कहिलुँ लक्षण ॥६४॥

चारि पुरुष-अर्थ—चार प्रकार के तथाकथित पुरुषार्थ; **छाड़ाय**—छुड़वाकर; **गुणे**—दिव्य गुणों द्वारा; **हरे**—हर लेते हैं; **सबार मन**—सबके मन; **हरि-शब्देर**—हरि शब्द के; **एइ**—ये; **मुख्य**—मुख्य; **कहिलुँ**—मैंने वर्णित किए; **लक्षण**—लक्षण।

अनुवाद

"जब मनुष्य का मन, इन्द्रियाँ तथा शरीर हरि के दिव्य गुणों के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं, तो वह भौतिक सफलता के चारों सिद्धान्तों का परित्याग कर देता है। इस तरह मैंने 'हरि' शब्द के मुख्य अर्थों की व्याख्या कर दी है।

तात्पर्य

भौतिक सफलता के चार सिद्धान्त हैं—(१) धार्मिक कृत्य (धर्म) (२) आर्थिक विकास (अर्थ), (३) इन्द्रियतृप्ति (काम) तथा (४) मोक्ष या ब्रह्म की निर्विशेष ज्योति से तादात्म्य। भक्तों को इनमें कोई रुचि नहीं होती।

'च' 'अपि', दुइ शब्द ताते 'अव्यय' हय ।
येइ अर्थ लागाइये, सेइ अर्थ हय ॥ ६५॥

'च' 'अपि', दुइ शब्द ताते 'अव्यय' हय ।
येइ अर्थ लागाइये, सेइ अर्थ हय ॥ ६५॥

च—च; **अपि**—अपि; **दुइ**—दो; **शब्द**—शब्द; **ताते**—इस प्रकार; **अव्यय**—अव्यय शब्द; **हय**—हैं; **येइ**—जो भी; **अर्थ**—अर्थ; **लागाइये**—वे प्रयोग करना चाहें; **सेइ**—वही; **अर्थ**—अर्थ; **हय**—किया जा सकता है।

अनुवाद

"जब समुच्चय-बोधक *च* तथा क्रियाविशेषण *अपि* ये दो शब्द इस श्लोक में जोड़ दिये जाते हैं, तो इस श्लोक से जैसा भी अर्थ चाहें, प्राप्त किया जा सकता है।

तथापि च-कारेर कहे मुख्य अर्थ सात ॥ ६६॥

तथापि च-कारेर कहे मुख्य अर्थ सात ॥ ६६॥

तथापि—फिर भी; **च-कारेर**—*च* शब्द के; **कहे**—कहे जाते हैं; **मुख्य**—मुख्य; **अर्थ**—अर्थ; **सात**—सात।

अनुवाद

"'च' शब्द की व्याख्या सात प्रकार से की जा सकती है।

चान्वाचये समाहारेऽन्योन्यार्थे च समुच्चये ।
यत्नान्तरे तथा पाद-पूरणेऽप्यवधारणे ॥ ६७॥

चान्वाचये समाहारेऽन्योन्यार्थे च समुच्चये ।
यत्नान्तरे तथा पाद-पूरणेऽप्यवधारणे ॥ ६७॥

च—यह *च* शब्द; **अन्वाचये**—एक को दूसरे से जोड़ने में; **समाहारे**—समूह के अर्थ में; **अन्योन्य-अर्थे**—अर्थ को सहायता करने में; **च**—यह *च* शब्द; **समुच्चये**—सामूहिक विचार में; **यत्न-अन्तरे**—दूसरे प्रयास में; **तथा**—साथ ही; **पाद-पूरणे**—श्लोक को पूर्ण करने में; **अपि**—तथा; **अवधारणे**—निश्चितता के अर्थ में।

अनुवाद

"'यह शब्द "च" (तथा) का प्रयोग किसी शब्द या वाक्य को पिछले शब्द या वाक्य से जोड़ने, समाहार करने, अर्थ में सहायता करने, सामूहिक जानकारी देने, अन्य विकल्प सुझाने या श्लोक के चरण की पूर्ति करने के लिए किया जाता है। इसका प्रयोग निश्चय के अर्थ में भी होता है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *विश्व-प्रकाश* शब्दकोश से उद्धृत है।

अपि-शब्दे मुख्य अर्थ सात विख्यात ॥ ६८ ॥

अपि-शब्दे मुख्य अर्थ सात विख्यात ॥ ६८ ॥

अपि-शब्दे—*अपि* शब्द के; **मुख्य**—मुख्य; **अर्थ**—अर्थ; **सात**—सात; **विख्यात**—प्रसिद्ध।

अनुवाद

"'अपि' शब्द के सात मुख्य अर्थ होते हैं। वे इस प्रकार हैं।

अपि सम्भावना-प्रश्न-शङ्का-गर्हा-समुच्चये ।
तथा युक्त-पदार्थेषु काम-चार-क्रियासु च ॥ ६९ ॥

अपि सम्भावना-प्रश्न-शङ्का-गर्हा-समुच्चये ।
तथा युक्त-पदार्थेषु काम-चार-क्रियासु च ॥ ६९ ॥

अपि—*अपि* शब्द; **सम्भावना**—सम्भावना; **प्रश्न**—प्रश्न; **शङ्का**—सन्देह; **गर्हा**—भर्त्सना करना या गाली देना; **समुच्चये**—समूह; **तथा**—तथा; **युक्त-पद-अर्थेषु**—अर्थों के समुचित प्रयोग; **काम-चार-क्रियासु**—अतिशियोक्ति के लिए; **च**—तथा।

अनुवाद

"'यह शब्द "अपि" का प्रयोग सम्भावना, प्रश्न, सन्देह, निन्दा,

समुच्चय, वस्तुओं का सही ढंग से सम्प्रयोग तथा अतिशियोक्ति के अर्थ में किया जाता है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण भी *विश्व-प्रकाश* का है।

एइ त' एकादश पदेर अर्थ-निर्णय ।
एबे श्लोकार्थ करि, यथा ये लागय ॥७०॥

एइ त' एकादश पदेर अर्थ-निर्णय ।
एबे श्लोकार्थ करि, यथा ये लागय ॥ ७० ॥

एइ त'—यह है; **एकादश**—ग्यारह; **पदेर**—शब्दों के; **अर्थ-निर्णय**—अर्थों का विचार; **एबे**—अब; **श्लोक-अर्थ**—श्लोक का पूर्ण अर्थ; **करि**—करता हूँ; **यथा**—जितनी; **ये**—जो; **लागय**—उपयुक्त है।

अनुवाद

"मैं अब ग्यारह अलग-अलग शब्दों के विभिन्न अर्थ बतला चुका हूँ। अब मैं इस श्लोक का पूरा अर्थ कहूँगा, जैसाकि यह विभिन्न स्थलों पर उपयुक्त है।

'ब्रह्म' शब्देर अर्थ——तत्त्व सर्व-बृहत्तम ।
स्वरूप ऐश्वर्य करि' नाहि याँर सम ॥७१॥

'ब्रह्म' शब्देर अर्थ——तत्त्व सर्व-बृहत्तम ।
स्वरूप ऐश्वर्य्य करि' नाहि य्याँर सम ॥ ७१ ॥

ब्रह्म—ब्रह्म; **शब्देर अर्थ**—शब्द का अर्थ; **तत्त्व**—सत्य; **सर्व-बृहत्-तम**—सर्वश्रेष्ठ परम सत्य; **स्व-रूप**—वास्तविक स्वरूप; **ऐश्वर्य्य**—ऐश्वर्य; **करि'**—मानने से; **नाहि**—नहीं; **य्याँर**—जिसके; **सम**—समान।

अनुवाद

"'ब्रह्म' शब्द परम सत्य का सूचक है, जो अन्य सभी सत्यों से श्रेष्ठ है। यह मूल स्वरूप है और इस परम सत्य के तुल्य अन्य कोई सत्य नहीं है।

बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च तद्ब्रह्म परमं विदुः ।
तस्मै नमस्ते सर्वात्मन् योगि-चिन्त्याविकारवत् ॥७२॥

बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च तद्ब्रह्म परमं विदुः ।
तस्मै नमस्ते सर्वात्मन् योगि-चिन्त्याविकारवत् ॥ ७२ ॥

बृहत्त्वात्—सर्वव्यापी होने के कारण; **बृंहणत्वात्**—असीमित रूप से विस्तार करने के कारण; **च**—तथा; **तत्**—वह; **ब्रह्म**—परम सत्य, ब्रह्म; **परमम्**—परम; **विदुः**—वे जानते हैं; **तस्मै**—उन्हें; **नमः**—प्रणाम है; **ते**—आपको; **सर्व-आत्मन्**—परमात्मा; **योगि-चिन्त्य**—महान् योगियों द्वारा ध्यान किये जाने वाले; **अविकार-वत्**—परिवर्तन रहित।

अनुवाद

"'मैं उन परम सत्य को सादर नमस्कार करता हूँ। वे सर्वव्यापक तथा महान् योगियों के लिए सर्वोच्च विषय हैं। वे अपरिवर्तनशील हैं और सबके आत्मा हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *विष्णु-पुराण* (१.१२.५७) का है।

सेई ब्रह्म-शब्दे कहे स्वयं-भगवान् ।
अद्वितीय-ज्ञान, याँहा विना नाहि आन ॥७३॥

सेइ ब्रह्म-शब्दे कहे स्वयं-भगवान् ।
अद्वितीय-ज्ञान, याँहा विना नाहि आन ॥ ७३ ॥

सेइ—उस; **ब्रह्म-शब्दे**—ब्रह्म शब्द द्वारा; **कहे**—कहा जाता है; **स्वयम्-भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **अद्वितीय-ज्ञान**—द्वैत रहित, परम पुरुष; **याँहा**—जिनके; **विना**—बिना; **नाहि आन**—अन्य कुछ नहीं है।

अनुवाद

"'ब्रह्म' शब्द का वास्तविक अर्थ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् है, जो अद्वितीय हैं और जिनके बिना अन्य किसी भी वस्तु का अस्तित्व सम्भव नहीं है।

वदन्ति तत्तत्त्व-विदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥७४॥

वदन्ति तत्तत्त्व-विदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ ७४ ॥

वदन्ति—वे कहते हैं; **तत्**—उनको; **तत्त्व-विदः**—ज्ञानीजन; **तत्त्वम्**—परम सत्य को; **यत्**—जो; **ज्ञानम्**—ज्ञान; **अद्वयम्**—द्वैत रहित; **ब्रह्म**—ब्रह्म; **इति**—इस प्रकार; **परमात्मा**—परमात्मा; **इति**—इस प्रकार; **भगवान्**—भगवान्; **इति**—इस प्रकार; **शब्द्यते**—कहे जाते हैं।

अनुवाद

"'विद्वान अध्यात्मवादी, जो परम सत्य को जानते हैं, कहते हैं कि वे ही अद्वय ज्ञान हैं और वे ही निराकार ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा भगवान् कहलाते हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१.२.११) का है। इसकी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला २.११।

सेइ अद्वय-तत्त्व कृष्ण——स्वयं-भगवान् ।
तिन-काले सत्य तिँहो——शास्त्र-प्रमाण ॥ ७५ ॥

सेइ—वही; **अद्वय-तत्त्व**—द्वैत रहित परम पुरुष; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **स्वयम्-भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम पुरुषोत्तम भगवान्; **तिन-काले**—तीनों कालों (भूत, वर्तमान तथा भविष्य) में; **सत्य**—सत्य; **तिंहो**—वे; **शास्त्र-प्रमाण**—सभी वैदिक शास्त्रों का प्रमाण।

अनुवाद

"वे अद्वय परम सत्य कृष्ण हैं, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। वे भूत, वर्तमान तथा भविष्य के परम सत्य हैं। यही समस्त प्रामाणिक शास्त्रों का प्रमाण है।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत्सदसत्परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥ ७६ ॥

अहम्—मैं, परम भगवान्; **एव**—निश्चित रूप से; **आसम्**—उपस्थित था; **एव**—केवल; **अग्रे**—सृष्टि से पूर्व; **न**—नहीं; **अन्यत्**—और कुछ भी; **यत्**—जो; **सत्**—परिणाम; **असत्**—कारण; **परम्**—परम; **पश्चात्**—बाद में; **अहम्**—मैं, परम भगवान्; **यत्**—जो; **एतत्**—यह सृष्टि; **च**—तथा; **यः**—जो; **अवशिष्येत**—बचता है; **सः**—वह; **अस्मि**—हूँ; **अहम्**—मैं, परम भगवान्।

अनुवाद

"'सृष्टि के पूर्व केवल मैं विद्यमान रहता हूँ, कोई स्थूल, सूक्ष्म या आदि तत्त्व कुछ भी नहीं रहता। सृष्टि के बाद मैं ही प्रत्येक वस्तु में विद्यमान रहता हूँ और संहार के बाद केवल मैं ही शाश्वत रूप से रह जाता हूँ।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (२.९.३३) का है, जो भगवान् कृष्ण द्वारा कहा गया है। इसकी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला १.५३।

'आत्म'-शब्दे कहे कृष्ण बृहत्त्व-स्वरूप ।
सर्व-व्यापक, सर्व-साक्षी, परम-स्वरूप ॥७७॥

'आत्म'-शब्दे कहे कृष्ण बृहत्त्व-स्वरूप ।
सर्व-व्यापक, सर्व-साक्षी, परम-स्वरूप ॥७७॥

आत्म-शब्दे—*आत्मा* शब्द द्वारा; **कहे**—कहा जाता है; **कृष्ण**—परम भगवान् कृष्ण; **बृहत्त्व**—सबसे श्रेष्ठ; **स्वरूप**—स्वरूप; **सर्व-व्यापक**—सर्वव्यापक; **सर्व-साक्षी**—सबके साक्षी; **परम-स्वरूप**—परम स्वरूप।

अनुवाद

"'आत्मा' शब्द सर्वोच्च सत्य, कृष्ण का सूचक है। वे सबके सर्वव्यापी साक्षी हैं और परम स्वरूप हैं।

आततत्वाच्च मातृत्वादात्मा हि परमो हरिः ॥७८॥

आततत्वाच्च मातृत्वादात्मा हि परमो हरिः ॥७८॥

आततत्वात्—सर्वव्यापक होने के कारण; **च**—तथा; **मातृत्वात्**—जन्म देने के कारण; **आत्मा**—आत्मा; **हि**—अवश्य; **परमः**—परम; **हरिः**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, हरि।

अनुवाद

"'भगवान् हरि प्रत्येक वस्तु के सर्वव्यापक आदि उद्गम हैं। इसलिए वे सबके परमात्मा हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीधर स्वामी कृत *श्रीमद्भागवत* की टीका *भावार्थ-दीपिका* से उद्धृत है।

सेइ कृष्ण-प्राप्ति-हेतु त्रिविध 'साधन' ।
ज्ञान, योग, भक्ति,—तिनेर पृथक्लक्षण ॥७९॥

सेइ कृष्ण-प्राप्ति-हेतु त्रिविध 'साधन' ।
ज्ञान, योग, भक्ति,—तिनेर पृथक्लक्षण ॥७९॥

सेइ—वे; **कृष्ण-प्राप्ति**—कृष्ण के चरणकमल प्राप्त करने के; **हेतु**—हेतु; **त्रि-विध साधन**—तीन प्रकार के साधन; **ज्ञान**—ज्ञान; **योग**—योगाभ्यास; **भक्ति**—भक्ति, प्रेममयी सेवा; **तिनेर**—इन तीनों के; **पृथक् लक्षण**—भिन्न लक्षण हैं।

अनुवाद

"परम सत्य कृष्ण के चरणकमलों को प्राप्त करने के तीन साधन हैं। ये हैं—दार्शनिक चिन्तन, योगाभ्यास तथा भक्तिमय सेवा। इन तीनों के लक्षण अलग-अलग हैं।

तिन साधने भगवान्तिन स्वरूपे भासे ।
ब्रह्म, परमात्मा, भगवत्ता,—त्रिविध प्रकाशे ॥८०॥

तिन साधने भगवान् तिन स्वरूपे भासे ।
ब्रह्म, परमात्मा, भगवत्ता,—त्रिविध प्रकाशे ॥८०॥

तिन साधने—इन तीन भिन्न प्रक्रियाओं द्वारा; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **तिन**—तीन; **स्वरूपे**—स्वरूपों में; **भासे**—प्रकट होते हैं; **ब्रह्म**—निराकार पहलू; **परमात्मा**—परमात्मा; **भगवत्ता**—तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **त्रिविध प्रकाशे**—तीन प्रकार के प्राकट्य।

अनुवाद

"परम सत्य तो एक ही हैं, किन्तु उन्हें समझने के प्रक्रिया के अनुसार वे—ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् ये तीन रूपों में—प्रकट होते हैं।

बदन्ति तत्तत्त्व-विदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ ८१ ॥

वदन्ति तत्तत्त्व-विदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ ८१ ॥

वदन्ति—वे कहते हैं; **तत्**—उसको; **तत्त्व-विदः**—विद्वान; **तत्त्वम्**—परम सत्य को; **यत्**—जो; **ज्ञानम्**—ज्ञान; **अद्वयम्**—द्वैत रहित; **ब्रह्म**—ब्रह्म; **इति**—इस प्रकार; **परमात्मा**—परमात्मा; **इति**—इस प्रकार; **भगवान्**—भगवान्; **इति**—इस प्रकार; **शब्द्यते**—कहा जाता है।

अनुवाद

"'परम सत्य को जानने वाले विद्वान अध्यात्मवादी कहते हैं कि यह अद्वय ज्ञान है और निर्विशेष ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा भगवान् कहलाता है।'

'ब्रह्म-आत्मा'-शब्दे यदि कृष्णेरे कहय ।
'रूढ़ि-वृत्त्ये' निर्विशेष अन्तर्यामी कय ॥ ८२ ॥

'ब्रह्म-आत्मा'-शब्दे यदि कृष्णेरे कहय ।
'रूढ़ि-वृत्त्ये' निर्विशेष अन्तर्यामी कय ॥ ८२ ॥

ब्रह्म-आत्मा-शब्दे—ब्रह्मा तथा आत्मा शब्द द्वारा; **यदि**—यदि; **कृष्णेरे कहय**—कृष्ण लक्षित होते हैं; **रूढ़ि-वृत्त्ये**—प्रत्यक्ष अर्थ द्वारा; **निर्विशेष**—निराकार; **अन्तर्यामी**—परमात्मा; **कय**—कहा जाता है।

अनुवाद

"यद्यपि 'ब्रह्म' तथा 'आत्मा' शब्द कृष्ण के सूचक हैं, किन्तु उनके प्रत्यक्ष अर्थ क्रमशः निर्विशेष ब्रह्म तथा परमात्मा के ही सूचक हैं।

ज्ञान-मार्गे—निर्विशेष-ब्रह्म प्रकाशे ।
योग-मार्गे—अन्तर्यामि-स्वरूपेते भासे ॥ ८३ ॥

ज्ञान-मार्गे—निर्विशेष-ब्रह्म प्रकाशे ।
योग-मार्गे—अन्तर्यामि-स्वरूपेते भासे ॥ ८३ ॥

ज्ञान-मार्गे—दार्शनिक चिन्तन की प्रक्रिया; **निर्विशेष-ब्रह्म**—निराकार ब्रह्मज्योति;

प्रकाशे—प्रकट होती है; **योग-मार्गे**—योगाभ्यास द्वारा; **अन्तर्यामि-स्वरूपेते**—परमात्मा रूप में; **भासे**—प्रकट होते हैं।

अनुवाद

"यदि कोई दार्शनिक चिन्तन के मार्ग का अनुसरण करता है, तो परम सत्य अपने आपको निर्विशेष ब्रह्म के रूप में प्रकट करते हैं, किन्तु यदि वह योग का अनुगामी है, तो परम सत्य (भगवान्) स्वयं को परमात्मा के रूप में प्रकट करते हैं।

রাগ-ভক্তি-বিধি-ভক্তি হয় দুই-রূপ ।
'স্বয়ং-ভগবত্তে', ভগবত্তে—প্রকাশ দ্বি-রূপ ॥ ৮৪ ॥

রাগ-ভক্তি-বিধি-ভক্তি হয় দুই-রূপ ।
'স্বয়ং-ভগবত্ত্বে', ভগবত্ত্বে—প্রকাশ দ্বি-রূপ ॥ ৮৪ ॥

রাগ-ভক্তি—रागानुग भक्ति; **বিধি-ভক্তি**—साधना भक्ति; **হয়**—है; **দুই-রূপ**—दो प्रकार की भक्ति; **স্বয়ম্-ভগবত্ত্বে**—परम भगवान् में; **ভগবত্ত্বে**—तथा उनके निजी विस्तार में; **প্রকাশ দ্বি-রূপ**—दो प्रकार के प्राकट्य।

अनुवाद

"भक्ति-कर्म दो प्रकार का है—रागानुग (स्वतःस्फूर्त) तथा विधि-विधानपरक (साधन भक्ति)। रागानुगा भक्ति से मनुष्य को मूल भगवान् अर्थात् कृष्ण की प्राप्ति होती है और विधि-विधानों (वैधी भक्ति) से मनुष्य को भगवान् का विस्तार रूप प्राप्त होता है।

রাগ-ভক্ত্যে ব্রজে স্বয়ং-ভগবানে পায় ॥ ৮৫ ॥

রাগ-ভক্ত্যে ব্রজে স্বয়ং-ভগবানে পায় ॥ ৮৫ ॥

রাগ-ভক্ত্যে—रागानुग भक्ति सम्पन्न करने के द्वारा; **ব্রজে**—वृन्दावन में; **স্বয়ম্**—स्वयं; **ভগবানে**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को; **পায়**—प्राप्त करता है।

अनुवाद

"वृन्दावन में रागानुगा भक्ति सम्पन्न करने से मनुष्य को मूल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण प्राप्त होते हैं।

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिका-सुतः ।
ज्ञानिनां चात्म-भूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥ ८६॥

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिका-सुतः ।
ज्ञानिनां चात्म-भूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥ ८६॥

न—नहीं; **अयम्**—ये भगवान् कृष्ण; **सुख-आपः**—सरलता से प्राप्त; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **देहिनाम्**—उन भौतिकतावादी लोगों के लिए जिन्होंने शरीर को ही आत्मा मान लिया है; **गोपिका-सुतः**—माता यशोदा का पुत्र; **ज्ञानिनाम्**—मानसिक तर्क में रत लोगों के लिए; **च**—तथा; **आत्म-भूतानाम्**—कठोर तपस्याएँ करने वाले लोगों के लिए; **यथा**—जिस प्रकार; **भक्ति-मताम्**—भक्ति (प्रेममयी सेवा) में लगे हुए लोगों के लिए; **इह**—इस संसार में।

अनुवाद

"'माता यशोदा के पुत्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण रागानुगा प्रेमा-भक्ति में लगे भक्तों के लिए उपलब्ध हैं, किन्तु वे ज्ञानियों, कठिन तपस्या द्वारा आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करने वालों या शरीर को आत्मा के तुल्य मानने वालों के लिए उतनी सरलता से सुलभ नहीं होते।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.९.२१) का है, जिसे श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कहा था। व्याख्या के लिए देखें मध्य लीला ८.२२७।

विधि-भक्त्यो पार्षद-देहे वैकुण्ठेते याय ॥ ८७॥

विधि-भक्त्ये पार्षद-देहे वैकुण्ठेते याय ॥ ८७॥

विधि-भक्त्ये—वैधी साधना भक्ति द्वारा; **पार्षद-देहे**—भगवान् के एक पार्षद के रूप में; **वैकुण्ठेते याय**—वैकुण्ठ लोक प्राप्त करता है।

अनुवाद

"वैधी भक्ति करने से मनुष्य नारायण का पार्षद बनता है और आध्यात्मिक आकाश में वैकुण्ठ लोक प्राप्त करता है।

यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या
दूरे-यमा ह्युपरि नः स्पृहणीय-शीलाः ।

भर्तुर्मिथः सु-यशसः कथनानुरागः
वैक्लव्य-बाष्प-कलया पुलकी-कृताङ्गाः ॥ ८८॥

यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या
दूरे-यमा ह्युपरि नः स्पृहणीय-शीलाः ।
भर्तुर्मिथः सु-यशसः कथनानुराग-
वैक्लव्य-बाष्प-कलया पुलकी-कृताङ्गाः ॥ ८८ ॥

यत्—जो; **च**—तथा; **व्रजन्ति**—जाता है; **अनिमिषाम्**—देवताओं के; **ऋषभ-अनुवृत्त्या**—आध्यात्मिक जीवन के श्रेष्ठ अभ्यास द्वारा; **दूरे**—दूर से ही; **यमाः**—यम; **हि**—अवश्य; **उपरि**—ऊपर; **नः**—हमारे; **स्पृहणीय-शीलाः**—इच्छित गुणों से सुशोभित; **भर्तुः**—स्वामी के; **मिथः**—साथ मिलकर; **सु-यशसः**—जिसके सभी दिव्य गुण हैं; **कथन-अनुराग**—चर्चा के प्रति आकर्षित; **वैक्लव्य**—रूपान्तर; **बाष्प-कलया**—आँखों में आंसुओं के साथ; **पुलकी-कृत**—आनन्दित; **अङ्गाः**—शरीर के अंग।

अनुवाद

"'जो भगवान् कृष्ण के कार्यों की चर्चा करते हैं, वे भक्ति के चरम पद को प्राप्त रहते हैं और उनके नेत्रों से अश्रु तथा शारीरिक पुलक के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे लोग योग-पद्धति के विधि-विधानों का अभ्यास किये बिना ही कृष्ण की भक्ति करते हैं। उनमें सारे आध्यात्मिक गुण पाये जाते हैं और वे वैकुण्ठ लोकों को जाते हैं, जो हमारे ऊपर स्थित हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (३.१५.२५) से उद्धृत है। इस श्लोक में ब्रह्माजी दिति के गर्भ में स्थित दो असुरों से भयभीत सभी देवताओं को बता रहे हैं कि किस प्रकार चार कुमार वैकुण्ठ गये। बाद में व्यासदेव के मित्र मैत्रेय ने इसी की व्याख्या विदुर को उपदेश देते समय की।

সেই উপাসক হয় ত্রিবিধ প্রকার ।
অকাম, মোক্ষ-কাম, সর্ব-কাম আর ॥ ৮৯॥

সেই উপাসক হয় ত্রিবিধ প্রকার ।
অকাম, মোক্ষ-কাম, সর্ব-কাম আর ॥ ৮৯ ॥

सेइ उपासक—वे भक्त; **हय**—होते हैं; **त्रि-विध प्रकार**—तीन प्रकार के; **अकाम**—भौतिक इच्छाओं से रहित; **मोक्ष-काम**—मुक्त होने के इच्छुक; **सर्व-काम**—सभी भौतिक इच्छाओं से पूर्ण; **आर**—तथा।

अनुवाद

"भक्तगण तीन वर्गों में विभाजित हैं—अकाम (निष्काम), मोक्षकाम (मोक्ष के इच्छुक) तथा सर्वकाम (भौतिक सिद्धि के इच्छुक)।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥९०॥

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥९०॥

अकामः—भौतिक इच्छाओं से रहित; **सर्व-कामः**—सभी भौतिक इच्छाओं से पूर्ण; **वा**—या; **मोक्ष-कामः**—मुक्ति का इच्छुक; **उदार-धीः**—भक्ति में उन्नत एवं सन्निष्ठ; **तीव्रेण**—दृढ़ तथा उत्साहपूर्ण; **भक्ति-योगेन**—भक्तियोग के अभ्यास द्वारा; **यजेत**—उपासना करनी चाहिए; **पुरुषम् परम्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की।

अनुवाद

"'जो वास्तव में बुद्धिमान है, वह भले ही भौतिक इच्छाओं से मुक्त भक्त हो, या सारी भौतिक सुविधाएँ चाहने वाला कर्मी हो अथवा मोक्ष की कामना करने वाला ज्ञानी हो, उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की तुष्टि के लिए गम्भीरतापूर्वक भक्तियोग का पालन करना चाहिए।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (२.३.१०) का है।

बुद्धिमानर्थे—यदि 'विचार-ज्ञ' हय ।
निज-काम लागिह तबे कृष्णेरे भजय ॥९१॥

बुद्धिमान्-अर्थे—यदि 'विचार-ज्ञ' हय ।
निज-काम लागिह तबे कृष्णेरे भजय ॥९१॥

बुद्धिमान्-अर्थे—बुद्धिमान के अर्थ द्वारा; **यदि**—यदि; **विचार-ज्ञ**—विचार करने में दक्ष;

हय—हो; **निज-काम लागिह**—अपनी भौतिक भोग की इच्छा के लिए; **तबे**—तब; **कृष्णेरे भजन**—भगवान् कृष्ण की सेवा करता है।

अनुवाद

"'उदारधीः' शब्द का अर्थ बुद्धिमान या विचारवान है। इसीलिए मनुष्य अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए भी कृष्ण की भक्ति में संलग्न होता है।

भक्ति विनु कोन साधन दिते नारे फल ।
सब फल देय भक्ति स्वतन्त्र प्रबल ॥९२॥

भक्ति विनु कोन साधन दिते नारे फल ।
सब फल देय भक्ति स्वतन्त्र प्रबल ॥९२॥

भक्ति विनु—भक्ति के बिना; **कोन**—कोई; **साधन**—साधन; **दिते**—देने में; **नारे**—समर्थ नहीं; **फल**—परिणाम; **सब फल**—विभिन्न प्रक्रियाओं के फल; **देय**—देती है; **भक्ति**—भक्ति; **स्व-तन्त्र**—स्वतन्त्र; **प्रबल**—तथा शक्तिशाली।

अनुवाद

"अन्य विधियाँ तब तक कोई फल प्रदान नहीं कर सकतीं, जब तक उनकी संगति भक्ति से नहीं हो जाती। किन्तु भक्ति इतनी प्रबल तथा स्वतन्त्र है कि यह मनुष्य को सारे वांछित फल दे सकती है।

अजा-गल-स्तन-न्याय अन्य साधन ।
अतएव हरि भजे बुद्धिमान्जन ॥९३॥

अजा-गल-स्तन-न्याय अन्य साधन ।
अतएव हरि भजे बुद्धिमान् जन ॥९३॥

अजा-गल-स्तन-न्याय—बकरी के गले के स्तन के समान; **अन्य**—अन्य; **साधन**—साधन; **अतएव**—इसलिए; **हरि**—भगवान् हरि की; **भजे**—उपासना करता है; **बुद्धिमान् जन**—बुद्धिमान व्यक्ति।

अनुवाद

"भक्ति को छोड़कर आत्म-साक्षात्कार की सारी विधियाँ बकरी के गले के स्तन के समान हैं। अतः बुद्धिमान मनुष्य आत्म-साक्षात्कार की अन्य सारी विधियों को त्यागकर एकमात्र भक्ति को अपनाता है।

तात्पर्य

भक्ति के बिना आत्म-साक्षात्कार तथा आध्यात्मिक जीवन की अन्य सारी विधियाँ व्यर्थ हैं। अन्य विधियों से कभी-भी अच्छे फल प्राप्त नहीं हो सकते, इसीलिए उनकी तुलना बकरी के गले से लटकने वाले स्तनों से की गई है। देखने से लगता है कि इन स्तनों से दूध निकल सकता है, किन्तु इनसे दूध नहीं निकलता। अज्ञानी व्यक्ति यह नहीं समझ पाता कि भक्ति ही मनुष्य को दिव्य स्तर पर ऊपर उठा सकती है।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥९४॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ ९४॥

चतुः-विधाः—चार प्रकार के; **भजन्ते**—उपासना करते हैं; **माम्**—मुझे; **जनाः**—लोग; **सुकृतिनः**—जिन्होंने वर्णाश्रम के नियमों का पालन किया है; **अर्जुन**—हे अर्जुन; **आर्तः**—दुःखी; **जिज्ञासुः**—जिज्ञासु; **अर्थ-अर्थी**—धन का इच्छुक; **ज्ञानी**—ज्ञान का अनुशीलन करने वाला; **च**—तथा; **भरत-ऋषभ**—हे भरतवासियों में श्रेष्ठ।

अनुवाद

"'हे भरत-श्रेष्ठ (अर्जुन), चार प्रकार के पुण्यात्मा मेरी भक्ति करते हैं—आर्त (दुःखी), धन का इच्छुक, जिज्ञासु तथा परम पूर्ण के ज्ञान की खोज करने वाला।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *भगवद्गीता* (७.१६) से लिया गया है। इस श्लोक में *सुकृतिनः* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। *सु* का अर्थ है "शुभ" और *कृती* का अर्थ है "प्रतिभाशाली" अथवा "संयमी।" जब तक मनुष्य धार्मिक जीवन के विधि-विधानों का पालन नहीं करता, तब तक मानव-जीवन पशु-जीवन से भिन्न नहीं होता। धार्मिक जीवन का अर्थ है वर्ण तथा आश्रम के सिद्धान्तों का पालन करना। *विष्णु पुराण* में कहा गया है :

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत् तत्तोषकारणम्॥

धार्मिक जीवन के अनुसार, समाज चार सामाजिक विभागों (वर्णों)—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र एवं चार आध्यात्मिक विभागों (आश्रमों)—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास—में विभाजित किया गया है। जिस तरह मनुष्य को इंजीनियर, डाक्टर या वकील बनने के लिए प्रशिक्षित होना पड़ता है, उसी तरह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बनने के लिए प्रशिक्षित होना आवश्यक होता है। जिन्हें समुचित प्रशिक्षण मिला रहता है, वे तो मानव माने जा सकते हैं; किन्तु जिसे सामाजिक तथा आध्यात्मिक रीति से प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ रहता—अर्थात् जो अशिक्षित एवं असंयमित है—वह पशु स्तर पर रहता है। पशुओं में आध्यात्मिक उन्नति का प्रश्न ही नहीं उठता। आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति उपयुक्त प्रशिक्षण द्वारा ही हो सकती है, चाहे यह वर्ण तथा आश्रम के सिद्धान्तों के अनुपालन करने से हो या *श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं/ अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्* की विधियों द्वारा भक्तियोग में प्रत्यक्ष प्रशिक्षण द्वारा हो। प्रशिक्षण के बिना कोई *सुकृती* नहीं हो सकता। इस श्लोक में कृष्ण बतलाते हैं कि लोग उनके पास या तो संकट में पड़ने पर या धन की आवश्यकता पड़ने पर या भगवान् को जानने की वास्तविक जिज्ञासा होने पर अथवा उन्हें सबका मूल स्रोत समझकर आते हैं। कुछ लोग परम सत्य विषयक ज्ञान की खोज में उन तक पहुँचते हैं और कुछ कष्ट में पड़ने पर पहुँचते हैं, यथा गजेन्द्र जैसे भक्त। कुछ लोग सनक आदि कुमारों की तरह जिज्ञासु होते हैं और कुछ को धन की आवश्यकता होती है यथा ध्रुव महाराज। शुकदेव गोस्वामी भगवान् के पास तब गये, जब उन्हें ज्ञान की आवश्यकता हुई। इस तरह ये सारे महापुरुष पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की भक्ति करने लगे।

आर्त, अर्थार्थी,—दुइ सकाम-भितरे गणि ।
जिज्ञासु, ज्ञानी,—दुइ मोक्ष-काम मानि ॥ ९५ ॥

आर्त, अर्थार्थी,—दुइ सकाम-भितरे गणि ।
जिज्ञासु, ज्ञानी,—दुइ मोक्ष-काम मानि ॥ ९५ ॥

आर्त—दुःखी; **अर्थ-अर्थी**—धन का इच्छुक; **दुइ**—दोनों; **सकाम-भितरे**—भौतिक

इच्छाओं से युक्त लोगों की श्रेणी में; **गणि**—हम मानते हैं; **जिज्ञासु**—जिज्ञासु; **ज्ञानी**—ज्ञानी; **दुइ**—दोनों; **मोक्ष-काम**—मुक्ति के लिए आध्यात्मिक ज्ञान अर्जित करने वाले लोग; **मानि**—मैं मानता हूँ।

अनुवाद

"भौतिकतावादी भक्तगण भक्ति तथा कृष्ण की पूजा तब करते हैं, जब वे संकट में होते हैं या उन्हें धन की आवश्यकता होती है। जो लोग हर वस्तु के परम स्त्रोत को जानने के लिए वास्तव में उत्सुक रहते हैं, तथा जो लोग ज्ञान की खोज में रहते हैं, वे अध्यात्मवादी कहलाते हैं, क्योंकि वे समस्त भौतिक कल्मष से मुक्ति चाहते हैं।

एइ चारि सुकृति हय महा-भाग्यवान् ।
तत्तत्कामादि छाड़ि' हय शुद्ध-भक्तिमान् ॥ ९६ ॥

एइ चारि सुकृति हय महा-भाग्यवान् ।
तत्तत्कामादि छाड़ि' हय शुद्ध-भक्तिमान् ॥ ९६ ॥

एइ चारि—ये चारों लोग; **सुकृति**—पुण्यवान लोग; **हय**—हैं; **महा-भाग्यवान्**—महा भाग्यवान; **तत्-तत्**—वे अपनी-अपनी; **काम-आदि**—इच्छाएँ; **छाड़ि'**—छोड़कर; **हय**—बन जाते हैं; **शुद्ध-भक्तिमान्**—शुद्ध भक्त।

अनुवाद

"पवित्र पृष्ठभूमि होने के कारण इन चारों प्रकार के लोगों को अत्यन्त भाग्यवान मानना चाहिए। ऐसे लोग धीरे-धीरे भौतिक इच्छाओं का परित्याग कर देते हैं और शुद्ध भक्त बन जाते हैं।

साधु-सङ्ग-कृपा किम्वा कृष्णेर कृपाय ।
कामादि 'दुःसङ्ग' छाड़ि' शुद्ध-भक्ति पाय ॥ ९७ ॥

साधु-सङ्ग-कृपा किम्वा कृष्णेर कृपाय ।
कामादि 'दुःसङ्ग' छाड़ि' शुद्ध-भक्ति पाय ॥ ९७ ॥

साधु-सङ्ग-कृपा—भक्तों के संग की कृपा द्वारा; **किम्वा**—या; **कृष्णेर कृपाय**—कृष्ण की कृपा द्वारा; **काम-आदि**—भौतिक इच्छाएँ आदि; **दुःसङ्ग**—कुसंग; **छाड़ि'**—छोड़कर; **शुद्ध-भक्ति पाय**—शुद्ध प्रेममयी सेवा का पद प्राप्त करता है।

अनुवाद

"वैष्णव, प्रामाणिक गुरु तथा कृष्ण की विशेष कृपा से ही मनुष्य भक्ति-पद को प्राप्त होता है। इस पद पर मनुष्य सारी भौतिक इच्छाओं तथा अवांछित लोगों की संगति को त्याग देता है। इस तरह मनुष्य शुद्ध भक्ति के पद को प्राप्त करता है।

सत्सङ्गान्मुक्त-दुःसङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः ।
कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥९८॥

सत्सङ्गान्मुक्त-दुःसङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः ।
कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥ ९८ ॥

सत्-सङ्गात्—शुद्ध भक्तों के संग द्वारा; **मुक्त**—मुक्त; **दुःसङ्गः**—भौतिकतावादी लोगों का संग; **हातुम्**—त्यागने के लिए; **न**—नहीं; **उत्सहते**—समर्थ; **बुधः**—जो ज्ञानी है; **कीर्त्यमानम्**—गुणगान किये जाते हुए; **यशः**—यश; **यस्य**—जिनका (भगवान्); **सकृत्**—एक बार; **आकर्ण्य**—सुनकर; **रोचनम्**—अत्यन्त रुचिकर।

अनुवाद

"'बुद्धिमान लोग, जिन्होंने शुद्ध भक्तों की संगति में रहकर परमेश्वर को समझ लिया है और जो भौतिक कुसंगति से मुक्त हो चुके हैं, पहले केवल एक बार सुनने पर भी भगवान् की महिमा के श्रवण की उपेक्षा नहीं कर सकते।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१.१०.११) का है। कुरुक्षेत्र के युद्ध के बाद जब कृष्ण हस्तिनापुर छोड़कर जा रहे थे, तब सभी कुरुवंशियों ने कृष्ण को प्रणाम किया। चूँकि कृष्ण अपने राज्य को जा रहे थे, इसलिए सभी कुरुवंशी उनकी विदाई से विह्वल हो गये थे। इसी सन्दर्भ में यह श्लोक शुकदेव गोस्वामी ने कहा था।

शुद्ध भक्त भगवान् की महिमा सुनकर कृष्ण के प्रति आसक्त हो जाता है। भगवान् की महिमा तथा स्वयं भगवान् अभिन्न हैं। इस परम सत्य को समझने के लिए योग्यता चाहिए, इसलिए हर एक को शुद्ध भक्तों की संगति करने का

अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसी उद्देश्य के निमित्त है। हम शुद्ध भक्त उत्पन्न करना चाहते हैं, जिससे अन्य लोग उनकी संगति से लाभ उठा सकें। इस तरह से शुद्ध भक्तों की संख्या बढ़ेगी। पेशेवर प्रचारक शुद्ध भक्त उत्पन्न नहीं कर सकते। *श्रीमद्भागवत* के ऐसे अनेक पेशेवर प्रचारक हैं, जो अपने जीविकोपार्जन के लिए इसका प्रवचन करते हैं। किन्तु वे लोग भौतिकतावादियों को भक्ति की ओर उन्मुख नहीं कर सकते। केवल शुद्ध भक्त ही दूसरों को शुद्ध भक्ति की ओर मोड़ सकता है। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सभी प्रचारक पहले शुद्ध भक्त बनें और अवैध यौन सम्बन्ध, मांसाहार, मादक द्रव्यों तथा जुए से दूर रहने के विधि-विद्यानों का पालन करें। उन्हें चाहिए कि नियमित रूप में अपनी जपमाला में हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करें, भक्ति-प्रक्रिया का पालन करें, प्रातःकाल जल्दी उठें, मंगल आरती में सम्मिलित हों और नियमित रूप से *श्रीमद्भागवत* तथा *भगवद्गीता* का पाठ करें। इस तरह से मनुष्य शुद्ध तथा सारे भौतिक कल्मष से मुक्त हो सकता है।

सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते॥

"भक्ति का अर्थ है अपनी सभी इन्द्रियों को इन्द्रियों के स्वामी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा में लगाना। जब आत्मा भगवान् की सेवा करता है, तो उसके दो अतिरिक्त परिणाम होते हैं। एक यह है कि मनुष्य सभी भौतिक उपाधियों से मुक्त हो जाता है और दूसरा यह कि मात्र भगवान् की सेवा में लगे रहने से उसकी इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाती हैं। (*नारद पञ्चरात्र*)

भक्ति का दिखावा करने से काम नहीं चलने वाला। मनुष्य को भक्तियोग का पालन करके शुद्ध भक्त बनना चाहिए, तभी वह दूसरों को भक्ति की ओर मोड़ सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु भक्ति का पालन करते थे और प्रचार भी करते थे (*आपनि आचरि भक्ति करिल प्रचार*)। यदि प्रचारक भक्ति में रहकर समुचित आचरण करता है, तो वह दूसरों का बदल सकेगा, अन्यथा उसका प्रचार-कार्य व्यर्थ होगा।

'दुःसङ्ग' कहिये—'कैतव', 'आत्म-वञ्चना' ।
कृष्ण, कृष्ण-भक्ति विनु अन्य कामना ॥९९॥

'दुःसङ्ग' कहिये—'कैतव', 'आत्म-वञ्चना' ।
कृष्ण, कृष्ण-भक्ति विनु अन्य कामना ॥९९॥

दुःसङ्ग—बुरी संगति; **कहिये**—मैं कहता हूँ; **कैतव**—कपट; **आत्म-वञ्चना**—स्वयं को छलना; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **कृष्ण-भक्ति**—कृष्ण की प्रेममयी सेवा; **विनु**—बिना; **अन्य**—अन्य; **कामना**—इच्छाएँ।

अनुवाद

"अपने आपको और दूसरों को ठगना कैतव कहा जाता है। इस तरह ठगने वाले ठगों की संगति करना दुःसंग कहलाता है, जिसका अर्थ है बुरी संगति। जो लोग कृष्ण की सेवा करने के अतिरिक्त अन्य बातें चाहते हैं, वे भी दुःसंग कहलाते हैं।

धर्मः प्रोज्झित-कैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिव-दं ताप-त्रयोन्मूलनम् ।
श्रीमद्भागवते महा-मुनि-कृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥१००॥

धर्मः प्रोज्झित-कैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिव-दं ताप-त्रयोन्मूलनम् ।
श्रीमद्भागवते महा-मुनि-कृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥१००॥

धर्मः—धार्मिकता; **प्रोज्झित**—पूर्णतया तिरस्कृत; **कैतवः**—जिसमें सकाम इच्छाएँ हैं; **अत्र**—इसमें; **परमः**—परम; **निर्मत्सराणाम्**—पूर्ण शुद्ध हृदय वालों के; **सताम्**—भक्तों के; **वेद्यम्**—समझने के लिए; **वास्तवम्**—वास्तविक; **अत्र**—यहाँ; **वस्तु**—वस्तु; **शिव-दम्**—सौभाग्य प्रदान करने वाली; **ताप-त्रय**—तीनों तापों का; **उन्मूलनम्**—नाश करने वाली; **श्रीमत्**—सुन्दर; **भागवते**—भागवत पुराण में; **महा-मुनि**—महामुनी व्यासदेव द्वारा; **कृते**—संकलित; **किम्**—क्या; **वा**—वास्तव में; **परैः**—दूसरों के साथ; **ईश्वरः**—परम भगवान्; **सद्यः**—तुरन्त; **हृदि**—हृदय में; **अवरुध्यते**—बस जाते हैं; **अत्र**—यहाँ; **कृतिभिः**—पुण्यवान लोगों द्वारा; **शुश्रूषुभिः**—जो सुनने के इच्छुक हैं; **तत्-क्षणात्**—बिना विलम्ब के।

अनुवाद

"'महामुनि व्यासदेव द्वारा चार प्रारम्भिक श्लोकों से विरचित महान् शास्त्र श्रीमद्भागवत में अत्यन्त दयालु-हृदय वाले उन्नत भक्तों का वर्णन हुआ है और इसमें भौतिकता से प्रेरित धार्मिकता के वंचना-मार्गों का पूरा बहिष्कार हुआ है। वह शाश्वत धर्म के सर्वोच्च सिद्धान्तों की स्थापना करता है, जिनसे जीव के तीन प्रकार के कष्ट वास्तविक रूप से दूर हो सकते हैं और वह सम्पन्नता तथा ज्ञान का सर्वोच्च वर प्रदान कर सकता है। जो लोग विनीत होकर सेवाभाव से इस शास्त्र का सन्देश ग्रहण करना चाहते हैं, वे तुरन्त ही भगवान् को अपने हृदयों में बन्दी बना सकते हैं। अतएव *श्रीमद्भागवत* के अतिरिक्त अन्य किसी शास्त्र की आवश्यकता नहीं है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (१.१.२) का है। इसी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला (१.९१)।

'प्र'-शब्दे——मोक्ष-वाञ्छा कैतव-प्रधान ।
एइ श्लोके श्रीधर-स्वामी करियाछेन व्याख्यान ॥ १०१॥

'प्र'-शब्दे——मोक्ष-वाञ्छा कैतव-प्रधान ।
एइ श्लोके श्रीधर-स्वामी करियाछेन व्याख्यान ॥ १०१ ॥

प्र-शब्दे—*प्र* उपसर्ग द्वारा; **मोक्ष-वाञ्छा**—मुक्त होने की इच्छा; **कैतव-प्रधान**—प्रथम श्रेणी का छल; **एइ श्लोके**—इस श्लोक में; **श्रीधर-स्वामी**—महान् टीकाकार श्रीधर स्वामी ने; **करियाछेन**—किया है; **व्याख्यान**—व्याख्यान।

अनुवाद

"'प्रोज्झित' शब्द के प्रारम्भ में 'प्र' उपसर्ग विशेष रूप से मोक्षकामी या ब्रह्म में लीन होने के इच्छुक लोगों की ओर संकेत करता है। ऐसी इच्छा को ठग-प्रवृत्ति में प्रमुख माननी चाहिए। महान् भाष्यकार श्रीधर स्वामी ने इस श्लोक की व्याख्या इसी रूप में की है।

সকাম-ভক্তে 'অজ্ঞ' জানি' দয়ালু ভগবান্ ।
স্ব-চরণ দিয়া করে ইচ্ছার পিধান ॥ ১০২ ॥

सकाम-भक्ते 'अज्ञ' जानि' दयालु भगवान् ।
स्व-चरण दिया करे इच्छार पिधान ॥ १०२ ॥

सकाम-भक्ते—भौतिक इच्छाओं से युक्त भक्तों को; **अज्ञ**—अज्ञानी; **जानि'**—जानकर; **दयालु**—दयालु; **भगवान्**—श्रीकृष्ण; **स्व-चरण**—अपने चरणकमल; **दिया**—देकर; **करे**—करते हैं; **इच्छार पिधान**—अन्य इच्छाओं का अन्त।

अनुवाद

"जब दयालु भगवान् यह समझ लेते हैं कि मूर्ख भक्त भौतिक सम्पन्नता चाहता है, तो वे उसे अपने चरणकमलों में कृपा करके शरण देते हैं। इस तरह भगवान् उसकी अवांछित इच्छाओं को ढक देते हैं।

সত্যং দিশত্যর্থিতমর্থিতো নৃণাং
নৈবার্থ-দো যত্পুনরর্থিতা যতঃ ।
স্বয়ং বিধত্তে ভজতামনিচ্ছতাম্
ইচ্ছা-পিধানং নিজ-পাদ-পল্লবম্ ॥ ১০৩ ॥

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थ-दो यत्पुनरर्थिता यतः ।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छताम्
इच्छा-पिधानं निज-पाद-पल्लवम् ॥ १०३ ॥

सत्यम्—यह सत्य है; **दिशति**—वे प्रदान करते हैं; **अर्थितम्**—जो इच्छित है; **अर्थितः**—माँगा गया; **नृणाम्**—मनुष्यों द्वारा; **न**—नहीं; **एव**—अवश्य; **अर्थ-दः**—इच्छित वस्तुएँ देते हुए; **यत्**—जो; **पुनः**—दोबारा ; **अर्थिता**—माँगें; **यतः**—जिसके द्वारा; **स्वयम्**—स्वयं को; **विधत्ते**—वे देते हैं; **भजताम्**—भक्ति में लगे लोगों को; **अनिच्छताम्**—इच्छा न होने पर भी ; **इच्छा-पिधानम्**—अन्य सभी इच्छाओं को आवृत करके; **निज-पाद-पल्लवम्**—अपने चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

"'जब भी कोई कृष्ण से अपनी इच्छापूर्ति के लिए प्रार्थना करता है, तो वे उसे अवश्य ही पूरी कर देते हैं, किन्तु वे कोई ऐसी वस्तु प्रदान नहीं

करते जिससे उसे बारम्बार अपनी और इच्छाएँ पूरी करने के लिए याचना करनी पड़े। जब मनुष्य अन्य इच्छाएँ होने पर भी भगवान् की सेवा में लगा रहता है, तो कृष्ण उसे बलात् अपने चरणकमलों में शरण प्रदान करते हैं, जहाँ व्यक्ति अन्य सारी इच्छाएँ इच्छाओं को भूल जाता है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (५.१९.२७) से है।

साधु-सङ्ग, कृष्ण-कृपा, भक्तिर स्वभाव ।
ए तिने सब छाड़ाय, करे कृष्णे 'भाव' ॥१०४॥

साधु-सङ्ग, कृष्ण-कृपा, भक्तिर स्वभाव ।
ए तिने सब छाड़ाय, करे कृष्णे 'भाव' ॥ १०४॥

साधु-सङ्ग—भक्तों का संग; **कृष्ण-कृपा**—भगवान् कृष्ण की कृपा; **भक्तिर**—प्रेममयी सेवा का; **स्वभाव**—स्वभाव; **ए तिने**—ये तीनों; **सब छाड़ाय**—अन्य सब कुछ छुड़वा देते हैं; **करे**—करते हैं; **कृष्णे**—भगवान् कृष्ण के प्रति; **भाव**—प्रेमभाव।

अनुवाद

"साधु-संग, कृष्ण-कृपा तथा भक्ति की प्रकृति—ये तीनों समस्त अवांछित संगति को त्यागने तथा क्रमशः भगवत्प्रेम का पद प्राप्त करने में सहायक होते हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक में शुद्ध भक्तों की संगति, कृष्ण-कृपा तथा भक्ति सम्पन्न करने का उल्लेख हुआ है। इन सबसे अभक्तों की संगति तथा बहिरंगा शक्ति, माया द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्य को छोड़ने में सहायता मिलती है। शुद्ध भक्त कभी भी भौतिक ऐश्वर्य के द्वारा आकृष्ट नहीं होता, क्योंकि वह जानता है कि भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त करने में जो समय नष्ट होता है, वह मानव जीवन रूपी उपहार का दुरुपयोग है। *श्रीमद्भागवत* में कहा गया है—*श्रम एव हि केवलम्।* भक्त की दृष्टि में जितने भी राजनीतिज्ञ, सामाजिक कार्यकर्ता, परोपकारी, दार्शनिक तथा मानवतावादी हैं, वे मात्र अपना समय गँवा रहे हैं, क्योंकि उनकी भागदौड़ तथा विज्ञापन से मानव समाज जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त नहीं हो सकता। इन तथाकथित उपकारियों, राजनीतिज्ञों तथा दार्शनिकों को कोई ज्ञान नहीं होता,

क्योंकि वे यह नहीं जानते कि मृत्यु के बाद जीवन होता है। मृत्यु के बाद जीवन होता है, ऐसा ज्ञान होना आध्यात्मिक ज्ञान का शुभारम्भ है। मनुष्य *भगवद्गीता* (२.१३) की प्रारम्भिक शिक्षाओं को समझ लेने पर अपने आपको समझ सकता है और यह जान सकता है कि वह क्या है।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तर-प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

"जिस प्रकार देहधारी आत्मा निरन्तर इस शरीर में बचपन से युवावस्था और युवावस्था से वृद्धावस्था को प्राप्त होता रहता है, उसी प्रकार मृत्यु के समय आत्मा दूसरे शरीर में प्रवेश करता है। इस परिवर्तन से धीर पुरुष मोहित नहीं होता।"

मूर्ख मनुष्य इस जीवन के वास्तविक विज्ञान को न जानकर क्षणिक कार्यकलापों में लगा रहता है और इस तरह जन्म-मृत्यु के चक्र में और अधिक बद्ध हो जाता है। वह सदा भौतिक ऐश्वर्य की कामना करता है, जिसे कर्म, ज्ञान तथा योग द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु जब मनुष्य वास्तव में भक्ति-पद पर उन्नत हो जाता है, तब वह इन समस्त कामनाओं का परित्याग कर देता है। इसे *अन्याभिलाषिता शून्य* कहते हैं। तब वह शुद्ध भक्त बन जाता है।

आगे यत यत अर्थ व्याख्यान करिब ।
कृष्ण-गुणास्वादेर एइ हेतु जानिब ॥ १०५॥
आगे यत यत अर्थ व्याख्यान करिब ।
कृष्ण-गुणास्वादेर एइ हेतु जानिब ॥ १०५॥

आगे—आगे; **यत यत**—जितने भी; **अर्थ**—अर्थ; **व्याख्यान करिब**—मैं बताऊँगा; **कृष्ण-गुण-आस्वादेर**—कृष्ण के दिव्य गुणों के आस्वादन का; **एइ**—यही; **हेतु**—कारण; **जानिब**—हमे समझना चाहिए।

अनुवाद

"इस तरह मैं आत्माराम श्लोक के सारे शब्दों की व्याख्या करता चलूँगा। यह स्मरण रहे कि ये सारे शब्द कृष्ण के दिव्य गुणों का आस्वादन कराने के निमित्त हैं।

শ্লোক-ব্যাখ্যা লাগি' এই করিলুঁ আভাস ।
এবে করি শ্লোকের মূলার্থ প্রকাশ ॥ ১০৬॥

श्लोक-व्याख्या लागि' एइ करिलुँ आभास ।
एबे करि श्लोकेर मूलार्थ प्रकाश ॥ १०६ ॥

श्लोक-व्याख्या—श्लोक की व्याख्या के; **लागि'**—लिए; **एइ**—यह; **करिलुँ**—मैंने किया; **आभास**—संकेत; **एबे**—अब; **करि**—मैं करता हूँ; **श्लोकेर**—श्लोक का; **मूल-अर्थ**—वास्तविक अर्थ; **प्रकाश**—प्रकाशित।

अनुवाद

"मैंने इस श्लोक का अर्थ इंगित करने के लिए ही इतनी सारी व्याख्याएँ की हैं। अब मैं इस श्लोक का वास्तविक अर्थ कहने जा रहा हूँ।

জ্ঞান-মার্গে উপাসক—দুইত' প্রকার ।
কেবল ব্রহ্মোপাসক, মোক্ষাকাঙ্ক্ষী আর ॥ ১০৭॥

ज्ञान-मार्गे उपासक—दुइत' प्रकार ।
केवल ब्रह्मोपासक, मोक्षाकाङ्क्षी आर ॥ १०७॥

ज्ञान-मार्गे—ज्ञान मार्ग पर; **उपासक**—उपासक; **दुइत' प्रकार**—दो प्रकार के; **केवल**—केवल; **ब्रह्म-उपासक**—निराकार ब्रह्म के उपासक; **मोक्ष-आकाङ्क्षी**—मोक्ष के इच्छुक; **आर**—तथा।

अनुवाद

"ज्ञान-मार्ग के उपासक दो प्रकार के होते हैं—एक तो ब्रह्म उपासक, जो निर्विशेष ब्रह्म के उपासक होते हैं तथा दूसरे मोक्षाकांक्षी, जो मोक्ष की आकांक्षा करते हैं।

কেবল ব্রহ্মোপাসক তিন ভেদ হয় ।
সাধক, ব্রহ্মময়, আর প্রাপ্ত-ব্রহ্ম-লয় ॥ ১০৮॥

केवल ब्रह्मोपासक तिन भेद हय ।
साधक, ब्रह्ममय, आर प्राप्त-ब्रह्म-लय ॥ १०८॥

केवल ब्रह्म-उपासक—केवल निराकार ब्रह्म के उपासक; **तिन भेद हय**—तीन प्रकार

के हैं; **साधक**—प्रारम्भिक अवस्था के साधक; **ब्रह्म-मय**—ब्रह्म के विचार में लीन; **आर**—तथा; **प्राप्त-ब्रह्म-लय**—ब्रह्मज्योति में वास्तव में लीन हो चुके।

अनुवाद

"निर्विशेष ब्रह्म के उपासकों के तीन प्रकार हैं—साधक, ब्रह्म के ध्यान में मग्न रहने वाले तथा निर्विशेष ब्रह्म को वस्तुतः प्राप्त।

ভক্তি বিনা কেবল জ্ঞানে 'মুক্তি' নাহি হয় ।
ভক্তি সাধন করে যেই 'প্রাপ্ত-ব্রহ্ম-লয়' ॥ ১০৯ ॥

भक्ति विना केवल ज्ञाने 'मुक्ति' नाहि हय ।
भक्ति साधन करे येइ 'प्राप्त-ब्रह्म-लय' ॥ १०९ ॥

भक्ति—भक्तिमयी सेवा; **विना**—बिना; **केवल**—केवल; **ज्ञाने**—ज्ञान द्वारा; **मुक्ति**—मुक्ति; **नाहि हय**—नहीं होती; **भक्ति**—भक्तिमयी सेवा; **साधन**—आभ्यास; **करे**—करता है; **येइ**—जो; **प्राप्त-ब्रह्म-लय**—निराकार ब्रह्म में लीन होने के समान।

अनुवाद

"भक्ति से रहित मानसिक चिन्तन के माध्यम से ही मुक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। किन्तु यदि भक्ति सम्पन्न की जाती है, तो स्वतः ब्रह्म-पद प्राप्त हो जाता है।

ভক্তির স্বভাব,—ব্রহ্ম হৈতে করে আকর্ষণ ।
দিব্য দেহ দিয়া করায় কৃষ্ণের ভজন ॥ ১১০ ॥

भक्तिर स्वभाव,—ब्रह्म हैते करे आकर्षण ।
दिव्य देह दिया कराय कृष्णेर भजन ॥ ११० ॥

भक्तिर—प्रेममयी सेवा; **स्वभाव**—स्वभाव; **ब्रह्म**—निराकार ब्रह्म अनुभूति; **हैते**—से; **करे**—करती है; **आकर्षण**—आकर्षित; **दिव्य**—दिव्य; **देह**—देह; **दिया**—देकर; **कराय**—करवाती है; **कृष्णेर भजन**—भगवान् कृष्ण की सेवा।

अनुवाद

"विचित्र बात है कि जो भक्ति करता है, वह निर्विशेष ब्रह्म-पद से दूर हटता जाता है। उसे कृष्ण की सेवा में लगने के लिए दिव्य शरीर प्रदान किया जाता है।

ভক্ত-দেহ পাইলে হয় গুণের স্মরণ ।
গুণাকৃষ্ট হঞা করে নির্মল ভজন ॥ ১১১ ॥

भक्त-देह पाइले हय गुणेर स्मरण ।
गुणाकृष्ट हञा करे निर्मल भजन ॥ १११ ॥

भक्त-देह—एक भक्त का शरीर; **पाइले**—जब कोई प्राप्त करता है; **हय**—होता है; **गुणेर स्मरण**—दिव्य गुणों का स्मरण; **गुण-आकृष्ट हञा**—दिव्य गुणों से आकर्षित होकर; **करे**—करता है; **निर्मल भजन**—शुद्ध भक्ति।

अनुवाद

"भक्त का आध्यात्मिक शरीर प्राप्त होने पर मनुष्य कृष्ण के दिव्य गुणों का स्मरण कर सकता है। कृष्ण के दिव्य गुणों के प्रति आकृष्ट होने मात्र से मनुष्य उनकी सेवा में लगकर शुद्ध भक्त बन जाता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने श्लोक १०७ से १११ तक का जो सारांश दिया है, वह इस प्रकार है। ज्ञान-मार्ग के अध्यात्मवादियों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—निर्विशेष ब्रह्म के शुद्ध उपासक तथा निर्विशेष ब्रह्म में तदाकार होने के इच्छुक। जब मनुष्य इस विचार में पूरी तरह मग्न रहता है कि वह परब्रह्म से भिन्न नहीं है, तो वह निर्विशेष ब्रह्म का उपासक माना जाता है। ब्रह्म के निर्विशेष उपासकों की तीन श्रेणियाँ हैं—(१) *साधक* अर्थात् वे जिन्हें ब्रह्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया में सिद्धि प्राप्त होने ही वाली है; (२) वे जो ब्रह्म के ध्यान में पूरी तरह मग्न रहते हैं; तथा (३) वे जो *ब्रह्मभूत* पद पर होते हैं और जिनका भौतिक अस्तित्व से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। भले ही कोई निर्विशेष ब्रह्म का कितना ही उच्च उपासक क्यों न हो, वह भक्ति के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। जिस किसी ने अपने आपको आत्मा के रूप में समझ लिया है, वह भक्ति कर सकता है। यही *भगवद्गीता* (१८.५४) का निर्णय है :

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

"जो परम पद को प्राप्त होता है, उसे तुरन्त ही परम ब्रह्म की अनुभूति हो जाती है और वह पूर्णतया प्रसन्न हो जाता है। वह न तो शोक करता है, न ही किसी

वस्तु की कामना करता है। वह हर जीव के प्रति समभाव रखता है। उस स्थिति में वह मेरी शुद्ध भक्ति को प्राप्त करता है।"

शुद्ध भक्ति प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिक रूप से शुद्ध होकर ब्रह्मभूत पद प्राप्त करना आवश्यक है, जो भौतिक चिन्ता तथा भौतिक भेदभाव से परे है। जब मनुष्य ब्रह्म की अनुभूति होने के बाद शुद्ध भक्ति का अभ्यास करता है, तो वह शुद्ध भक्ति द्वारा आकृष्ट होता है। उस समय, भक्ति करने से शुद्ध इन्द्रियों से युक्त आध्यात्मिक शरीर प्राप्त होता है :

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते॥

इन्द्रियों के शुद्ध होने पर मनुष्य कृष्ण की प्रेमाभक्ति कर सकता है। शुद्ध भक्त केवल कृष्ण के दिव्य गुणों का स्मरण कर सकता है। उनका स्मरण करने से वह कृष्ण की प्रेमाभक्ति में पूरी तरह लग जाता है।

"मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते" ॥ ११२॥
"मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते" ॥ ११२॥

मुक्ताः—मुक्त; **अपि**—यद्यपि; **लीलया**—लीलाओं द्वारा; **विग्रहम्**—भगवान् का श्रीविग्रह; **कृत्वा**—प्रतिष्ठापित करके; **भगवन्तम्**—भगवान् की; **भजन्ते**—उपासना करता है।

अनुवाद

'"निर्विशेष ब्रह्म में मग्न रहने वाला मुक्तात्मा भी कृष्ण की लीलाओं के प्रति आकृष्ट होता है। तब वह अर्चाविग्रह स्थापित करके भगवान् की सेवा करता है।'

तात्पर्य

कभी-कभी बड़े-बड़े मायावादी संन्यासी राधा-कृष्ण के अर्चाविग्रह की पूजा करते हैं और भगवान् की लीलाओं की चर्चा चलाते हैं। किन्तु उनका उद्देश्य गोलोक वृन्दावन प्राप्त करना नहीं होता। वे तो भगवान् के तेज में तदाकार होना चाहते हैं। यह कथन *नृसिंह तापनी* नामक उपनिषद् पर शंकराचार्य के भाष्य से उद्धृत है।

জন্ম হৈতে শুক-সনকাদি 'ব্রহ্মময়' ।
কৃষ্ণ-গুণাকৃষ্ট হঞা কৃষ্ণেরে ভজয় ॥ ১১৩ ॥

जन्म हैते शुक-सनकादि 'ब्रह्ममय' ।
कृष्ण-गुणाकृष्ट हञा कृष्णेरे भजय ॥ ११३ ॥

जन्म हैते—जन्म से ही; **शुक**—शुकदेव गोस्वामी ने; **सनक-आदि**—चार कुमारों ने; **ब्रह्म-मय**—निराकार ब्रह्म के विचार में लीन; **कृष्ण-गुण-आकृष्ट**—भगवान् की दिव्य लीलाओं द्वारा आकर्षित; **हञा**—होकर; **कृष्णेरे भजय**—भगवान् कृष्ण की आराधना की।

अनुवाद

"यद्यपि शुकदेव गोस्वामी तथा चारों कुमार सदैव निर्विशेष ब्रह्म के विचार में डूबे रहते थे और इस तरह ब्रह्मवादी थे, फिर भी वे कृष्ण की दिव्य लीलाओं तथा गुणों के द्वारा आकृष्ट हुए थे। इसीलिए बाद में वे कृष्ण-भक्त बन गये।

সনকাদ্যের কৃষ্ণ-কৃপায় সৌরভে হরে মন ।
গুণাকৃষ্ট হঞা করে নির্মল ভজন ॥ ১১৪ ॥

सनकाद्येर कृष्ण-कृपाय सौरभे हरे मन ।
गुणाकृष्ट हञा करे निर्मल भजन ॥ ११४ ॥

सनक-आद्येर—सनक आदि चार कुमारों का; **कृष्ण-कृपाय**—कृष्ण की कृपा द्वारा; **सौरभे**—सुगन्ध ने; **हरे**—हर लिया; **मन**—मनों को; **गुण-आकृष्ट हञा**—इस प्रकार कृष्ण के दिव्य गुणों द्वारा आकर्षित होकर; **करे**—करते हैं; **निर्मल भजन**—शुद्ध भक्ति।

अनुवाद

"चारों कुमारों के मन कृष्ण के चरणकमलों पर चढ़ाये गये फूलों की सुगन्ध से आकृष्ट हो गये। इस तरह कृष्ण के दिव्य गुणों से आकृष्ट होकर वे शुद्ध भक्ति में लग गये।

তস্যারবিন্দ-নয়নস্য পদারবিন্দ-
কিঞ্জল্ক-মিশ্র-তুলসী-মকরন্দ-বায়ুঃ ।
অন্তর্গতঃ স্ব-বিবরেণ চকার তেষাং
সঙ্ক্ষোভমক্ষর-জুষামপি চিত্ত-তন্বোঃ ॥ ১১৫ ॥

तस्यारविन्द-नयनस्य पदारविन्द-
किञ्जल्क-मिश्र-तुलसी-मकरन्द-वायुः ।
अन्तर्गतः स्व-विवरेण चकार तेषां
सङ्क्षोभमक्षर-जुषामपि चित्त-तन्वोः ॥ ११५ ॥

तस्य—उनके; **अरविन्द-नयनस्य**—कमल के समान नेत्रों वाले के; **पद-अरविन्द**—चरणकमलों की; **किञ्जल्क**—अंगुलियों के साथ; **मिश्र**—मिश्रित; **तुलसी**—तुलसी के पत्तों की; **मकरन्द**—सुगन्ध; **वायुः**—वायु; **अन्तः-गतः**—अन्दर प्रवेशकर; **स्व-विवरेण**—उनके नाक द्वारा; **चकार**—कर दिया; **तेषाम्**—कुमारों का; **सङ्क्षोभम्**—बदलने के लिए विचलित; **अक्षर-जुषाम्**—निराकार ब्रह्म साक्षात्कार से आसक्त; **अपि**—यद्यपि; **चित्त-तन्वोः**—मन तथा शरीर में।

अनुवाद

"'जब कमल जैसे नेत्रों वाले भगवान् के चरणकमलों पर चढ़े तुलसी-दल तथा केसर की सुगन्धि को ले जाने वाली वायु उन ऋषियों (कुमारों) के नासारन्ध्रों से होकर उनके हृदयों में पहुँची, तो निर्विशेष ब्रह्म में आसक्त होते हुए भी उन्होंने अपने शरीर तथा मन दोनों में परिवर्तन का अनुभव किया।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (३.१५.४३) से लिया गया है।

व्यास-कृपाय शुकदेवेर लीलादि-स्मरण ।
कृष्ण-गुणाकृष्ट हञा करेन भजन ॥ ११६ ॥

व्यास-कृपाय शुकदेवेर लीलादि-स्मरण ।
कृष्ण-गुणाकृष्ट हञा करेन भजन ॥ ११६ ॥

व्यास-कृपाय—श्रील व्यासदेव की कृपा द्वारा; **शुकदेवेर**—शुकदेव गोस्वामी को; **लीला-आदि-स्मरण**—कृष्ण की दिव्य लीलाओं का स्मरण; **कृष्ण-गुण-आकृष्ट**—कृष्ण के दिव्य गुणों द्वारा आकर्षित; **हञा**—होकर; **करेन**—की; **भजन**—प्रेममयी सेवा।

अनुवाद

"श्रील व्यासदेव की कृपा से शुकदेव गोस्वामी भगवान् कृष्ण की लीलाओं के प्रति आकृष्ट हुए। इस तरह कृष्ण के दिव्य गुणों के प्रति आकृष्ट होने पर वे भी भक्त बन गये और उनकी सेवा करने लगे।

हरेर्गुणाक्षिप्त-मतिर्भगवान्बादरायणिः ।
अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णु-जन-प्रियः ॥ ११७॥

हरेर्गुणाक्षिप्त-मतिर्भगवान्बादरायणिः ।
अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णु-जन-प्रियः ॥ ११७॥

हरेः—भगवान् कृष्ण के; **गुण-आक्षिप्त-मतिः**—गुणों द्वारा उत्तेजित मन वाले; **भगवान्**—सर्वश्रेष्ठ अध्यात्मवादी; **बादरायणिः**—व्यासदेव के पुत्र, शुकदेव गोस्वामी; **अध्यगात्**—अध्ययन किया; **महत्-आख्यानम्**—महाकाव्य; **नित्यम्**—नित्य; **विष्णु-जन-प्रियः**—जो भगवान् विष्णु के भक्तों, वैष्णवों को अत्यन्त प्रिय हैं।

अनुवाद

"'भगवान् की दिव्य लीलाओं द्वारा अत्यधिक आकृष्ट होने पर श्रील शुकदेव गोस्वामी का मन कृष्णभावना से उत्तेजित हुआ। अतः वे अपने पिता की कृपा से श्रीमद्भागवत का अध्ययन करने लगे।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (१.७.११) का है।

নব-যোগীশ্বর জন্ম হৈতে 'সাধক' জ্ঞানী ।
বিধি-শিব-নারদ-মুখে কৃষ্ণ-গুণ শুনি' ॥ ১১৮॥

নব-য়োগীশ্বর জন্ম হৈতে 'সাধক' জ্ঞানী ।
বিধি-শিব-নারদ-মুখে কৃষ্ণ-গুণ শুনি' ॥ ১১৮॥

নব—नौ; **য়োগী-ঈশ্বর**—महान् योगी; **জন্ম হৈতে**—जन्म से; **সাধক**—साधक; **জ্ঞানী**—दिव्य ज्ञान में निपुण; **বিধি**—ब्रह्माजी; **শিব**—शिवजी; **নারদ**—महामुनि नारद; **মুখে**—उनके मुखों से; **কৃষ্ণ-গুণ শুনি'**—कृष्ण के दिव्य गुणों को सुनकर।

अनुवाद

"नौ योगीश्वर (योगेन्द्र) जन्म से ही परम सत्य के निर्विशेष दार्शनिक थे। किन्तु उन्होंने ब्रह्माजी, शिवजी तथा महर्षि नारद से कृष्ण के गुणों के विषय में सुना, तो वे भी कृष्ण-भक्त बन गये।

গুণাকৃষ্ট হঞা করে কৃষ্ণের ভজন ।
একাদশ-স্কন্ধে তাঁর ভক্তি-বিবরণ ॥ ১১৯॥

गुणाकृष्ट हञा करे कृष्णेर भजन ।
एकादश-स्कन्धे ताँर भक्ति-विवरण ॥ ११९ ॥

गुण-आकृष्ट हञा—दिव्य गुणों से आकर्षित होकर; **करे**—करने लगे; **कृष्णेर भजन**—कृष्ण की सेवा; **एकादश-स्कन्धे**—*श्रीमद्भागवत* ग्यारहवें स्कन्ध में; **ताँर**—उनकी; **भक्ति-विवरण**—भक्ति का विवरण है।

अनुवाद

"श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में उन नवों योगेन्द्रों की भक्ति का पूरा वर्णन मिलता है, जिन्होंने भगवान् के दिव्य गुणों के द्वारा आकृष्ट होकर भक्ति की।

अक्लेशां कमल-भुवः प्रविश्य गोष्ठीं
कुर्वन्तः श्रुति-शिरसां श्रुतिं श्रुत-ज्ञाः ।
उत्तुङ्गं यदु-पुर-सङ्गमाय रङ्गं
योगीन्द्राः पुलक-भृतो नवाप्यवापुः ॥ १२० ॥

अक्लेशां कमल-भुवः प्रविश्य गोष्ठीं
कुर्वन्तः श्रुति-शिरसां श्रुतिं श्रुत-ज्ञाः ।
उत्तुङ्गं यदु-पुर-सङ्गमाय रङ्गं
योगीन्द्राः पुलक-भृतो नवाप्यवापुः ॥ १२० ॥

अक्लेशाम्—भौतिक कष्ट के बिना; **कमल-भुवः**—कमल पुष्प से जन्मे ब्रह्माजी के; **प्रविश्य**—प्रवेश कर; **गोष्ठीम्**—संग में; **कुर्वन्तः**—निरन्तर करते हुए; **श्रुति-शिरसाम्**—सर्वश्रेष्ठ वैदिक ज्ञान; **श्रुतिम्**—सुनकर; **श्रुत-ज्ञाः**—जो वैदिक ज्ञान में दक्ष हैं; **उत्तुङ्गम्**—अति उच्च; **यदु-पुर-सङ्गमाय**—द्वारका धाम जाने के लिए; **रङ्गम्**—रंगक्षेत्र में; **योगी-इन्द्राः**—महान् सन्त; **पुलक-भृतः**—आध्यात्मिक रूप से प्रसन्न होकर; **नव**—नौ; **अपि**—यद्यपि; **अवापुः**—प्राप्त किये।

अनुवाद

"'नवों योगेन्द्र ब्रह्माजी के सान्निध्य में गये और उनसे उन्होंने उपनिषदों का वास्तविक अर्थ सुना। यद्यपि वे पहले से वैदिक ज्ञान के जानकार थे, किन्तु ब्रह्मा के मुख से कृष्णभावना के विषय में सुनकर वे अत्यन्त पुलकित हुए। इस प्रकार उन्होंने भगवान् कृष्ण के निवासस्थान द्वारका

में प्रविष्ट होना चाहा। इस तरह अन्त में वे रंगक्षेत्र नामक स्थान को प्राप्त कर सके।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *महा उपनिषद* से है।

मोक्षाकाङ्क्षी ज्ञानी हय तिन-प्रकार ।
मुमुक्षु, जीवन्मुक्त, प्राप्त-स्वरूप आर ॥ १२१॥
मोक्षाकाङ्क्षी ज्ञानी हय तिन-प्रकार ।
मुमुक्षु, जीवन्मुक्त, प्राप्त-स्वरूप आर ॥ १२१॥

मोक्ष-आकाङ्क्षी—निराकार ब्रह्म में लीन होने के इच्छुक; **ज्ञानी**—ज्ञान में उन्नत; **हय**—हैं; **तिन-प्रकार**—तीन प्रकार के; **मुमुक्षु**—मोक्ष की इच्छा रखने वाले; **जीवन्-मुक्त**—इसी जीवन में मुक्त; **प्राप्त-स्वरूप**—स्वरूप-सिद्ध; **आर**—तथा।

अनुवाद

"निर्विशेष ब्रह्म में लीन होने के इच्छुक लोग भी तीन प्रकार के होते हैं—वे जो मुक्त होना चाहते हैं, वे जो पहले से मुक्त हैं तथा वे जो ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुके हैं।

'मुमुक्षु' जगते अनेक संसारी जन ।
'मुक्ति' लागि' भक्त्ये करे कृष्णेर भजन ॥ १२२॥
'मुमुक्षु' जगते अनेक संसारी जन ।
'मुक्ति' लागि' भक्त्ये करे कृष्णेर भजन ॥ १२२॥

मुमुक्षु—मोक्ष के इच्छुक; **जगते**—इस संसार में; **अनेक**—अनेक; **संसारी जन**—भौतिक कार्यों में लगे लोग; **मुक्ति लागि'**—मुक्ति के लिए; **भक्त्ये**—भक्ति में; **करे**—करते हैं; **कृष्णेर भजन**—कृष्ण की उपासना।

अनुवाद

"इस भौतिक जगत् में अनेक लोग हैं, जो मुक्ति की कामना करते हैं और इसके लिए वे भगवान् कृष्ण की भक्ति करते हैं।

मुमुक्षवो घोर-रूपान्हित्वा भूत-पतीनथ ।
नारायण-कलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः ॥१२३॥

मुमुक्षवो घोर-रूपान्हित्वा भूत-पतीनथ ।
नारायण-कलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः ॥१२३॥

मुमुक्षवः—जो ज्ञानी हैं, जो परम गति प्राप्त करना चाहते हैं, तथा जो असुरों और अभक्तों की भाँति किसी से ईर्ष्या नहीं करते; **घोर-रूपान्**—भयानक रूपों वाले देवताओं को; **हित्वा**—त्यागकर; **भूत-पतीन्**—प्रजापतियों; **अथ**—इसलिए; **नारायण-कलाः**—भगवान् नारायण के कला विस्तार; **शान्ताः**—अत्यन्त शान्त; **भजन्ति**—वे उपासना करते हैं; **हि**—अवश्य; **अनसूयवः**—जो ईर्ष्या रहित हैं।

अनुवाद

'"जो लोग भवबन्धन से छूटना चाहते हैं, वे भयानक रूप वाले देवताओं की पूजा करना बन्द कर देते हैं। ऐसे शान्त भक्त, जो देवताओं से ईर्ष्या नहीं करते, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण के विविध रूपों की पूजा करते हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (१.२.२६) का है। जो वास्तव में सर्वोच्च सिद्धि चाहते हैं, वे भगवान् विष्णु के विविध अवतारों को पूजते हैं। किन्तु जो लोग भौतिक जीवन बिताने के लिए व्याकुल और उत्तेजित रहते हैं, वे भयानक दिखने वाले देवताओं की पूजा करते हैं—यथा देवी काली तथा काल भैरव (रुद्र)। किन्तु कृष्ण के भक्त न तो देवताओं से द्वेष रखते हैं, न उनके उपासकों से। वे तो नारायण के विविध अवतारों की शान्तिपूर्वक भक्ति करते हैं।

सेइ सबेर साधु-सङ्गे गुण स्फुराय ।
कृष्ण-भजन कराय, 'मुमुक्षा' छाड़ाय ॥१२४॥

सेइ सबेर साधु-सङ्गे गुण स्फुराय ।
कृष्ण-भजन कराय, 'मुमुक्षा' छाड़ाय ॥१२४॥

सेइ सबेर—उन विभिन्न देवताओं के उपासकों की; **साधु-सङ्गे**—भक्तों के संग में; **गुण स्फुराय**—दिव्य गुणों की प्रशंसा जाग जाती है; **कृष्ण-भजन कराय**—भगवान् कृष्ण की

प्रेममयी सेवा में लगकर; **मुमुक्षा छाड़ाय**—मुक्त होने की या भगवान् के निराकार पहलू में लीन होने की इच्छा छुड़वा देती है।

अनुवाद

"देवपूजा से आसक्त लोग यदि सौभाग्यवश भक्तों की संगति पा जाते हैं, तो उनकी सुप्त भक्ति तथा भगवान् के गुणों के प्रति उनका अनुराग धीरे-धीरे जाग्रत हो उठता है। इस तरह वे भी कृष्ण की भक्ति करने लगते हैं और मुक्ति तथा निर्विशेष ब्रह्म में लीन होने की इच्छा का परित्याग कर देते हैं।

तात्पर्य

चारों कुमार (चतुःसन), शुकदेव गोस्वामी तथा नवों योगेन्द्र ब्रह्म के साक्षात्कार में मग्न रहते थे, और वे किस प्रकार भक्त बने उसका वर्णन इसमें किया गया है। निर्विशेषवादी तीन प्रकार के होते हैं—मुमुक्षु (मुक्ति की इच्छा रखने वाले), जीवन्मुक्त (इस जीवन में मुक्ति को प्राप्त करने वाले) तथा प्राप्तस्वरूप (जो ब्रह्म साक्षात्कार में लीन हो गये हैं वे)। ज्ञानियों के ये तीनों प्रकार *मोक्षाकांक्षी* कहलाते हैं। ऐसे लोग भक्तों की संगति में रहने पर मुमुक्षु सिद्धान्त छोड़ देते हैं और भक्ति करने लगते हैं। ऐसे परिवर्तन का वास्तविक कारण भक्तों की संगति है। यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन सभी प्रकार के लोगों को आकृष्ट करने के लिए है, यहाँ तक कि उन लोगों को भी जो भगवान् की भक्ति के अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ चाहते हैं। ऐसे लोग भक्तों की संगति से धीरे-धीरे भक्ति करने लगते हैं।

अहो महात्मन्बहु-दोष-दुष्टो
ऽप्येकेन भात्येष भवो गुणेन ।
सत्सङ्गमाख्येन सुखावहेन
कृताद्य नो येन कृशा मुमुक्षा ॥ १२५ ॥

अहो महात्मन्बहु-दोष-दुष्टो
ऽप्येकेन भात्येष भवो गुणेन ।
सत्सङ्गमाख्येन सुखावहेन
कृताद्य नो येन कृशा मुमुक्षा ॥ १२५ ॥

अहो महा-आत्मन्—हे महान् भक्त; **बहु-दोष-दुष्टः**—अनेक प्रकार के भौतिक रोगों या आसक्तियों से दूषित; **अपि**—यद्यपि; **एकेन**—एक के साथ; **भाति**—प्रकाशित होता है; **एषः**—यह; **भवः**—इस भौतिक जगत् में जन्म; **गुणेन**—सद्गुण द्वारा; **सत्-सङ्गम-आख्येन**—भक्तों के संग नामक; **सुख-आवहेन**—जो सुख लाता है; **कृता**—कर दी; **अद्य**—अब; **नः**—हमारी; **येन**—जिसके द्वारा; **कृशा**—तुच्छ; **मुमुक्षा**—मुक्ति की इच्छा।

अनुवाद

"'हे महा विद्वान भक्त, यद्यपि इस भौतिक जगत् में अनेक दोष हैं, किन्तु एक सुअवसर है और वह है भक्तों की संगति। ऐसी संगति से अत्यधिक सुख प्राप्त होता है। इसी सद्गुण के कारण ब्रह्मज्योति से तादात्म्य द्वारा मोक्ष प्राप्त करने की हमारी प्रबल इच्छा निर्बल पड़ गई है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *हरिभक्ति विलास* का है।

नारदेर सङ्गे शौनकादि मुनि-गण ।
मुमुक्षा छाड़िया कैला कृष्णेर भजन ॥ १२६॥

नारदेर सङ्गे—महामुनि नारद के संग के कारण; **शौनक-आदि मुनि-गण**—शौनक मुनि आदि मुनि; **मुमुक्षा छाड़िया**—मुक्ति की इच्छा छोड़कर; **कैला**—सम्पन्न की; **कृष्णेर भजन**—कृष्ण की प्रेममयी सेवा।

अनुवाद

"नारद जैसे महामुनि की संगत्रि से शौनक तथा अन्य बड़े-बड़े ऋषियों ने मोक्ष की इच्छा त्याग दी और कृष्ण की भक्तिमय सेवा में लग गये।

कृष्णेर दर्शने, कारो कृष्णेर कृपाय ।
मुमुक्षा छाड़िया गुणे भजे ताँर पा'य ॥ १२७॥

कृष्णेर दर्शने—मात्र कृष्ण के दर्शन द्वारा; **कारो**—कोई; **कृष्णेर कृपाय**—कृष्ण की कृपा द्वारा; **मुमुक्षा छाड़िया**—मोक्ष की इच्छा छोड़कर; **गुणे**—कृष्ण के दिव्य गुणों से आकर्षित होकर; **भजे**—सेवा में लग जाता है; **ताँर पा'य**—कृष्ण के चरणकमलों की।

अनुवाद

"कृष्ण के दर्शन या कृष्ण की विशेष कृपा पाने मात्र से मनुष्य मोक्ष की इच्छा छोड़ सकता है। कृष्ण के दिव्य गुणों के द्वारा आकर्षित होने पर मनुष्य उनकी सेवा में लग सकता है।

अस्मिन्सुख-घन-मूर्तौ
परमात्मनि वृष्णि-पत्तने स्फूरति ।
आत्मारामतया मे
वृथा गतो बत चिरं कालः ॥१२८॥

अस्मिन्सुख-घन-मूर्तौ
परमात्मनि वृष्णि-पत्तने स्फुरति ।
आत्मारामतया मे
वृथा गतो बत चिरं कालः ॥ १२८ ॥

अस्मिन्—जब यह; **सुख-घन-मूर्तौ**—सम्पूर्ण सुख के स्वरूप; **परम-आत्मनि**—परम पुरुष; **वृष्णि-पत्तने**—द्वारका धाम में; **स्फुरति**—प्रकट होते हैं; **आत्मारामतया**—ब्रह्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया द्वारा; **मे**—मेरा; **वृथा**—व्यर्थ; **गतः**—गया; **बत**—हाय, मैं क्या कहूँ; **चिरम्**—बहुत अधिक; **कालः**—समय।

अनुवाद

"'इस द्वारका धाम में मैं आध्यात्मिक आनन्द के मूर्तिमान रूप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण द्वारा आकृष्ट हो रहा हूँ। केवल उनका दर्शन करके मैं परम सुख का अनुभव कर रहा हूँ। ओह, निर्विशेष-अनुशीलन द्वारा स्वरूपसिद्ध बनने के प्रयास में मैंने कितना समय गँवा दिया है। यही मेरे सन्ताप का कारण है!'

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (३.१.३४) में पाया जाता है।

'जीवन्मुक्त' अनेक, सेइ दुइ भेद जानि ।
'भक्त्ये जीवन्मुक्त', 'ज्ञाने जीवन्मुक्त' मानि ॥ १२९॥

'जीवन्मुक्त' अनेक, सेइ दुइ भेद जानि ।
'भक्त्ये जीवन्मुक्त', 'ज्ञाने जीवन्मुक्त' मानि ॥ १२९॥

जीवन्-मुक्त—इसी जीवन में मुक्त; **अनेक**—अनेक; **सेइ**—वे सभी; **दुइ भेद**—दो भेद; **जानि**—हम मानते हैं; **भक्त्ये जीवन्-मुक्त**—भक्ति का अभ्यास करने के कारण इसी जीवन में मुक्त; **ज्ञाने जीवन्-मुक्त**—ज्ञान के मार्ग (दार्शनिक चिन्तन) का अनुशीलन करके इसी जीवन में मुक्त व्यक्ति; **मानि**—हम समझ सकते हैं।

अनुवाद

"ऐसे अनेक लोग हैं, जो इसी जीवन में मुक्त हो चुके होते हैं। कुछ तो भक्ति करके और कुछ ज्ञान की विधि द्वारा मुक्त बनते हैं।

'भक्त्ये जीवन्मुक्त' गुणाकृष्ट हञा कृष्ण भजे ।
शुष्क-ज्ञाने जीवन्मुक्त अपराधे अधो मजे ॥ १३०॥

'भक्त्ये जीवन्मुक्त' गुणाकृष्ट हञा कृष्ण भजे ।
शुष्क-ज्ञाने जीवन्मुक्त अपराधे अधो मजे ॥ १३०॥

भक्त्ये जीवन्-मुक्त—भक्ति करके इस जीवन में मुक्त हुए लोग; **गुण-आकृष्ट हञा**—कृष्ण के दिव्य गुणों से आकर्षित होकर; **कृष्ण भजे**—कृष्ण की प्रेममयी सेवा में लग जाते हैं; **शुष्क-ज्ञाने जीवन्-मुक्त**—शुष्क ज्ञान के अनुशीलन द्वारा इस जीवन में तथाकथित मुक्त; **अपराधे**—अपराधों द्वारा; **अधो मजे**—पतित हो जाते हैं।

अनुवाद

"जो लोग भक्ति द्वारा मुक्त बनते हैं, वे कृष्ण के दिव्य गुणों द्वारा अधिकाधिक आकृष्ट होते जाते हैं। इस प्रकार वे उनकी सेवा में लग जाते हैं। जो लोग शुष्क ज्ञान द्वारा मुक्त बनते हैं, वे अन्त में अपने अपराधी कृत्य द्वारा पुनः नीचे गिर जाते हैं।

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्त-मानिनस्
त्वय्यस्त-भावादविशुद्ध-बुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृत-युष्मदङ्घ्रयः ॥ १३१॥

ये ऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्त-मानिनस्
त्वय्यस्त-भावादविशुद्ध-बुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृत-युष्मदङ्घ्रयः ॥ १३१ ॥

ये—जो; **अन्ये**—अन्य (अभक्त); **अरविन्द-अक्ष**—हे कमलनयन; **विमुक्त-मानिनः**—जो स्वयं को मुक्त मानते हैं; **त्वयि**—आपके प्रति; **अस्त-भावात्**—भक्ति से रहित; **अविशुद्ध-बुद्धयः**—जिनकी बुद्धि शुद्ध नहीं है; **आरुह्य**—ऊपर पहुँचकर; **कृच्छ्रेण**—कठोर तपस्याओं द्वारा; **परम् पदम्**—परम अवस्था तक; **ततः**—वहाँ से; **पतन्ति**—गिर जाते हैं; **अधः**—नीचे; **अनादृत**—तिरस्कार करके; **युष्मत्**—आपके; **अङ्घ्रयः**—चरणकमल।

अनुवाद

"'हे कमलनयन, जो लोग आपकी भक्ति के बिना ही इस जीवन में अपने आपको मुक्त मानते हैं, उनकी बुद्धि अशुद्ध रहती है। यद्यपि वे विविध कठोर तपस्याएँ करते हैं और निर्विशेष ब्रह्म साक्षात्कार रूपी आध्यात्मिक पद प्राप्त कर लेते हैं, फिर भी आपके चरणकमलों की पूजा की उपेक्षा करने के कारण वे पुनः नीचे गिर जाते हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (१०.२.३२) का है।

ब्रह्म-भूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ १७२॥
ब्रह्म-भूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ १३२ ॥

ब्रह्म-भूतः—परम के साथ एक होने के कारण; **प्रसन्न-आत्मा**—पूर्णतया प्रसन्न; **न**—कभी नहीं; **शोचति**—शोक करता; **न**—न; **काङ्क्षति**—इच्छा करता है; **समः**—समभाव; **सर्वेषु**—सभी; **भूतेषु**—जीवों के प्रति; **मत्-भक्तिम्**—मेरी प्रेममयी सेवा को; **लभते**—प्राप्त करता है; **पराम्**—दिव्य।

अनुवाद

"'जो दिव्य पद को प्राप्त है, उसे तुरन्त ही परम ब्रह्म की अनुभूति होती है और वह पूर्णतया प्रसन्न हो जाता है। वह न तो कभी शोक करता है,

न किसी वस्तु की कामना करता है। वह प्रत्येक जीव के प्रति समभाव रखता है। उस स्थिति में वह मेरी शुद्ध भक्ति को प्राप्त करता है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *भगवद्गीता* (१८.५४) का है।

अद्वैत-वीथी-पथिकैरुपास्याः
स्वानन्द-सिंहासन-लब्ध-दीक्षाः ।
शठेन केनापि वयं हठेन
दासी-कृता गोप-वधू-विटेन ॥ १३३ ॥

अद्वैत-वीथी—अद्वैत के पथ पर; **पथिकैः**—चलने वालों द्वारा; **उपास्याः**—पूजनीय; **स्व-आनन्द**—आत्म-साक्षात्कार के; **सिंह-आसन**—सिंहासन पर; **लब्ध-दीक्षाः**—दीक्षित; **शठेन**—ठग द्वारा; **केन अपि**—कुछ; **वयम्**—मैं; **हठेन**—बलपूर्वक; **दासी-कृता**—एक दासी बना दी गई; **गोप-वधू-विटेन**—जो गोपियों के साथ परिहास में रत है।

अनुवाद

"'यद्यपि मैं अद्वैत पथ पर चलने वालों द्वारा पूजित था तथा योग-पद्धति द्वारा आत्म-साक्षात्कार में दीक्षित था, तो भी मैं बलपूर्वक किसी नटखट बालक द्वारा, जो सदैव गोपियों के साथ परिहास करता रहता है, दासी बना दिया गया हूँ।'

तात्पर्य

यह श्लोक बिल्वमंगल ठाकुर द्वारा रचित है।

ভক্তি-বলে 'প্রাপ্ত-স্বরূপ' দিব্য-দেহ পায় ।
কৃষ্ণ-গুণাকৃষ্ট হঞা ভজে কৃষ্ণ-পা'য় ॥ ১৩৪ ॥

भक्ति-बले 'प्राप्त-स्वरूप' दिव्य-देह पाय ।
कृष्ण-गुणाकृष्ट हञा भजे कृष्ण-पा'य ॥ १३४ ॥

भक्ति-बले—भक्ति के बल द्वारा; **प्राप्त-स्वरूप**—अपना वास्तविक स्वरूप प्राप्त कर; **दिव्य-देह**—एक दिव्य शरीर; **पाय**—प्राप्त करता है; **कृष्ण-गुण-आकृष्ट**—कृष्ण के दिव्य गुणों से आकर्षित; **हञा**—होकर; **भजे**—भक्ति करता है; **कृष्ण-पा'य**—कृष्ण के चरणकमलों की।

अनुवाद

"जिसने भक्ति द्वारा अपना वैधानिक पद प्राप्त कर लिया है, उसे इसी जीवन में ही दिव्य देह प्राप्त हो जाता है। वह कृष्ण के दिव्य गुणों के द्वारा आकर्षित होने पर उनके चरणकमल की सेवा में पूर्णरूपेण लग जाता है।

निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः ।
मुक्तिर्हित्वान्यथा-रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ॥ १३५॥

निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः ।
मुक्तिर्हित्वान्यथा-रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ॥ १३५॥

निरोधः—समेटकर; **अस्य**—इसके; **अनु**—बाद में; **शयनम्**—शयन करते हैं; **आत्मनः**—परम भगवान् का; **सह**—साथ; **शक्तिभिः**—शक्तियाँ (तटस्था तथा बहिरंगा); **मुक्तिः**—मुक्ति; **हित्वा**—त्यागकर; **अन्यथा**—अन्य; **रूपम्**—रूप; **स्वरूपेण**—अपने सनातन स्वरूप में; **व्यवस्थितिः**—स्थापित होना।

अनुवाद

"'जब महाविष्णु विश्राम करते हैं और विराट् जगत् को समेट लेते हैं (विनष्ट कर देते हैं), तब सारे जीव तथा अन्य शक्तियाँ उन्हीं में समा जाती हैं। मुक्ति का अर्थ है परिवर्तनशील स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों को त्याग करने के बाद अपने सनातन मूल स्वरूप में स्थित रहना।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (२.१०.६) का है।

कृष्ण-बहिर्मुख-दोषे माया हैते भय ।
कृष्णोन्मुख भक्ति हैते माया-मुक्त हय ॥ १३६॥

कृष्ण-बहिर्मुख-दोषे माया हैते भय ।
कृष्णोन्मुख भक्ति हैते माया-मुक्त हय ॥ १३६॥

कृष्ण-बहिर्-मुख—कृष्णभावना के विरुद्ध होकर; **दोषे**—दोष द्वारा; **माया हैते**—बहिरंगा माया शक्ति द्वारा; **भय**—डर; **कृष्ण-उन्मुख**—कृष्णभावना के उन्मुख होकर; **भक्ति**—भक्ति; **हैते**—द्वारा; **माया-मुक्त**—माया से मुक्त; **हय**—हो जाता है।

अनुवाद

"कृष्णभावनामृत का विरोध करके मनुष्य पुनः माया के प्रभाव द्वारा बद्ध तथा भयभीत हो जाता है। श्रद्धापूर्वक भक्तिमयी सेवा सम्पन्न करने से मनुष्य माया से मुक्त हो जाता है।

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्याद्
ईशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ।
तन्मायया तो बुध आभजेत्तं
भक्त्यैकयेशं गुरु-देवतात्मा ॥ १३७॥

भयम्—भय; **द्वितीय-अभिनिवेशतः**—भौतिक शक्ति के उत्पाद होने के भ्रम द्वारा; **स्यात्**—उत्पन्न होता है; **ईशात्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से; **अपेतस्य**—जो विमुख हो गया है (बद्धजीव); **विपर्ययः**—विपरीत स्थिति; **अस्मृतिः**—परम भगवान् से अपने सम्बन्ध की धारणा से रहित; **तत्-मायया**—परम भगवान् की माया शक्ति के कारण; **अतः**—इसलिए; **बुधः**—जो बुद्धिमान है उसे; **आभजेत्**—उपासना करनी चाहिए; **तम्**—उनकी; **भक्त्या**—भक्ति से; **एकया**—कर्म तथा ज्ञान से विचलित हुए बिना; **ईशम्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **गुरु**—आध्यात्मिक गुरु के रूप में; **देवता**—पूज्य देव; **आत्मा**—परमात्मा।

अनुवाद

"'जब जीव कृष्ण से पृथक् भौतिक शक्ति द्वारा आकृष्ट होता है, तो वह भयाक्रान्त हो जाता है। चूँकि वह भौतिक शक्ति द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अलग कर दिया जाता है, उसकी जीवन-धारणा विपरीत हो जाती है। दूसरे शब्दों में, वह कृष्ण का नित्य दास बनने के बजाय कृष्ण का प्रतियोगी बन जाता है। इसे विपर्ययः अस्मृतिः कहते हैं। इस भूल का निराकरण करने के लिए जो मनुष्य वास्तव में विद्वान एवं उन्नत होता है,

वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा अपने गुरु, पूज्य अर्चाविग्रह तथा जीवन के उद्गम के रूप में करता है। इस तरह वह अनन्य भक्ति की विधि द्वारा भगवान् की पूजा करता है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (११.२.३७) का है।

दैवी ह्येषा गुण-मयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ १३८॥

दैवी ह्येषा गुण-मयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ १३८॥

दैवी—भगवान् के सम्बन्धित; **हि**—निश्चित रूप से; **एषा**—यह; **गुण-मयी**—तीन गुणों से निर्मित; **मम**—मेरी; **माया**—बहिरंगा शक्ति; **दुरत्यया**—लाँघने में अत्यन्त कठिन; **माम्**—मुझे; **एव**—निश्चय ही; **ये**—जो; **प्रपद्यन्ते**—पूर्ण शरणागत होते हैं; **मायाम्**—माया शक्ति को; **एताम्**—इस; **तरन्ति**—पार कर जाते हैं; **ते**—वे।

अनुवाद

"'तीन गुणों से युक्त मेरी इस दैवी शक्ति को जीत पाना कठिन है। किन्तु जिन्होंने मेरी शरण ग्रहण कर ली है, वे इसको सरलता से पार कर सकते हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *भगवद्गीता* (७.१४) का है।

भक्ति विनु मुक्ति नाहि, भक्त्ये मुक्ति हय ॥ १३९॥

भक्ति विनु मुक्ति नाहि, भक्त्ये मुक्ति हय ॥ १३९॥

भक्ति—भक्ति; **विनु**—बिना; **मुक्ति**—मोक्ष; **नाहि**—नहीं होता; **भक्त्ये**—भक्ति द्वारा ही; **मुक्ति हय**—मोक्ष होता है।

अनुवाद

"भक्ति के बिना किसी को मुक्ति प्राप्त नहीं होती। मुक्ति तो एकमात्र भक्ति द्वारा ही प्राप्त की जाती है।

श्रेयः-सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवल-बोध-लब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूल-तुषावघातिनाम् ॥ १४० ॥

यः-सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवल-बोध-लब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूल-तुषावघातिनाम् ॥ १४० ॥

श्रेयः-सृतिम्—मुक्ति का शुभ मार्ग; **भक्तिम्**—भक्ति; **उदस्य**—त्यागकर; **ते**—आपके; **विभो**—हे मेरे प्रभु; **क्लिश्यन्ति**—कष्ट स्वीकार करते हैं; **ये**—जो लोग; **केवल**—केवल; **बोध-लब्धये**—ज्ञान प्राप्त करने के लिए; **तेषाम्**—उनके लिए; **असौ**—वह; **क्लेशलः**—कष्ट; **एव**—मात्र; **शिष्यते**—रहता है; **न**—नहीं; **अन्यत्**—कुछ अन्य; **यथा**—जितना; **स्थूल**—भारी; **तुष**—चावल की भूसी को; **अवघातिनाम्**—पीटने वालों को।

अनुवाद

"'हे प्रभु, आपकी भक्ति ही एकमात्र शुभ मार्ग है। यदि कोई इसे केवल शुष्क ज्ञान के लिए या इस विचार से त्याग देता है कि ये सारे जीव आत्माएँ हैं और भौतिक जगत् मिथ्या है, तो उसे बहुत कष्ट मिलता है। केवल कष्टप्रद तथा अशुभ कार्यकलाप ही उसके हाथ लगते हैं। उसके कार्य उसी तरह हैं, जैसे धान से रहित भूसे को पीटना। उसका सारा श्रम व्यर्थ जाता है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (१०.१४.४) का है।

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्त-मानिनस्
त्वय्यस्त-भावादविशुद्ध-बुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृत-युष्मदङ्घ्रयः ॥ १४१ ॥

ये ऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्त-मानिनस्
त्वय्यस्त-भावादविशुद्ध-बुद्धयः ।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृत-युष्मदङ्घ्रयः ॥ १४१ ॥

ये—जो; **अन्ये**—अन्य (अभक्त); **अरविन्द-अक्ष**—हे कमलनयन; **विमुक्त-मानिनः**—जो स्वयं को मुक्त मानते हैं; **त्वयि**—आपके प्रति; **अस्त-भावात्**—भक्ति से रहित; **अविशुद्ध-बुद्धयः**—जिनकी बुद्धि शुद्ध नहीं हैं; **आरुह्य**—उन्नत होकर; **कृच्छ्रेण**—कठिन तपस्याओं द्वारा; **परम् पदम्**—परम अवस्था तक; **ततः**—वहाँ से; **पतन्ति**—गिर जाते हैं; **अधः**—नीचे; **अनादृत**—आदर किये बिना; **युष्मत्**—आपके; **अङ्घ्रयः**—चरणकमल।

अनुवाद

'"हे कमलनेत्रों वाले, जो लोग आपकी भक्ति के बिना ही इस जीवन में अपने आपको मुक्त मानते हैं, उनकी बुद्धि अशुद्ध रहती है। यद्यपि वे कठोर तपस्याएँ करते हैं और निर्विशेष ब्रह्म-साक्षात्कार रूपी आध्यात्मिक पद को प्राप्त कर लेते हैं, फिर भी आपके चरणकमलों की पूजा की उपेक्षा करने के कारण वे पुनः नीचे गिर जाते हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.२.३२) का है।

य एषां पूरुषं साक्षादात्म-प्रभवमीश्वरम् ।
न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥१४२॥

य्र एषां पुरुषं साक्षादात्म-प्रभवमीश्वरम् ।
न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥ १४२ ॥

ये—जो; **एषाम्**—वर्णाश्रम विभाग के; **पुरुषम्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को; **साक्षात्**—साक्षात्; **आत्म-प्रभवम्**—सबके स्रोत को; **ईश्वरम्**—परम नियन्ता को; **न**—नहीं; **भजन्ति**—उपासना करता; **अवजानन्ति**—या अवहेलना करता है; **स्थानात्**—अपनी स्थिति से; **भ्रष्टाः**—भ्रष्ट होकर; **पतन्ति**—गिर जाता है; **अधः**—नारकीय स्थितियों में।

अनुवाद

'"यदि कोई चारों वर्णों तथा आश्रमों में ही अपनी स्थिति बनाये रखता है, किन्तु भगवान् विष्णु की पूजा नहीं करता, तो वह अपने गर्वित स्थान से गिरकर नरक में जाता है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण भी *श्रीमद्भागवत* (११.५.३) का है।

भक्त्ये मुक्ति पाइलेह अवश्य कृष्णेरे भजय ॥ १४३॥

भक्त्ये मुक्ति पाइलेह अवश्य कृष्णेरे भजय ॥ १४३॥

भक्त्ये—भक्ति द्वारा; **मुक्ति**—मुक्ति; **पाइलेह**—यदि कोई प्राप्त करता है; **अवश्य**—अवश्य; **कृष्णेरे**—भगवान् कृष्ण की; **भजय**—सेवा करता है।

अनुवाद

"जब कोई भक्ति करने से सचमुच मुक्ति पा लेता है, तो वह भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में सदैव लगा रहता है।

"मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते" ॥ १४४॥

"मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते" ॥ १४४॥

मुक्ताः—मुक्त; **अपि**—भी; **लीलया**—लीलाओं द्वारा; **विग्रहम्**—भगवान् का स्वरूप; **कृत्वा**—प्रतिष्ठित करके; **भगवन्तम्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **भजन्ते**—उपासना करते हैं।

अनुवाद

"'निर्विशेष ब्रह्मतेज में निमग्न मुक्तात्मा भी कृष्ण की लीलाओं के प्रति आकर्षित होता है। इस तरह वह अर्चाविग्रह स्थापित करके भगवान् की सेवा करता है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *नृसिंह-तापनी उपनिषद* पर शंकराचार्य के भाष्य से लिया गया है।

एइ छय आत्माराम कृष्णेरे भजय ।
पृथक्पृथक्-कारे इहा 'अपि'र अर्थ कय ॥ १४५॥

एइ छय आत्माराम कृष्णेरे भजय ।
पृथक्-पृथक् च-कारे इहा 'अपि'र अर्थ कय ॥ १४५॥

एइ छय—ये छः; **आत्माराम**—आत्माराम (अध्यात्मवादी); **कृष्णेरे भजय**—कृष्ण की

सेवा करते हैं; **पृथक्-पृथक्**—अलग-अलग; **च-कारे**—*च* शब्द के प्रयोग में; **इहा**—यहाँ; **अपिर**—*अपि* शब्द का; **अर्थ**—अर्थ; **कय**—कहते हैं।

अनुवाद

"ये छह प्रकार के आत्माराम कृष्ण की प्रेमाभक्ति में लगे रहते हैं। विभिन्न प्रकार की सेवाएँ 'च' लगाकर सूचित की जाती हैं और वे 'अपि' (निस्सन्देह) का भी अर्थ वहन करते हैं।

तात्पर्य

आत्माराम छह प्रकार के होते हैं—*साधक* अर्थात् नौसिखिया छात्र, (ब्रह्ममय) जो ब्रह्म-साक्षात्कार में मग्न रहता है, *प्राप्तब्रह्मलय*—जिसने पहले से ब्रह्म-पद प्राप्त कर रखा है, *मुमुक्षु*—जो मुक्ति का इच्छुक होता है; *जीवन्मुक्त*—जो इस जीवन में भी मुक्त होता है तथा *प्राप्तस्वरूप*—जो स्वरूपसिद्ध है।

''आत्मारामाश्च अपि'' करे कृष्णे अहैतुकी भक्ति ।
''मुनयः सन्तः'' इति कृष्ण-मनने आसक्ति ॥ १४६॥

"आत्मारामाश्च अपि" करे कृष्णे अहैतुकी भक्ति ।
"मुनयः सन्तः" इति कृष्ण-मनने आसक्ति ॥ १४६॥

आत्मारामाः च अपि—आत्म-साक्षात्कार प्राप्त लोग भी; **करे**—करते हैं; **कृष्णे**—कृष्ण की; **अहैतुकी भक्ति**—निष्काम प्रेममयी सेवा; **मुनयः सन्तः**—महान् साधुओं और मुनियों को; **इति**—इस प्रकार; **कृष्ण-मनने**—कृष्ण का मनन करने में; **आसक्ति**—आसक्ति।

अनुवाद

"छहों प्रकार के आत्माराम बिना किसी अन्य अभिलाषा के कृष्ण की भक्ति करते हैं। मुनयः तथा सन्तः शब्द उन लोगों के सूचक हैं, जो कृष्ण का ध्यान करने में अत्यन्त अनुरक्त हैं।

''निर्ग्रन्थाः''—अविद्या-हीन, केह—विधि-हीन ।
याहाँ येई युक्त, सेई अर्थेर अधीन ॥ १४७॥

"निर्ग्रन्थाः"—अविद्या-हीन, केह—विधि-हीन ।
याहाँ येइ युक्त, सेइ अर्थेर अधीन ॥ १४७॥

निर्ग्रन्थाः—*निर्ग्रन्थाः* शब्द; **अविद्या-हीन**—अज्ञान से रहित; **केह**—कहीं; **विधि-हीन**—कोई विधि-निषेधों का पालन किये बिना; **याहाँ**—कहीं भी; **येइ**—जो; **युक्त**—उपयुक्त; **सेइ अर्थेर अधीन**—उसी अर्थ के अधीन।

अनुवाद

"'निर्ग्रन्थाः' शब्द का अर्थ है 'बिना अज्ञान के' तथा 'विधि-विधान से रहित।' इनमें से जो भी अर्थ उपयुक्त हो, उसे लिया जा सकता है।

च-शब्दे करि यदि 'इतरेतर' अर्थ ।
आर एक अर्थ कहे परम समर्थ ॥ १४८॥

च-शब्दे करि यदि 'इतरेतर' अर्थ ।
आर एक अर्थ कहे परम समर्थ ॥ १४८॥

च-शब्दे—*च* शब्द द्वारा; **करि**—मैं करता हूँ; **यदि**—यदि; **इतर-इतर अर्थ**—अलग तथा भिन्न अर्थ; **आर**—दूसरा; **एक**—एक; **अर्थ**—अर्थ; **कहे**—कहा जाता है; **परम समर्थ**—सर्वाधिक योग्य।

अनुवाद

"'च' शब्द का प्रयोग विभिन्न स्थलों में करने से भिन्न-भिन्न अर्थ निकलते हैं। इनके अतिरिक्त, एक अन्य भी अर्थ है, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

"आत्मारामाश्च आत्मारामाश्च" करि' बार छय ।
पञ्च आत्माराम छय च-कारे लुप्त हय ॥ १४९॥

"आत्मारामाश्च आत्मारामाश्च" करि' बार छय ।
पञ्च आत्माराम छय च-कारे लुप्त हय ॥ १४९॥

आत्मारामाः च आत्मारामाः च—*आत्माराम* तथा *च* शब्द को दोहराने से; **करि'**—करते हैं; **बार छय**—छः बार; **पञ्च आत्माराम**—पाँच प्रकार के आत्माराम; **छय**—छः; **च-कारे**—*च* शब्द द्वारा; **लुप्त हय**—अनुच्चरित हो जाता है।

अनुवाद

"यद्यपि 'आत्मारामाश्च' शब्द की छह पुनरावृतियाँ की जा सकती हैं, किन्तु केवल 'च' शब्द जोड़ने से पाँच आत्माराम लुप्त हो जाते हैं।

এক 'আত্মারাম'-শব্দ অবশেষ রহে ।
এক 'আত্মারাম'-শব্দে ছয়-জন কহে ॥১৫০॥

एक 'आत्माराम'-शब्द अवशेष रहे ।
एक 'आत्माराम'-शब्दे छय-जन कहे ॥ १५० ॥

एक—एक; **आत्माराम**—आत्माराम; **शब्द**—शब्द; **अवशेष रहे**—अन्त में बचता है; **एक आत्माराम**—एक आत्माराम; **शब्दे**—उच्चारण द्वारा; **छय-जन**—छः लोग; **कहे**—लक्षित होते हैं।

अनुवाद

"इसलिए आत्माराम शब्द की पुनरावृति करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। केवल एक पर्याप्त है और यही एक शब्द छह व्यक्तियों का सूचित करता है।

''সরূপাণামেক-শেষ এক-বিভক্তৌ'' ।
উক্তার্থানামপ্রয়োগঃ ।
রামশ্চ রামশ্চ রামশ্চ রামা ইতিবৎ ॥১৫১॥

"सरूपाणामेक-शेष एक-विभक्तौ"।
उक्तार्थानामप्रयोगः।
रामश्च रामश्च रामश्च रामा इतिवत् ॥ १५१ ॥

स-रूपाणाम्—समान रूप के शब्दों का; **एक-शेषः**—केवल अन्तिम; **एक-विभक्तौ**—एक समान विभक्ति में; **उक्त-अर्थानाम्**—पहले कहे गये अर्थों का; **अप्रयोगः**—अप्रयोग; **रामः च**—तथा राम; **रामः च**—तथा राम; **रामः च**—तथा राम; **रामाः इति-वत्**—इस प्रकार, एक राम द्वारा, अनेक राम इंगित होते हैं।

अनुवाद

"'एक ही रूप तथा विभक्ति होने पर केवल अन्तिम शब्द को रखा जाता है। उदाहरणार्थ, रामश्च, रामश्च, रामश्च इत्यादि के लिए रामाः शब्द प्रयुक्त किया जाता है।'"

तात्पर्य

यह उद्धरण *पाणिनि सूत्र* (१.२.६४) से है।

তবে যে চ-কার, সেই 'সমুচ্চয়' কয় ।
''আত্মারামাশ্চ মুনয়শ্চ'' কৃষ্ণেরে ভজয় ॥ ১৫২॥

তবে য়ে চ-কার, সেই 'সমুচ্চয়' কয় ।
"আত্মারামাশ্চ মুনয়শ্চ" কৃষ্ণেরে ভজয় ॥ ১৫২॥

তবে—তব; **য়ে**—वह; **চ-কার**—च वर्ण; **সেই**—वह; **সমুচ্চয়**—समूह; **কয়**—कहा जाता है; **আত্মারামাঃ চ**—वे सभी जो आत्मा में रमण करते हैं; **মুনয়ঃ চ**—सभी मुनिजन; **কৃষ্ণেরে ভজয়**—कृष्ण की उपासना करते हैं।

अनुवाद

"समुच्चयबोधक शब्द 'च' के प्रयोग से यह इंगित किया जाता है कि सारे आत्माराम तथा सन्त कृष्ण की सेवा करते हैं और उन्हें पूजते हैं।

''নির্গ্রন্থা অপি''র এই 'অপি'—সম্ভাবনে ।
এই সাত অর্থ প্রথমে করিলুঁ ব্যাখ্যানে ॥ ১৫৩॥

"নির্গ্রন্থা অপি"র এই 'অপি'—সম্ভাবনে ।
এই সাত অর্থ প্রথমে করিলুঁ ব্যাখ্যানে ॥ ১৫৩॥

নির্গ্রন্থাঃ অপির—*নির্গন্থা অপি* शब्दों का; **এই**—यह; **অপি**—*अपि* शब्द का; **সম্ভাবনে**—सम्भावना की स्थिति में; **এই সাত অর্থ**—ये सात भिन्न अर्थ; **প্রথমে**—प्रारम्भ में ही; **করিলুঁ**—मैंने की है; **ব্যাখ্যানে**—व्याख्या।

अनुवाद

"'निर्ग्रन्थाः' के साथ 'अपि' जुड़ने से सम्भावना व्यक्त होती है। इस तरह मैंने (आत्माराम श्लोक के) सात प्रकार के अर्थ समझाने की चेष्टा की है।

অন্তর্যামি-উপাসক 'আত্মারাম' কয় ।
সেই আত্মারাম যোগীর দুই ভেদ হয় ॥ ১৫৪॥

অন্তর্য্যামি-উপাসক 'আত্মারাম' কয় ।
সেই আত্মারাম য়োগীর দুই ভেদ হয় ॥ ১৫৪॥

অন্তর্য্যামি—परमात्मा का; **উপাসক**—पूजारी; **আত্মারাম কয়**—आत्माराम कहलाता है; **সেই আত্মারাম**—उस आत्माराम; **য়োগীর**—योगी के; **দুই ভেদ হয়**—दो भेद हैं।

अनुवाद

"जो योगी अपने अन्तर में परमात्मा की पूजा करता है, वह भी आत्माराम कहलाता है। आत्माराम-योगियों के दो प्रकार हैं।

सगर्भ, निगर्भ,—एই হয় দুই ভেদ ।
এক এক তিন ভেদে ছয় বিভেদ ॥ ১৫৫॥

सगर्भ, निगर्भ,—एइ हय दुइ भेद ।
एक एक तिन भेदे छय विभेद ॥ १५५॥

सगर्भ—सगर्भ; **निगर्भ**—निगर्भ; **एइ**—ये; **हय**—हैं; **दुइ**—दो; **भेद**—भेद; **एक एक**—प्रत्येक; **तिन भेदे**—तीन प्रकार में; **छय विभेद**—इस प्रकार छः भेद हैं।

अनुवाद

"आत्माराम-योगियों के दो प्रकार—सगर्भ तथा निगर्भ कहलाते हैं। इनमें से प्रत्येक के तीन-तीन भेद हैं, अतः परमात्मा के उपासकों के छह प्रकार हुए।

तात्पर्य

सगर्भ योगी शब्द उस योगी का द्योतक है, जो परमात्मा की पूजा विष्णु-रूप में करता है। *निगर्भ योगी* परमात्मा की पूजा निर्गुण-रूप में करता है। सगर्भ तथा निगर्भ योगियों के आगे भी विभेद हैं—(१) सगर्भ योगारुरुक्षु, (२) निगर्भ योगारुरुक्षु, (३) सगर्भ योगारूढ़, (४) निगर्भ योगारूढ़, (५) सगर्भ-प्राप्तसिद्धि तथा (६) निगर्भ-प्राप्तसिद्धि।

কেচিত্স্ব-দেহান্তর্হৃদয়াবকাশে
প্রাদেশ-মাত্রং পুরুষং বসন্তম্ ।
চতুর্ভুজং কঞ্জ-রথাঙ্গ-শঙ্খ-
গদা-ধরং ধারণয়া স্মরন্তি ॥ ১৫৬॥

केचित्स्व-देहान्तर्हृदयावकाशे
प्रादेश-मात्रं पुरुषं वसन्तम् ।
चतुर्भुजं कञ्ज-रथाङ्ग-शङ्ख-
गदा-धरं धारणया स्मरन्ति ॥ १५६॥

केचित्—उनमें से कुछ; **स्व-देह-अन्तः**—अपनी देह में ही; **हृदय-अवकाशे**—हृदय के स्थान में; **प्रादेश-मात्रम्**—छः इंच के माप से; **पुरुषम्**—परम पुरुष को; **वसन्तम्**—रहने वाले; **चतुः-भुजम्**—चार भुजाओं वाले; **कञ्ज**—कमलपुष्प; **रथ-अङ्ग**—एक रथ के पहिए के समान एक चक्र; **शङ्ख**—शंख; **गदा-धरम्**—गदा धारण किये हुए; **धारणया**—ऐसी धारणा से; **स्मरन्ति**—वे स्मरण करते हैं।

अनुवाद

"'कुछ योगी भगवान् का चिन्तन अपने हृदयों के भीतर छह इंच माप वाले भगवान् के रूप में करते हैं। भगवान् के चार हाथ हैं, जिनमें वे शंख, गदा, चक्र तथा पद्म धारण किये रहते हैं। जो योगी अपने हृदय में विष्णु के इस रूप की पूजा करते हैं, वे सगर्भ योगी कहलाते हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (२.२.८) का है।

एवं हरौ भगवति प्रतिलब्ध-भावो
भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात् ।
औत्कण्ठ्य-बाष्प-कलया मुहुरर्द्यमानस्
तच्चापि चित्त-बड़िशं शनकैर्वियुङ्क्ते ॥ १५७॥

एवं हरौ भगवति प्रतिलब्ध-भावो
भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात् ।
औत्कण्ठ्य-बाष्प-कलया मुहुरर्द्यमानस्
तच्चापि चित्त-बड़िशं शनकैर्वियुङ्क्ते ॥ १५७॥

एवम्—इस प्रकार; **हरौ**—भगवान् हरि में; **भगवति**—भगवान् में; **प्रतिलब्ध-भावः**—जिसका प्रेमभाव जाग गया है; **भक्त्या**—प्रेममयी सेवा द्वारा; **द्रवत्**—पिघलते हुए; **हृदयः**—हृदय; **उत्पुलकः**—अत्यन्त आनन्दित; **प्रमोदात्**—प्रसन्नता के कारण; **औत्कण्ठ्य**—उत्कण्ठा के साथ; **बाष्प-कलया**—आँखों में आँसुओं के साथ; **मुहुः**—सदैव; **अर्द्यमानः**—आध्यात्मिक आनन्द में लीन; **तत् च अपि**—वह भी; **चित्त-बड़िशम्**—एक मछली को पकड़ने के काँटे के समान हृदय से; **शनकैः**—क्रमशः; **वियुङ्क्ते**—अलग हो जाता है।

अनुवाद

"'जब किसी को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से प्रेम होता है, तो उसका हृदय भक्तियोग से द्रवित हो उठता है और उसे दिव्य आनन्द का अनुभव

होता है। उसके शरीर में लक्षण प्रकट होते हैं और उत्सुकतावश उसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। इस तरह उसे आध्यात्मिक आनन्द मिलता है। जब हृदय अत्यधिक व्यथित होता है, तो चिन्तनमग्न मन ध्यान के लक्ष्य से उसी तरह धीरे-धीरे विलग होने लगता है, जिस तरह मछली पकड़ने का काँटा।'

तात्पर्य

यह उद्धरण भी *श्रीमद्भागवत* (३.२८.३४) का है।

'योगारुरुक्षु', 'योगारूढ़' 'प्राप्त-सिद्धि' आर ।
एइ तिन भेदे हय छय प्रकार ॥ १५८॥

'য়োগারুরুক্ষু', 'য়োগারূঢ়' 'প্রাপ্ত-সিদ্ধি' আর ।
এই তিন ভেদে হয় ছয় প্রকার ॥ ১৫৮॥

য়োগ-আরুরুক্ষু—योग-सिद्धि में उन्नति करने के इच्छुक लोग; **য়োগ-আরূঢ়**—जो लोग इस स्तर पर पहले से ही स्थित हैं; **প্রাপ্ত-সিদ্ধি**—जिन्हें सिद्धि प्राप्त हो गई है; **আর**—तथा; **এই তিন**—ये तीन; **ভেদে**—भेदों द्वारा; **হয়**—होते हैं; **ছয় প্রকার**—छः प्रकार।

अनुवाद

"योग की प्रगति के इन तीन विभागों—योगारुरुक्षु, योगारुढ़ तथा प्राप्त-सिद्धि के द्वारा योगियों के छह भेद हो जाते हैं।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढ़स्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ १५९॥

আরুরুক্ষোর্মুনের্যোগং কর্ম কারণমুচ্যতে ।
যোগারূঢ়স্য তস্যৈব শমঃ কারণমুচ্যতে ॥ ১৫৯॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्य्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
য়োগারূঢ়স্য তস্যৈব শমঃ কারণমুচ্যতে ॥ ১৫৯॥

आरुरुक्षोः—योगसिद्धि के स्तर तक उठने के इच्छुक व्यक्ति का; **मुनेः**—मुनि का; **য়োগম্**—आध्यात्मिक ज्ञान; **কর্ম**—कर्म; **কারণম্**—कारण; **উচ্যতে**—कहा जाता है; **য়োগ-আরূঢ়স্য**—जिस व्यक्ति ने वह श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त कर लिया है; **তস্য**—उसके लिए; **এব**—निश्चय ही; **শমঃ**—मन को विचलित किये बिना वश में करना; **কারণম্**—कारण; **উচ্যতে**—कहा जाता है।

अनुवाद

"'जो सन्त लोग योग-सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं, वे योगाभ्यास करते हैं और उसके नियमों का दृढ़ता से पालन करते हैं। वे आसन तथा प्राणायाम करते हैं। जो लोग पहले से इस पद को प्राप्त हुए रहते हैं, वे ध्यान करते हैं और अपने मन को भगवान् पर केन्द्रित करते हैं। वे समस्त भौतिक कार्यों को त्यागकर अपने मन को सन्तुलित (*शम*) रखते हैं।'

तात्पर्य

क्रमांक १५९ तथा १६० दोनों ही श्लोक *भगवद्गीता* (६.३-४) के हैं।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्व-सङ्कल्प-सन्न्यासी योगारूढ़स्तदोच्यते ॥ १६० ॥

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्व-सङ्कल्प-सन्न्यासी योगारूढ़स्तदोच्यते ॥ १६० ॥

यदा—जब; **हि**—निश्चित रूप से; **न**—नहीं; **इन्द्रिय-अर्थेषु**—इन्द्रिय भोगों में; **न**—नहीं; **कर्मसु**—कर्मों में; **अनुषज्जते**—प्रवृत होता है; **सर्व**—सब प्रकार की; **सङ्कल्प**—इच्छाओं का; **सन्न्यासी**—त्याग करने वाला; **योग-आरूढ:**—योग पद्धति में सिद्धि प्राप्त; **तदा**—उस समय; **उच्यते**—कहा जाता है।

अनुवाद

"'जब मनुष्य इन्द्रियतृप्ति के लिए कर्म करने में कोई रुचि नहीं लेता और समस्त भौतिक इच्छाओं को त्याग देता है, तो उसे योगारूढ़ कहा जाता है।'

एই ছয় যোগী সাধু-সঙ্গাদি-হেতু পাঞা ।
কৃষ্ণ ভজে কৃষ্ণ-গুণে আকৃষ্ট হঞা ॥ ১৬১ ॥

এই ছয় যোগী সাধু-সঙ্গাদি-হেতু পাঞা ।
কৃষ্ণ ভজে কৃষ্ণ-গুণে আকৃষ্ট হঞা ॥ ১৬১ ॥

এই—ये; **ছয়**—छः; **যোগী**—योगी; **সাধু**—भक्तों के; **সঙ্গ-আদি**—संग आदि; **হেতু**—कारण; **পাঞা**—प्राप्त कर; **কৃষ্ণ ভজে**—कृष्ण की सेवा करते हैं; **কৃষ্ণ-গুণে**—कृष्ण के दिव्य गुणों द्वारा; **আকৃষ্ট**—आकर्षित; **হঞা**—होकर।

अनुवाद

"जब शुद्ध योगी भक्तों की संगति करता है, तो वह भगवान् के दिव्य गुणों से आकृष्ट होने के फलस्वरूप कृष्ण की भक्ति में लग जाता है।

च-शब्दे 'अपि'र अर्थ इहाओ कहय ।
'मुनि', 'निर्ग्रन्थ'-शब्देर पूर्ववतर्थ हय ॥ १६२॥

च-शब्दे 'अपि'र अर्थ इहाओ कहय ।
'मुनि', 'निर्ग्रन्थ'-शब्देर पूर्ववतर्थ हय ॥ १६२॥

च-शब्दे—*च* शब्द द्वारा; **'अपि'र**—*अपि* शब्द का भी; **अर्थ**—अर्थ; **इहाओ**—यहाँ भी; **कहय**—उपयुक्त है; **मुनि**—मुनि; **निर्ग्रन्थ**—*निर्ग्रन्थ;* **शब्देर**—शब्दों का; **पूर्व-वत्**—पहले जैसे ही; **अर्थ हय**—अर्थ हैं।

अनुवाद

"यहाँ पर 'च' तथा 'अपि' शब्दों के अर्थों का प्रयोग किया जा सकता है। 'मुनि' तथा 'निर्ग्रन्थ' शब्दों के अर्थ पहले जैसे ही हैं।

उरुक्रमे अहैतुकी काहाँ कोन अर्थ ।
एइ तेर अर्थ कहिलुँ परम समर्थ ॥ १६३॥

उरुक्रमे अहैतुकी काहाँ कोन अर्थ ।
एइ तेर अर्थ कहिलुँ परम समर्थ ॥ १६३॥

उरुक्रमे—अद्वितीय कार्य करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति; **अहैतुकी**—*अहैतुकी* शब्द; **काहाँ**—कहीं भी; **कोन**—कुछ; **अर्थ**—अर्थ; **एइ**—इस प्रकार; **तेर अर्थ**—तेरह अर्थ; **कहिलुँ**—मैंने बताए; **परम**—पूर्णतया; **समर्थ**—सम्पूर्ण।

अनुवाद

"'अहैतुकी' शब्द सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् उरुक्रम के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इस तरह मैंने आत्माराम श्लोक के अर्थ तेरह प्रकारों से बताये हैं।

तात्पर्य

आत्माराम श्लोक के जिन तेरह प्रकार के अर्थों का उल्लेख हुआ है, वे आत्माराम शब्द के निम्नलिखित अर्थों पर आधारित हैं : (१) साधक, नया

अभ्यासी; (२) ब्रह्ममय, जो निराकार ब्रह्म के विचार में मग्न है वह; (३) प्राप्तब्रह्मलय, जिसने वास्तव में ब्रह्म-पद प्राप्त कर लिया है वह; (४) मुमुक्षु, जो मोक्ष का इच्छुक है वह; (५) जीवन्मुक्त, जो इस जीवन में मुक्त है वह; (६) प्राप्तस्वरूप, जिसने अपनी मूल वैधानिक स्थिति प्राप्त कर ली है वह; (७) निर्ग्रन्थ मुनि, पूर्णतया मुक्त सन्त; (८) सगर्भ योगारुरुक्षु, चतुर्भुज विष्णु-रूप पर ध्यान करने वाला तथा यौगिक सिद्धि की आकांक्षा रखने वाला योगी; (९) निगर्भ योगारुरुक्षु, वह जो निराकार ध्यान में पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है; (१०) सगर्भ योगारूढ़, जो विष्णु-रूप पर ध्यान करने से योग-सिद्धि के स्तर पर उन्नत हो चुका है वह; (११) निगर्भ योगारूढ़, योग-सिद्धि के स्तर पर स्थित निराकारवादी योगी; (१२) सगर्भ प्राप्तसिद्धि, जिसने विष्णु-रूप पर ध्यान करके पूर्णता का स्तर प्राप्त कर लिया है वह; (१३) निगर्भ प्राप्तसिद्धि, जिसने निराकार ध्यान द्वारा सिद्धि प्राप्त कर ली है वह।

এই সব শান্ত যবে ভজে ভগবান্ ।
'শান্ত' ভক্ত করি' তবে কহি তাঁর নাম ॥ ১৬৪॥

এइ सब शान्त यबे भजे भगवान् ।
'शान्त' भक्त करि' तबे कहि ताँर नाम ॥ १६४॥

एइ सब—ये सब; **शान्त**—शान्त भाव के; **यबे**—जब; **भजे**—उपासना करते हैं; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की; **शान्त भक्त**—भक्ति में शान्त अवस्था के भक्त; **करि'**—मानकर; **तबे**—उस समय; **कहि**—मैं कहता हूँ; **ताँर**—उनका; **नाम**—नाम।

अनुवाद

"ये तेरह प्रकार के योगी तथा मुनि शान्त भक्त कहलाते हैं, क्योंकि ये पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति शान्त अवस्था में करते हैं।

'আত্মা' শব্দে 'মন' কহ—মনে যেই রমে ।
সাধু-সঙ্গে সেহ ভজে শ্রী-কৃষ্ণ-চরণে ॥ ১৬৫॥

'आत्मा' शब्दे 'मन' कह—मने येइ रमे ।
साधु-सङ्गे सेह भजे श्री-कृष्ण-चरणे ॥ १६५॥

आत्मा-शब्दे—*आत्मा* शब्द द्वारा; **मन**—मन; **कह**—यदि कहें; **मने**—मन में; **येइ रमे**—जो चिन्तन द्वारा सन्तुष्ट है; **साधु-सङ्गे**—भक्तों के संग द्वारा; **सेह**—वह भी; **भजे**—प्रेममयी सेवा करता है; **श्री-कृष्ण-चरणे**—भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की।

अनुवाद

"कभी-कभी 'आत्मा' शब्द का अर्थ 'मन' होता है। उस दशा में 'आत्माराम' शब्द का अर्थ होगा, 'वह व्यक्ति जो मानसिक चिन्तन द्वारा तुष्ट रहता है।' जब ऐसा व्यक्ति किसी शुद्ध भक्त की संगति करता है, तो वह कृष्ण के चरणकमलों की भक्ति शुरू कर देता है।

उदरमुपासते य ऋषि-वर्त्मसु कूर्प-दृशः
परिसर-पद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ।
तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं
पुनरिह यत्समेत्य न पतन्ति कृतान्त-मुखे ॥ १६६ ॥

उदरमुपासते य ऋषि-वर्त्मसु कूर्प-दृशः
परिसर-पद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ।
तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं
पुनरिह यत्समेत्य न पतन्ति कृतान्त-मुखे ॥ १६६ ॥

उदरम्—पेट की*; **उपासते**—उपासना करते हैं; **ये**—जो; **ऋषि-वर्त्मसु**—महान् ऋषियों द्वारा निर्देशित पथ पर; **कूर्प-दृशः**—जिसकी दृष्टि देहात्म बुद्धि के स्तर पर स्थित है; **परिसर-पद्धतिम्**—जहाँ से नाड़ियाँ निकलती हैं; **हृदयम्**—हृदय को; **आरुणयः**—आरुण ऋषि आदि के; **दहरम्**—हृदय के भीतर आकाश, हृदय में स्थित परमात्मा की सूक्ष्म धारणा; **ततः**—उससे; **उदगात्**—ऊपर गये; **अनन्त**—हे अनन्त; **तव**—आपका; **धाम**—निवास; **शिरः**—सिर; **परमम्**—परम, सर्वश्रेष्ठ; **पुनः**—फिर; **इह**—इस भौतिक जगत् में; **यत्**—जो; **समेत्य**—प्राप्त करके; **न**—नहीं; **पतन्ति**—गिरते; **कृत-अन्त-मुखे**—जन्म-मृत्यु के चक्र में।

अनुवाद

"'जो लोग महान् सन्त योगियों का अनुसरण करते हैं, वे योग-आसन विधि अपनाते हैं और अपने उदर से पूजा शुरू कर देते हैं, जहाँ पर ब्रह्म

*योगी के लिए पेट का अर्थ होता है *मुनि-पुरस्थ-ब्रह्मन्* अर्थात् शरीर को स्वस्थ रखने के लिए भोजन का पाचन करने वाला हृदय में स्थित ब्रह्मन्।

को स्थित बतलाया जाता है। ऐसे लोग शार्कराक्ष कहलाते हैं, जिसका अर्थ यह है कि वे स्थूल देहात्मबुद्धि में स्थित हैं। कुछ लोग आरुण ऋषि के भी अनुयायी हैं। इस पथ का अनुसरण करते हुए ये लोग नाड़ियों की क्रिया का निरीक्षण करते हैं। इस तरह वे धीरे-धीरे हृदय तक पहुँचते हैं, जहाँ सूक्ष्म ब्रह्म अर्थात् परमात्मा स्थित रहते हैं। तब वे उनकी उपासना करते हैं। हे असीम अनन्त! इन लोगों से बेहतर तो वे योगी हैं, जो अपने शिरोभाग से आपकी पूजा करते हैं। वे उदर से प्रारम्भ करके हृदय से होकर सिर के ऊपरी भाग तक पहुँच जाते हैं और ब्रह्मरन्ध्र से होकर निकल जाते हैं, जो खोपड़ी के ऊपर एक छिद्र है। इस तरह ये योगी सिद्धि-पद को प्राप्त होते हैं और जन्म-मृत्यु के चक्र में दुबारा प्रवेश नहीं करते।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (१०.८७.१८) का है।

एहो कृष्ण-गुणाकृष्ट महा-मुनि हञा ।
अहैतुकी भक्ति करे निर्ग्रन्थ हञा ॥ १६७॥

एहो कृष्ण-गुणाकृष्ट महा-मुनि हञा ।
अहैतुकी भक्ति करे निर्ग्रन्थ हञा ॥ १६७॥

एहो—ऐसे योगी; **कृष्ण गुण-आकृष्ट**—कृष्ण के दिव्य गुणों से आकर्षित होकर; **महा-मुनि हञा**—महान् मुनि होकर; **अहैतुकी भक्ति करे**—वे निष्काम प्रेममयी सेवा करते हैं; **निर्ग्रन्थ हञा**—योग प्रक्रिया से उदासीन बनकर।

अनुवाद

"योगीगण कृष्ण के दिव्य गुणों से आकर्षित होकर महान् मुनि बन जाते हैं। तब वे योग-विधि से बाधित नहीं होते और वे अनन्य भक्ति करने लगते हैं।

'आत्मा'-शब्दे 'यत्न' कहे—यत्न करिया ।
''मुनयोऽपि'' कृष्ण भजे गुणाकृष्ट हञा ॥ १६८॥

'आत्मा'-शब्दे 'यत्न' कहे—यत्न करिया ।
"मुनयोऽपि" कृष्ण भजे गुणाकृष्ट हञा ॥ १६८ ॥

आत्मा-शब्दे—*आत्मा* शब्द द्वारा; **यत्न**—प्रयत्न; **कहे**—एक अर्थ होता है; **यत्न करिया**—महान् प्रयत्न द्वारा; **मुनयः अपि**—महान् सन्त भी; **कृष्ण भजे**—कृष्ण की सेवा करने लग जाते हैं; **गुण-आकृष्ट हञा**—उनके दिव्य गुणों से आकृष्ट होकर।

अनुवाद

"'आत्मा' शब्द का एक अर्थ 'प्रयत्न' भी है। कुछ सन्त कृष्ण के दिव्य गुणों द्वारा आकर्षित होकर उनकी सेवा करने योग्य बनने के लिए महान् प्रयत्न करते हैं।

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो
न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ।
तल्लभ्यते दुःख-वदन्यतः सुखं
कालेन सर्वत्र गभीर-रंहसा ॥ १६९ ॥

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो
न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ।
तल्लभ्यते दुःख-वदन्यतः सुखं
कालेन सर्वत्र गभीर-रंहसा ॥ १६९ ॥

तस्य एव—उसके ही; **हेतोः**—कारण; **प्रयतेत**—प्रयत्न करना चाहिए; **कोविदः**—जो बुद्धिमान तथा विद्वान है; **न**—नहीं; **लभ्यते**—प्राप्त होते; **यत्**—जो; **भ्रमताम्**—उन्हें जो भ्रमण करते हैं; **उपरि अधः**—ऊपर नीचे; **तत्**—वह; **लभ्यते**—प्राप्त होता है; **दुःख-वत्**—दुःख की तरह; **अन्यतः**—अन्य कारण से (अपने पूर्व कर्म); **सुखम्**—सुख; **कालेन**—समय से; **सर्वत्र**—सब जगह; **गभीर**—जिसका पार नहीं पाया जा सकता; **रंहसा**—प्रभाव द्वारा।

अनुवाद

"'ब्रह्मलोक तथा सत्यलोक से पाताललोक तक ऊपर नीचे घूमने पर भी दिव्य पद की प्राप्ति नहीं की जा सकती। यदि कोई सचमुच बुद्धिमान तथा विद्वान है, तो उसे उस दुर्लभ दिव्य पद को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। चौदहों लोकों में जो भौतिक सुख उपलब्ध हो सकता है, उसे काल के प्रभाव से उसी तरह प्राप्त किया जा सकता है, जिस प्रकार

कालक्रम में दुःख प्राप्त होता है। किन्तु चूँकि आध्यात्मिक चेतना को इस प्रकार प्राप्त नहीं की जा सकती, अतएव इसके लिए प्रयास करना चाहिए।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१.५.१८) में नारद मुनि का कथन है। नारद मुनि ने इसे व्यासदेव से तब कहा, जब वे समस्त वेदों की रचना के बाद भी खिन्न-मन थे। इस सन्दर्भ में नारद मुनि ने श्रील व्यासदेव को केवल भक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयास करने का उपदेश दिया।

सद्धर्मस्यावबोधाय येषां निर्बन्धिनी मतिः ।
अचिरादेव सर्वार्थः सिध्यत्येषामभीप्सितः ॥ १७० ॥

सद्धर्मस्यावबोधाय येषां निर्बन्धिनी मतिः ।
अचिरादेव सर्वार्थः सिध्यत्येषामभीप्सितः ॥ १७० ॥

सत्-धर्मस्य—भक्ति के मार्ग के; **अवबोधाय**—ज्ञान के लिए; **येषाम्**—जिनकी; **निर्बन्धिनी**—अबाध; **मतिः**—बुद्धि; **अचिरात्**—शीघ्र ही; **एव**—अवश्य; **सर्व-अर्थः**—जीवन का लक्ष्य; **सिध्यति**—पूर्ण हो जाता है; **एषाम्**—इन लोगों का; **अभीप्सितः**—इच्छित।

अनुवाद

"'जो अपनी आध्यात्मिक चेतना जाग्रत करने के लिए उत्सुक हैं, जिनकी बुद्धि अचल है और विचलित नहीं होती, वे निश्चय ही वांछित जीवन लक्ष्य प्राप्त करते हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *नारदीय पुराण* का है।

च-शब्द अपि-अर्थे, 'अपि'—अवधारणे ।
यत्नाग्रह विना भक्ति ना जन्माय प्रेमे ॥ १७१ ॥

च-शब्द अपि-अर्थे, 'अपि'—अवधारणे ।
यत्नाग्रह विना भक्ति ना जन्माय प्रेमे ॥ १७१ ॥

च-शब्द—*च* शब्द; **अपि**—*अपि* शब्द के; **अर्थे**—अर्थ में; **अपि अवधारणे**—*अपि* बल

देने के लिए प्रयोग होता है; **ग्रत्न-आग्रह विना**—प्रयास और आग्रह के बिना; **भक्ति**—भक्ति; **ना**—नहीं; **जन्माय**—उत्पन्न करती; **प्रेमे**—भगवत्प्रेम।

अनुवाद

"'च' शब्द का प्रयोग 'अपि' के स्थान में किया जा सकता है, जो किसी बात पर बल देने वाला है। इस तरह इसका अर्थ यह हुआ कि भक्ति में निष्ठावान प्रयत्न के बिना भगवत्प्रेम प्राप्त नहीं किया जा सकता।

साधनौघैरनासङ्गैरलभ्या सु-चिरादपि ।
हरिणा चाश्वदेयेति द्विधा सा स्याच्सु-दुर्लभा ॥१७२॥

साधनौघैरनासङ्गैरलभ्या सु-चिरादपि ।
हरिणा चाश्वदेयेति द्विधा सा स्यात्सु-दुर्लभा ॥ १७२ ॥

साधन—भक्ति के कार्यकलाप; **ओघैः**—अधिकता द्वारा; **अनासङ्गैः**—आसक्ति के बिना; **अलभ्या**—प्राप्त करना कठिन है; **सु-चिरात् अपि**—यद्यपि अधिक समय तक किया जाए; **हरिणा**—परम भगवान् द्वारा; **च**—तथा; **आशु**—अति शीघ्र; **अदेया**—न देने योग्य; **इति**—इसलिये; **द्विधा**—दो प्रकार; **सा**—वह; **स्यात्**—है; **सु-दुर्लभा**—प्राप्त करने में अत्यन्त कठिन।

अनुवाद

"'भक्ति की पूर्णता प्राप्त करना दो कारणों से अतीव कठिन है। पहला यह कि जब तक कोई कृष्ण के प्रति अनुरक्त नहीं होता, तब तक उसे भक्ति की पूर्णता प्राप्त नहीं होती, भले ही वह दीर्घकाल तब भक्ति क्यों न करता रहे। दूसरा यह कि कृष्ण सरलता से भक्ति की पूर्णता प्रदान नहीं करते।'

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (५.६.१८) में कहा गया है—*मुक्तिं ददाति कर्हिचित्।* श्रील शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को बतलाया कि कृष्ण मुक्ति तो प्रदान कर देते हैं, किन्तु सरलता से भक्ति की पूर्णता प्रदान नहीं करते। इसका अर्थ यह हुआ कि कृष्ण यह देखना चाहते हैं कि भक्त सचमुच निष्ठावान् तथा गम्भीर है और उसका कोई निकृष्ट प्रयोजन नहीं है। यदि ऐसा हो तो भक्ति आसानी से सफल होती है, अन्यथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से इसे प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। यह श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.१.३५) में आया है।

तेषां सतत-युक्तानां भजतां प्रीति-पूर्वकम् ।
ददामि बुद्धि-योगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ १७३॥

तेषां सतत-युक्तानां भजतां प्रीति-पूर्वकम् ।
ददामि बुद्धि-योगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ १७३॥

तेषाम्—उनके लिए; **सतत-युक्तानाम्**—जो सदैव लगे रहते हैं; **भजताम्**—भक्तिमयी सेवा में; **प्रीति-पूर्वकम्**—प्रेमभाव से; **ददामि**—मैं देता हूँ; **बुद्धि-योगम्**—वास्तविक बुद्धि; **तम्**—वह; **येन**—जिसके द्वारा; **माम्**—मुझ तक; **उपयान्ति**—आते हैं; **ते**—वे।

अनुवाद

"'जो लोग निरन्तर मेरी भक्ति में लगे रहते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी सेवा करते हैं, उन्हें मैं बुद्धि प्रदान करता हूँ जिसके द्वारा वे मुझ तक आ सकते हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *भगवद्गीता* (१०.१०) का है। व्याख्या के लिए देखें आदिलीला १.४९।

'आत्मा'-शब्दे 'धृति' कहे,—धैर्ये येई रमे ।
धैर्यवन्त एव हञा करय भजने ॥ १७४॥

'आत्मा'-शब्दे 'धृति' कहे,—धैर्ये येइ रमे ।
धैर्यवन्त एव हञा करय भजने ॥ १७४॥

आत्मा-शब्दे—*आत्मा* शब्द द्वारा; **धृति**—धृति; **कहे**—कहा जाता है; **धैर्ये**—धैर्य के साथ; **येइ रमे**—जो प्रयास करता है; **धैर्य-वन्त**—ऐसा धीर व्यक्ति; **एव**—अवश्य; **हञा**—होकर; **करय**—करता है; **भजने**—प्रेममयी सेवा।

अनुवाद

"आत्मा का दूसरा अर्थ धृति या धैर्य है। जो व्यक्ति धैर्यपूर्वक प्रयास करता है, वह आत्माराम है। ऐसा व्यक्ति धैर्यपूर्वक भक्ति में लगता है।

'मुनि'-शब्दे——पक्षी, भृङ्ग; 'निर्ग्रन्थे'——मूर्ख-जन ।
कृष्ण-कृपाय साधु-कृपाय दोँहार भजन ॥ १७५॥

'मुनि'-शब्दे—पक्षी, भृङ्ग; 'निर्ग्रन्थे'—मूर्ख-जन ।
कृष्ण-कृपाय साधु-कृपाय दोंहार भजन ॥ १७५ ॥

मुनि-शब्दे—*मुनि* शब्द द्वारा; **पक्षी**—पक्षी; **भृङ्ग**—भौंरा; **निर्ग्रन्थे**—*निर्ग्रन्थ* शब्द द्वारा; **मूर्ख-जन**—मूर्ख लोग; **कृष्ण-कृपाय**—भगवान् कृष्ण की कृपा द्वारा; **साधु-कृपाय**—भक्त की कृपा द्वारा; **दोंहार भजन**—दोनों (कृष्ण तथा गुरु या साधु) की प्रेममयी सेवा में लग जाता है।

अनुवाद

"'मुनि' शब्द के अर्थ 'पक्षी' तथा 'भौंरा' भी हैं। 'निर्ग्रन्थ' शब्द मूर्ख लोगों का सूचक है। कृष्ण की कृपा से ऐसे जीव जब किसी साधु (गुरु) के सम्पर्क में आते हैं, तो वे भक्ति में लग जाते हैं।

प्रायो बताम्ब मुनयो विहगा वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कल-वेणु-गीतम् ।
आरुह्य ये द्रुम-भुजान्रुचिर-प्रवालान्
शृण्वन्ति मीलित-दृशो विगतान्य-वाचः ॥ १७६ ॥

प्रायो बताम्ब मुनयो विहगा वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कल-वेणु-गीतम् ।
आरुह्य ये द्रुम-भुजान् रुचिर-प्रवालान्
शृण्वन्ति मीलित-दृशो विगतान्य-वाचः ॥ १७६ ॥

प्रायः—लगभग; **बत**—अवश्य; **अम्ब**—हे माता; **मुनयः**—महान् मुनि; **विहगाः**—पक्षी; **वने**—वन में; **अस्मिन्**—इस; **कृष्ण-ईक्षितम्**—कृष्ण के चरणकमलों को देखकर; **तत्-उदितम्**—उनके द्वारा बनाये गये; **कल-वेणु-गीतम्**—वेणु बजाने से उत्पन्न मधुर धुनें; **आरुह्य**—चढ़कर; **ये**—वे सभी; **द्रुम-भुजान्**—वृक्षों की शाखाओं पर; **रुचिर-प्रवालान्**—सुन्दर लताओं और उपशाखाओं वाले; **शृण्वन्ति**—सुनते हैं; **मीलित-दृशः**—आँखें बन्द करके; **विगत-अन्य-वाचः**—अन्य सभी ध्वनियाँ बन्द करके।

अनुवाद

"'हे माता, इस जंगल में सारे पक्षी वृक्षों की सुन्दर शाखाओं पर बैठने के बाद अपनी आँखें बन्द किये हैं और किसी अन्य ध्वनि से आकृष्ट हुए बिना केवल कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि सुन रहे हैं। ऐसे पक्षी जरूर मुनियों जैसे पद पर ही होंगे।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (१०.२१.१४) से है। यह कथन उन गोपियों का है, जो कृष्ण के विरह में शोकसन्तप्त थीं और यह अनुभव कर रही थीं कि वृन्दावन के निवासी किस प्रकार मुनियों जैसा जीवन बिता रहे हैं।

एतेऽलिनस्तव यशोऽखिल-लोक-तीर्थं
गायन्त आदि-पुरुषानुपथं भजन्ते ।
प्रायो अमी मुनि-गणा भवदीय-मुख्या
गूढ़ं वनेऽपि न जहत्यनघात्म-दैवम् ॥ १७७॥

एते—ये सभी; **अलिनः**—भौंरे; **तव**—आपके; **यशः**—यश; **अखिल**—समस्त; **लोक-तीर्थम्**—लोकों के लिए शुभ; **गायन्ते**—गा रहे हैं; **आदि-पुरुष**—हे आदि पुरुष; **अनु-पथम्**—मार्ग के साथ; **भजन्ते**—वे दिव्य प्रेममयी सेवा में लगे हुए हैं; **प्रायः**—लगभग; **अमी**—ये; **मुनि-गणाः**—महान् सन्त; **भवदीय**—आपसे सम्बन्धित; **मुख्याः**—अति महान् भक्त; **गूढ़म्**—गुप्त; **वने**—वन में; **अपि**—यद्यपि; **न**—नहीं; **जहति**—त्यागते; **अनघ**—हे दिव्य गुणों के स्वरूप; **आत्म-दैवम्**—अपने आराध्य भगवान् को।

अनुवाद

'"हे मूर्तिमन्त सौभाग्य! हे आदि पुरुष, ये सारे भौंरे आपके दिव्य यश का गान कर रहे हैं, जिससे समग्र ब्रह्माण्ड शुद्ध हो जायेगा। निस्सन्देह, ये जंगल में आपके पथ का अनुसरण कर रहे हैं और आपकी पूजा कर रहे हैं। वस्तुतः ये सभी साधु पुरुष हैं, किन्तु अब इन्होंने भ्रमरों का रूप धारण कर रखा है। यद्यपि आप मनुष्य की तरह क्रीड़ा कर रहे हैं, किन्तु वे भूल नहीं पाये कि आप उनके आराध्य देव हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.१५.६) से लिया गया है। अभी कृष्ण तथा बलराम किशोरावस्था प्राप्त करने वाले थे और वृन्दावन के जंगल में

प्रवेश कर रहे थे, तभी कृष्ण ने बलराम को प्रसन्न करने के लिए यह स्तुति की।

सरसि सारस-हंस-विहङ्गाश्
चारु-गीत-हृत-चेतस एत्य ।
हरिमुपासत ते यत-चित्ता
हन्त मीलित-दृशो धृत-मौनाः ॥१७८॥

सरसि सारस-हंस-विहङ्गाश्
चारु-गीत-हृत-चेतस एत्य ।
हरिमुपासत ते यत-चित्ता
हन्त मीलित-दृशो धृत-मौनाः ॥१७८॥

सरसि—जल में; **सारस**—सारस; **हंस**—हंस; **विहङ्गाः**—पक्षी; **चारु-गीत**—कृष्ण की वेणु के मधुर गीतों द्वारा; **हृत-चेतसः**—भौतिक चेतना से रहित; **एत्य**—पास आकर; **हरिम्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **उपासत**—पूजा की; **ते**—वे सभी; **यत-चित्ताः**—पूर्ण ध्यानपूर्वक; **हन्त**—हाय; **मीलित-दृशः**—अपनी आँखे बन्द करके; **धृत-मौनाः**—पूर्णतया मौन।

अनुवाद

'"जल में सारे सारस तथा हंस कृष्ण की बाँसुरी के मधुर गीत से मोहित हो रहे हैं। वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के निकट पहुँचकर पूरे मनोयोग से उनकी पूजा कर रहे हैं। अरे, वे तो अपनी आँखें बन्द किये हैं और पूर्णतया शान्त हो गये हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (१०.३५.११) का है। दिन में कृष्ण वृन्दावन के जंगल में गये हुए थे, उस समय गोपियाँ उनके विरहवश इस प्रकार सन्ताप कर रही थीं।

किरात-हूणान्ध्र-पुलिन्द-पुक्कशा
आभीर-शुम्भा यवनाः खसादयः ।
येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥१७९॥

किरात-हूनान्ध्र-पुलिन्द-पुक्कशा
आभीर-शुम्भा यवनाः खशादयः ।
येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥ १७९ ॥

किरात—किरात नामक आदिवासी; **हून**—हूण; **आन्ध्र**—आन्ध्र; **पुलिन्द**—पुलिन्द; **पुक्कशाः**—पुक्कश; **आभीर**—आभीर; **शुम्भाः**—शुम्भ; **यवनाः**—जो लोग वैदिक नियम पालन नहीं करते और जो गाय का मांस खाते हैं; **खश-आदयः**—खश आदि; **ये**—जो; **अन्ये**—ऐसे अन्य; **च**—भी; **पापाः**—पापी लोग; **यत्**—जिनके, परम भगवान् के; **उपाश्रय**—भक्तों का; **आश्रयाः**—आश्रय लेकर; **शुध्यन्ति**—शुद्ध हो जाते हैं; **तस्मै**—उनको (भगवान् विष्णु को); **प्रभविष्णवे**—सर्वशक्तिमान भगवान् विष्णु को; **नमः**—प्रणाम।

अनुवाद

"'मैं परम शक्तिमान उन भगवान् को नमस्कार करता हूँ, जिनके भक्तों की शरण ग्रहण करने से किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कश, आभीर, शुम्भ, यवन और खश तथा अन्य जातियाँ भी, जो पापकर्म में निरत रहती हैं, शुद्ध हो सकती हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (२.४.१८) से है। जब परीक्षित महाराज ने शुकदेव गोस्वामी से सृष्टि का वर्णन करने के लिए कहा, तब उन्होंने यह श्लोक कहा था। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को नमस्कार करते हुए शुकदेव गोस्वामी ने उन भगवान् विष्णु की असीम शक्तियों का वर्णन किया, जो यहाँ पर वर्णित अधम प्राणियों को शुद्ध करने वाले हैं।

কিংবা 'ধৃতি'-শব্দে নিজ-পূর্ণতাদি-জ্ঞান কয় ।
দুঃখাভাবে উত্তম-প্রাপ্ত্যে মহা-পূর্ণ হয় ॥ ১৮০ ॥

किंवा 'धृति'-शब्दे निज-पूर्णतादि-ज्ञान कय ।
दुःखाभावे उत्तम-प्राप्त्ये महा-पूर्ण हय ॥ १८० ॥

किंवा—अथवा; **धृति-शब्दे**—*धृति* शब्द द्वारा; **निज**—अपनी; **पूर्णता-आदि**—पूर्णता आदि; **ज्ञान**—ज्ञान; **कय**—कहते हैं; **दुःख-अभावे**—सभी भौतिक कष्टों के अभाव में; **उत्तम**—सर्वश्रेष्ठ; **प्राप्त्ये**—प्राप्त कर; **महा-पूर्ण हय**—पूर्णतया पूर्ण हो जाता है।

अनुवाद

"'धृति' शब्द का प्रयोग तब भी किया जाता है, जब कोई ज्ञान में परिपूर्ण होता है। जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमलों को प्राप्त कर लेने के बाद भक्त के सारे भौतिक कष्ट दूर हो जाते हैं, तब वह पूर्णता के उच्चतम पद 'महापूर्ण' को प्राप्त करता है।

धृतिः स्याज्पूर्णता-ज्ञान-दुःखाभावोत्तमाप्तिभिः ।
अप्राप्तातीत-नष्टार्था-नभिसंशोचनादि-कृत् ॥ १८१॥

धृतिः स्यात्पूर्णता-ज्ञान-दुःखाभावोत्तमाप्तिभिः ।
अप्राप्तातीत-नष्टार्था-नभिसंशोचनादि-कृत् ॥ १८१॥

धृतिः—सहनशक्ति; **स्यात्**—हो सकती है; **पूर्णता**—पूर्णता; **ज्ञान**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का ज्ञान; **दुःख-अभाव**—दुःख का अभाव; **उत्तम-आप्तिभिः**—पूर्णता का सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त करके; **अप्राप्त**—प्राप्त नहीं; **अतीत**—बीता हुआ; **नष्ट**—नष्ट; **अर्थ**—वस्तु, लक्ष्य; **अनभिसंशोचन**—शोक का अभाव; **आदि**—आदि; **कृत्**—करते हुए।

अनुवाद

"'धृति वह पूर्णता है, जो दुःख की अनुपस्थिति में और भगवद्ज्ञान प्राप्त होने तथा शुद्ध भगवत्प्रेम प्राप्त होने पर अनुभव की जाती है। लक्ष्य प्राप्त न कर सकने अथवा किसी प्राप्त की हुई वस्तु की क्षति से उत्पन्न सन्ताप इस पूर्णता को प्रभावित नहीं करते।'

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (२.४.१४४) में पाया जाता है।

कृष्ण-भक्त—दुःख-हीन, वाञ्छान्तर-हीन ।
कृष्ण-प्रेम-सेवा-पूर्णानन्द-प्रवीण ॥ १८२॥

कृष्ण-भक्त—दुःख-हीन, वाञ्छान्तर-हीन ।
कृष्ण-प्रेम-सेवा-पूर्णानन्द-प्रवीण ॥ १८२॥

कृष्ण-भक्त—भगवान् कृष्ण का भक्त; **दुःख-हीन**—भौतिक स्थितियों के कष्ट से मुक्त; **वाञ्छा-अन्तर-हीन**—कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त उसकी कोई इच्छा नहीं होती; **कृष्ण-**

प्रेम—कृष्ण-प्रेम; **सेवा**—सेवा; **पूर्ण-आनन्द**—दिव्य आनन्द से पूर्ण; **प्रवीण**—तथा अत्यन्त निपुण।

अनुवाद

"कृष्ण का भक्त कभी दुःखी अवस्था में नहीं रहता, न ही उसे कृष्ण की सेवा करने के अतिरिक्त कोई अन्य इच्छा होती है। वह अनुभवी तथा उन्नत होता है। वह कृष्ण-प्रेम के दिव्य आनन्द का अनुभव करता है और उन्हीं की सेवा में पूर्णता के साथ लगा रहता है।

मज्सेवया प्रतीतं ते सालोक्यादि-चतुष्टयम् ।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्काल-विप्लुतम् ॥ १८३ ॥

मत्सेवया प्रतीतं ते सालोक्यादि-चतुष्टयम् ।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्काल-विप्लुतम् ॥ १८३ ॥

मत्—मेरी; **सेवया**—सेवा द्वारा; **प्रतीतम्**—प्राप्त; **ते**—वे; **सालोक्य-आदि**—सालोक्य आदि मुक्ति; **चतुष्टयम्**—चार प्रकार की; **न इच्छन्ति**—नहीं चाहते; **सेवया**—सेवा द्वारा; **पूर्णाः**—पूर्ण; **कुतः**—कहाँ; **अन्यत्**—अन्य वस्तुएँ; **काल-विप्लुतम्**—जो समय के साथ लुप्त हो जाती हैं।

अनुवाद

"'मेरी सेवा करने से अपनी इच्छाएँ पूरी कर लेने के बाद मेरे भक्त चार प्रकार की मुक्तियों को स्वीकार नहीं करते, जो ऐसी सेवा से सरलता से प्राप्त की जा सकती हैं। तो फिर वे ऐसे आनन्दों को क्यों स्वीकार करेंगे, जो समय के साथ विलुप्त हो जाते हैं?'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (९.४.६७) से उद्धृत है।

हृषीकेशे हृषीकाणि यस्य स्थैर्य-गतानि हि ।
स एव धैर्यमाप्नोति संसारे जीव-चञ्चले ॥ १८४ ॥

हृषीकेशे हृषीकाणि यस्य स्थैर्य-गतानि हि ।
स एव धैर्यमाप्नोति संसारे जीव-चञ्चले ॥ १८४ ॥

हृषीकेशे—इन्द्रियों के स्वामी को; **हृषीकाणि**—सभी इन्द्रियाँ; **ग्रस्य**—जिसकी; **स्थैर्य-गतानि**—स्थिर; **हि**—अवश्य; **सः**—वह व्यक्ति; **एव**—अवश्य; **धैर्यम् आप्नोति**—धैर्य की स्थिति प्राप्त करता है; **संसारे**—भौतिक जगत् में; **जीव-चञ्चले**—जहाँ सभी विचलित है।

अनुवाद

"'इस भौतिक जगत् में सारे जीव अपने चंचल स्वभाव के कारण विचलित रहते हैं। किन्तु भक्त इन्द्रियों के स्वामी भगवान् के चरणकमलों की सेवा में स्थिर रहता है। ऐसा व्यक्ति धैर्य तथा सहिष्णुता में स्थित माना जाता है।'

'च'—अवधारणे, इहा 'अपि'—समुच्चये ।
धृतिमन्त हञा भजे पक्षि-मूर्ख-चये ॥ १८५॥
'च'—अवधारणे, इहा 'अपि'—समुच्चये ।
धृतिमन्त हञा भजे पक्षि-मूर्ख-चये ॥ १८५॥

च—*च* शब्द; **अवधारणे**—बल देने के अर्थ में; **इहा**—यहाँ; **अपि**—*अपि* शब्द भी; **समुच्चये**—सम्मुच्चय के भाव में; **धृतिमन्त**—पूर्ण; **हञा**—होकर; **भजे**—उपासना करता है; **पक्षि-मूर्ख-चये**—पक्षी जैसे सर्वाधिक मूर्ख जीव।

अनुवाद

"'च' शब्द बल देने के लिए है और 'अपि' शब्द समुच्चय के रूप में प्रयुक्त है। इस प्रकार यह समझना होगा कि मन्द प्राणी भी (पक्षी तथा निरक्षर) सहनशील हो सकते हैं और कृष्ण-भक्ति में लग सकते हैं।

'आत्मा'-शब्दे 'बुद्धि' कहे बुद्धि-विशेष ।
सामान्य-बुद्धि-युक्त यत जीव अवशेष ॥ १८६॥
'आत्मा'-शब्दे 'बुद्धि' कहे बुद्धि-विशेष ।
सामान्य-बुद्धि-ग्रुक्त ग्रत जीव अवशेष ॥ १८६॥

आत्मा-शब्दे—*आत्मा* शब्द द्वारा; **बुद्धि**—बुद्धि; **कहे**—कही जाती है; **बुद्धि-विशेष**—एक विशेष प्रकार की बुद्धि; **सामान्य-बुद्धि-ग्रुक्त**—सामान्य बुद्धि से युक्त; **ग्रत**—सभी; **जीव**—जीवात्मा; **अवशेष**—बचे हुए।

अनुवाद

"'आत्मा' शब्द विशेष प्रकार की बुद्धि के लिए भी प्रयुक्त होता है। चूँकि सामान्यतया समस्त जीवों में थोड़ी-बहुत बुद्धि होती है, अतः वे इसमें आ जाते हैं।

बुद्ध्ये रमे आत्मारामे——दुइ त' प्रकार ।
'पण्डित' मुनि-गण, निर्ग्रन्थ 'मूर्ख' आर ॥ १८७॥

बुद्ध्ये रमे आत्माराम——दुइ त' प्रकार ।
'पण्डित' मुनि-गण, निर्ग्रन्थ 'मूर्ख' आर ॥ १८७॥

बुद्ध्ये—बुद्धि में; **रमे**—जो आनन्द लेता है; **आत्माराम**—वह आत्माराम है; **दुइ त' प्रकार**—दो प्रकार के; **पण्डित**—विद्वान; **मुनि-गण**—दार्शनिक; **निर्ग्रन्थ**—ज्ञान रहित; **मूर्ख**—मूर्ख; **आर**—तथा।

अनुवाद

"हर जीव में किसी न किसी तरह की बुद्धि रहती है और जो अपनी बुद्धि का उपयोग करता है, वह आत्माराम कहलाता है। आत्माराम के दो प्रकार हैं—एक तो विद्वान तथा दार्शनिक और दूसरा अशिक्षित तथा मूर्ख व्यक्ति।

कृष्ण-कृपाय साधु-सङ्गे रति-बुद्धि पाय ।
सब छाड़ि' शुद्ध-भक्ति करे कृष्ण-पाय ॥ १८८॥

कृष्ण-कृपाय साधु-सङ्गे रति-बुद्धि पाय ।
सब छाड़ि' शुद्ध-भक्ति करे कृष्ण-पाय ॥ १८८॥

कृष्ण-कृपाय—कृष्ण की कृपा द्वारा; **साधु-सङ्गे**—भक्तों के संग में; **रति-बुद्धि**—भक्तिमय आकर्षण तथा बुद्धि; **पाय**—प्राप्त करता है; **सब छाड़ि'**—सब कुछ त्यागकर; **शुद्ध-भक्ति**—शुद्ध प्रेममयी सेवा; **करे**—करता है; **कृष्ण-पाय**—कृष्ण के चरणों में।

अनुवाद

"कृष्ण की कृपा एवं भक्तों की संगति से शुद्ध भक्ति के प्रति व्यक्ति का आकर्षण और बुद्धि बढ़ती है, अतः वह सब कुछ त्यागकर कृष्ण एवं उनके शुद्ध भक्तों के चरणकमलों में अपने आपको नियुक्त कर देता है।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भाव-समन्विताः ॥ १८९॥
अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भाव-समन्विताः ॥ १८९ ॥

अहम्—मैं, भगवान् कृष्ण; **सर्वस्य**—सबका; **प्रभवः**—मूल स्रोत; **मत्तः**—मुझसे; **सर्वम्**—सब कुछ; **प्रवर्तते**—प्रकट होता है; **इति**—ऐसा; **मत्वा**—समझकर; **भजन्ते**—प्रेममयी सेवा करते हैं; **माम्**—मेरी; **बुधाः**—जो बुद्धिमान हैं; **भाव-समन्विताः**—प्रेम और भक्तिभाव से युक्त।

अनुवाद

"'मैं (कृष्ण) हर वस्तु का उद्गम हूँ। हर वस्तु मुझ से ही उद्भूत होती है। जो बुद्धिमान इसे भलीभाँति जान लेते हैं, वे प्रेम तथा भक्ति के साथ मेरी सेवा में लग जाते हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *भगवद्गीता* (१०.८) का है।

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देव-मायां
स्त्री-शूद्र-हूण-शवरा अपि पाप-जीवाः ।
यद्यद्भुत-क्रम-परायण-शील-शिक्षास्
तिर्यग्जना अपि किमु श्रुत-धारणा ये ॥ १९०॥
ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देव-मायां
स्त्री-शूद्र-हूण-शबरा अपि पाप-जीवाः ।
यद्यद्भुत-क्रम-परायण-शील-शिक्षास्
तिर्यग्जना अपि किमु श्रुत-धारणा ये ॥ १९० ॥

ते—वे सभी; **वै**—निश्चित रूप से; **विदन्ति**—जानते हैं; **अतितरन्ति**—पार करते हैं; **च**—तथा; **देव-मायाम्**—बहिरंगा माया शक्ति का प्रभाव; **स्त्री**—स्त्री; **शूद्र**—शूद्र; **हून**—आदीवासी; **शबराः**—शिकारी; **अपि**—भी; **पाप-जीवाः**—पापी जीव; **यदि**—यदि; **अद्भुत-क्रम**—अद्भुत कार्य करने वाले के; **परायण**—भक्तों का; **शील-शिक्षाः**—चरित्र तथा शिक्षा; **तिर्यक्-जनाः**—पक्षी तथा पशु; **अपि**—भी; **किम् उ**—क्या कहा जाए; **श्रुत-धारणाः ये**—जो लोग वैदिक ज्ञान में उन्नत हैं।

अनुवाद

"'स्त्रियाँ, शूद्र, असभ्य पहाड़ी जातियाँ, शिकारी तथा अन्य अनेक निम्न कुल में उत्पन्न लोगों के साथ ही पक्षी तथा पशु भी अद्भुत प्रकार से कार्य करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा कर सकते हैं और भक्तों के पथ का अनुसरण करते हुए उनसे शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। यद्यपि अज्ञान का सागर विस्तृत है, फिर भी वे इसे पार कर सकते हैं। तो फिर जो लोग वैदिक ज्ञान में उन्नत हैं, उनके लिए कौन-सी कठिनाई है?'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (२.७.४६) से है। भगवान् विष्णु के अद्भुत गुणों का वर्णन करते हुए ब्रह्मा ने ये शब्द अपने शिष्य नारद से कहे थे। भगवान् विष्णु का महिमागान करने मात्र से मनुष्य अज्ञान-सागर को पार कर सकता है, भले ही वह निम्नकुल में क्यों न जन्मा हो।

विचार करिया यबे भजे कृष्ण-पाय ।
सेइ बुद्धि देन ताँरे, याते कृष्ण पाय ॥ १९१॥

विचार करिया यबे भजे कृष्ण-पाय ।
सेइ बुद्धि देन ताँरे, याते कृष्ण पाय ॥ १९१॥

विचार—विचार; **करिया**—करके; **यबे**—जब; **भजे**—कोई उपासना करता है; **कृष्ण-पाय**—कृष्ण के चरणकमलों की; **सेइ बुद्धि**—वह बुद्धि; **देन**—देते हैं; **ताँरे**—उसे; **याते**—जिसके द्वारा; **कृष्ण पाय**—वह कृष्ण के चरणकमल प्राप्त करता है।

अनुवाद

"इन सब बातों पर विचार करते हुए जब कोई कृष्ण के चरणकमलों की सेवा में संलग्न होता है, तो कृष्ण उसे ऐसी बुद्धि प्रदान करते हैं, जिससे वह धीरे-धीरे भगवत्सेवा में पूर्णता की ओर आगे बढ़ सकता है।

तेषां सतत-युक्तानां भजतां प्रीति-पूर्वकम् ।
ददामि बुद्धि-योगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ १९२॥

तेषां सतत-युक्तानां भजतां प्रीति-पूर्वकम् ।
ददामि बुद्धि-योगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ १९२ ॥

तेषाम्—उनको; **सतत-युक्तानाम्**—जो सदैव रत रहते हैं; **भजताम्**—भक्तिमयी सेवा में; **प्रीति-पूर्वकम्**—प्रेमभाव से; **ददामि**—मैं देता हूँ; **बुद्धि-योगम्**—वास्तविक बुद्धि; **तम्**—वह; **येन**—जिसके द्वारा; **माम्**—मेरे पास; **उपयान्ति**—आ जाते हैं; **ते**—वे।

अनुवाद

"'जो लोग निरन्तर भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी सेवा करते हैं, उन्हें मैं ऐसा ज्ञान प्रदान करता हूँ, जिससे वे मेरे पास आ सकते हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *भगवद्गीता* (१०.१०) से है।

সত্সঙ্গ, কৃষ্ণ-সেবা, ভাগবত, নাম ।
ব্রজে বাস,—এই পঞ্চ সাধন প্রধান ॥ ১৯৩ ॥

सत्सङ्ग, कृष्ण-सेवा, भागवत, नाम ।
व्रजे वास,—एइ पञ्च साधन प्रधान ॥ १९३ ॥

सत्-सङ्ग—भक्तों का संग; **कृष्ण-सेवा**—कृष्ण की सेवा में लगना; **भागवत**—भक्त-भागवत तथा ग्रन्थ भागवत; **नाम**—पवित्र नाम का कीर्तन; **व्रजे वास**—वृन्दावन या मथुरा में निवास; **एइ**—ये; **पञ्च**—पाँच; **साधन प्रधान**—भक्ति के मुख्य साधन।

अनुवाद

"भक्ति-पद तक ऊपर उठने के लिए निम्नलिखित पाँच बातों का ध्यान रखना चाहिए—भक्तों की संगति करना, भगवान् कृष्ण की सेवा में लगना, श्रीमद्भागवत का पाठ करना, भगवान के पवित्र नाम का कीर्तन करना तथा वृन्दावन या मथुरा में निवास करना।

এই-পঞ্চ-মধ্যে এক 'স্বল্প' যদি হয় ।
সুবুদ্ধি জনের হয় কৃষ্ণ-প্রেমোদয় ॥ ১৯৪ ॥

एइ-पञ्च-मध्ये एक 'स्वल्प' यदि हय ।
सुबुद्धि जनेर हय कृष्ण-प्रेमोदय ॥ १९४ ॥

एइ—इन; **पञ्च-मध्ये**—पाँचों में से; **एक**—केवल एक की; **स्वल्प**—थोड़ी मात्रा; **यदि**—यदि; **हय**—होती है; **सु-बुद्धि**—बुद्धिमान; **जनेर**—व्यक्ति का; **हय**—हो जाता है; **कृष्ण-प्रेम-उदय**—सुप्त कृष्ण-प्रेम का उदय।

अनुवाद

"यदि कोई इन पाँचों बातों में से किसी एक में थोड़ा भी अग्रसर होता है और बुद्धिमान होता है, तो कृष्ण के प्रति उसका सुप्त प्रेम क्रमशः जाग्रत हो उठता है।

दुरूहाद्भुत-वीर्येऽस्मिन्श्रद्धा दूरेऽस्तु पञ्चके ।
यत्र स्वल्पोऽपि सम्बन्धः सद्धियां भाव-जन्मने ॥ १९५॥

दुरूहाद्भुत-वीर्येऽस्मिन्श्रद्धा दूरेऽस्तु पञ्चके ।
यत्र स्वल्पोऽपि सम्बन्धः सद्धियां भाव-जन्मने ॥ १९५॥

दुर्-ऊह—समझने में कठिन; **अद्भुत**—अद्भुत; **वीर्ये**—शक्ति में; **अस्मिन्**—उसमें; **श्रद्धा**—विश्वास; **दूरे**—दूर; **अस्तु**—हो; **पञ्चके**—इन पाँच नियमों में; **यत्र**—जिसमें; **सु-अल्पः**—थोड़ा सा; **अपि**—भी; **सम्बन्धः**—सम्बन्ध; **सत्-धियाम्**—उनका जो बुद्धिमान और निरपराध है; **भाव-जन्मने**—कृष्ण के प्रति प्रेम जागृत करने में।

अनुवाद

"'इन पाँचों सिद्धान्तों की शक्ति अतीव अद्भुत है और समझनी मुश्किल है। उनमें श्रद्धा के बिना ही निरपराध व्यक्ति उनके साथ रंचमात्र सम्बन्ध होने पर अपने सुप्त कृष्ण-प्रेम को जाग्रत कर सकता है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.२.२३८) में प्राप्त है।

उदार महती याँर सर्वोत्तमा बुद्धि ।
नाना कामे भजे, तबु पाय भक्ति-सिद्धि ॥ १९६॥

उदार महती याँर सर्वोत्तमा बुद्धि ।
नाना कामे भजे, तबु पाय भक्ति-सिद्धि ॥ १९६॥

उदार—उदार; **महती**—अत्यन्त; **याँर**—जिसकी; **सर्व-उत्तमा**—सर्वोत्तम; **बुद्धि**—बुद्धि;

नाना—अनेक; **कामे**—इच्छाओं के साथ; **भजे**—भक्ति में प्रवृत्त होता है; **तबु**—फिर भी; **पाय**—प्राप्त करता है; **भक्ति-सिद्धि**—भक्ति में पूर्णता।

अनुवाद

"यदि मनुष्य वास्तव में उदार तथा बुद्धिमान है, तो वह आगे बढ़ सकता है और भक्ति में पूर्ण बन सकता है, भले ही उसमें भौतिक इच्छाएँ क्यों न हों और चाहे वह किसी स्वार्थ से भगवान् की सेवा क्यों न करता हो।

अकामः सर्व-कामो वा मोक्ष-काम उदार-धीः ।
तीव्रेण भक्ति-योगेन यजेत पुरुषं परम् ॥ १९७॥

अकामः सर्व-कामो वा मोक्ष-काम उदार-धीः ।
तीव्रेण भक्ति-योगेन यजेत पुरुषं परम् ॥ १९७॥

अकामः—भौतिक इच्छाओं से रहित; **सर्व-कामः**—सभी भौतिक इच्छाओं से भरा; **वा**—या; **मोक्ष-कामः**—मुक्ति का इच्छुक; **उदार-धीः**—भक्ति में उन्नत तथा गम्भीर; **तीव्रेण**—दृढ़; **भक्ति-योगेन**—भक्तियोग के अभ्यास द्वारा; **यजेत**—उपासना करनी चाहिए; **पुरुषम् परम्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की।

अनुवाद

"'कोई चाहे सकाम हो या अकाम अथवा भगवान् से तादात्म्य का इच्छुक हो, वह तभी बुद्धिमान है जब वह दिव्य प्रेमाभक्ति द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की पूजा करता है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (२.३.१०) का है।

ভক্তি-প্রভাব,—সেই কাম ছাড়াঞা ।
কৃষ্ণ-পদে ভক্তি করায় গুণে আকর্ষিয়া ॥ ১৯৮॥

ভক্তি-প্রভাব,—সেই কাম ছাড়াঞা ।
কৃষ্ণ-পদে ভক্তি করায় গুণে আকর্ষিয়া ॥ ১৯৮॥

भक्ति-प्रभाव—प्रेममयी सेवा का प्रभाव; **सेइ**—वह; **काम**—भौतिक इच्छाएँ;

छाड़ाञा—छुड़वाकर; **कृष्ण-पदे**—कृष्ण के चरणकमलों में; **भक्ति कराय**—सेवा करवाती है; **गुणे**—दिव्य गुणों द्वारा; **आकर्षिया**—आकर्षित करके।

अनुवाद

"भक्ति इतनी प्रबल है कि जब कोई इसमें लग जाता है, तो वह क्रमशः समस्त भौतिक इच्छाओं का परित्याग कर देता है और पूरी तरह से कृष्ण के चरणकमलों के प्रति अनुरक्त हो जाता है। यह सब भगवान् के दिव्य गुणों के प्रति आकर्षण से ही सम्भव होता है।

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थ-दो यत्पुनरर्थिता यतः ।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छताम्
इच्छा-पिधानं निज-पाद-पल्लवम् ॥ १९९॥

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थ-दो यत्पुनरर्थिता यतः ।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छताम्
इच्छा-पिधानं निज-पाद-पल्लवम् ॥ १९९ ॥

सत्यम्—यह सत्य है; **दिशति**—वे प्रदान करते हैं; **अर्थितम्**—जो भी इच्छित है; **अर्थितः**—माँगे जाने पर; **नृणाम्**—मनुष्यों द्वारा; **न**—नहीं; **एव**—निश्चय ही; **अर्थ-दः**—इच्छित वस्तुएँ देकर; **यत्**—जो; **पुनः**—फिर; **अर्थिता**—माँगे; **यतः**—जिसके कारण से; **स्वयम्**—स्वयं को; **विधत्ते**—वे दे देते हैं; **भजताम्**—जो प्रेममयी सेवा में रत हैं; **अनिच्छताम्**—न चाहते हुए भी; **इच्छा-पिधानम्**—अन्य सभी इच्छाएँ ढककर; **निज-पाद-पल्लवम्**—अपने चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

"'जब भी कृष्ण से किसी इच्छा को पूरा करने के लिए प्रार्थना की जाती है, तो वे अवश्य ही वैसा करते हैं, किन्तु वे ऐसी कोई वस्तु नहीं प्रदान करते, जिसका उपभोग किये जाने के बाद अधिकाधिक इच्छाओं को पूरा करने के लिए बारम्बार याचना करनी पड़े। जब किसी की अन्य इच्छाएँ होती हैं, किन्तु वह भगवान् की सेवा में लगता है, तो कृष्ण उसे बलात् अपने चरणकमलों में शरण देते हैं, जहाँ वह अन्य सारी इच्छाओं को भूल जाता है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (५.१९.२७) का है।

'आत्मा'-शब्दे 'स्वभाव' कहे, ताते येई रमे ।
आत्माराम जीव यत स्थावर-जङ्गमे ॥२००॥

'आत्मा'-शब्दे 'स्वभाव' कहे, ताते येइ रमे ।
आत्माराम जीव यत स्थावर-जङ्गमे ॥ २००॥

आत्मा-शब्दे—*आत्मा* शब्द द्वारा; **स्वभाव**—स्वभाव; **कहे**—कभी-कभी कहा जाता है; **ताते**—उसमें; **येइ रमे**—जो आनन्द लेता है; **आत्माराम**—*आत्माराम* नामक; **जीव**—जीवात्मा; **यत**—वे सभी; **स्थावर-जङ्गमे**—चर तथा अचर।

अनुवाद

"'आत्मा' शब्द का अन्य अर्थ 'मनुष्य का लाक्षणिक स्वभाव' है। जो भी अपने विशिष्ट प्रकार के स्वभाव का भोग करता है, वह आत्माराम कहलाता है। अतः सारे जीव भी, चाहे चर हों या अचर, आत्माराम कहलाते हैं।

जीवेर स्वभाव—कृष्ण-'दास'-अभिमान ।
देहे आत्म-ज्ञाने आच्छादित सेइ 'ज्ञान' ॥२०१॥

जीवेर स्वभाव—कृष्ण-'दास'-अभिमान ।
देहे आत्म-ज्ञाने आच्छादित सेइ 'ज्ञान' ॥ २०१॥

जीवेर स्वभाव—सारे जीवात्माओं का वास्तविक स्वभाव; **कृष्ण-दास**—कृष्ण के सेवक; **अभिमान**—अभिमान; **देहे**—भौतिक शरीर में; **आत्म-ज्ञाने**—आत्मा के ज्ञान द्वारा; **आच्छादित**—ढका हुआ होता है; **सेइ ज्ञान**—वह वास्तविक ज्ञान।

अनुवाद

"हर जीव का मूल स्वभाव अपने आपको कृष्ण का सनातन सेवक समझना है। फिर भी माया के वशीभूत होकर वह अपने आपको शरीर समझता है और इस तरह उसकी मूल चेतना ढक जाती है।

চ-শব্দে 'এব', 'অপি'-শব্দ সমুচ্চয়ে ।
'আত্মারামা এব' হঞা শ্রী-কৃষ্ণ ভজয়ে ॥২০২॥

চ-শব্দে 'এব', 'অপি'-শব্দ সমুচ্চয়ে ।
'আত্মারামা এব' হঞা শ্রী-কৃষ্ণ ভজয়ে ॥ ২০২॥

চ-শব্দে—*চ* शब्द द्वारा; **এব**—*एव* शब्द; **অপি-শব্দ**—*अपि* शब्द; **সমুচ্চয়ে**—समुच्चय के अर्थ में; **আত্মারামাঃ এব**—सभी आत्माराम (सभी प्रकार के जीवात्मा); **হঞা**—होकर; **শ্রী-কৃষ্ণ ভজয়ে**—भगवान् कृष्ण की सेवा में लग जाते हैं।

अनुवाद

"उस दशा में 'च' शब्द का अर्थ 'एव' होता है। 'अपि' शब्द को समुच्चय के अर्थ में लिया जा सकता है। इस तरह श्लोक का पाठ होगा 'आत्मारामा एव' अर्थात् 'सभी तरह के जीव भी कृष्ण की पूजा करते हैं।'

तात्पर्य

यहाँ इसका उल्लेख हुआ है कि हर जीव आत्माराम है। अस्थायी रूप से माया के प्रभाव से आच्छादित जीव अपनी इन्द्रियों की सेवा करता है, जिनका प्रतिनिधित्व काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य द्वारा प्रदर्शित होता है। भौतिक अवस्था में सारे जीव इन्द्रियतृप्ति में लगे रहते हैं, किन्तु जब वे विधि-विधानों का पालन करने वाले भक्तों की संगति करते हैं, तो वे शुद्ध हो जाते हैं और उनकी मूल चेतना जाग्रत हो उठती है। तब वे भगवान् कृष्ण की इन्द्रियों को तुष्ट करने का प्रयास करते हैं और उनकी भक्ति करते हैं।

এই জীব—সনকাদি সব মুনি-জন ।
'নির্গ্রন্থ'—মূর্খ, নীচ, স্থাবর-পশু-গণ ॥২০৩॥

এই জীব—সনকাদি সব মুনি-জন ।
'নির্গ্রন্থ'—মূর্খ, নীচ, স্থাবর-পশু-গণ ॥ ২০৩॥

এই জীব—ये जीव; **সনক-আদি সব মুনি-জন**—सनक तथा सनातन आदि जैसे महान् मुनिजन; **নির্গ্রন্থ**—अनपढ़ व्यक्ति तक; **মূর্খ**—मूर्ख व्यक्ति; **নীচ**—नीच; **স্থাবর**—वृक्ष और पौधे; **পশু-গণ**—पशु तथा पक्षी।

अनुवाद

"इन जीवों में चार कुमारों जैसे महापुरुष, निम्न जाति के मूर्खजन, वृक्ष, पौधे, पक्षी तथा पशु भी सम्मिलित हैं।

व्यास-शुक-सनकादिर प्रसिद्ध भजन ।
'निर्ग्रन्थ' स्थावरादिर शुन विवरण ॥२०४॥

व्यास-शुक-सनकादिर प्रसिद्ध भजन ।
'निर्ग्रन्थ' स्थावरादिर शुन विवरण ॥ २०४॥

व्यास—व्यासदेव की; **शुक**—शुकेदव गोस्वामी की; **सनक-आदिर**—सनक आदि चार कुमारों की; **प्रसिद्ध भजन**—प्रेममयी सेवा प्रसिद्ध है; **निर्ग्रन्थ**—मूर्ख, निरक्षर; **स्थावर-आदिर**—अचर जीवों का; **शुन विवरण**—वर्णन सुनो।

अनुवाद

"व्यास, शुक तथा चारों कुमारों की भक्ति पहले से विख्यात रही है। अब मैं बताऊँगा कि किस प्रकार वृक्ष एवं पौधे जैसे अचर जीव भी भगवान् की भक्ति करते हैं।

कृष्ण-कृपादि-हेतु हैते सबार उदय ।
कृष्ण-गुणाकृष्ट हञा ताँहारे भजय ॥२०५॥

कृष्ण-कृपादि-हेतु हैते सबार उदय ।
कृष्ण-गुणाकृष्ट हञा ताँहारे भजय ॥ २०५॥

कृष्ण-कृपा-आदि-हेतु—कृष्ण की कृपा के कारण; **हैते**—से; **सबार उदय**—कोई भी भक्त बन जाता है; **कृष्ण-गुण-आकृष्ट हञा**—कृष्ण के दिव्य गुणों से आकर्षित होकर; **ताँहारे**—उनकी; **भजय**—सेवा करते हैं।

अनुवाद

"हर व्यक्ति कृष्ण की कृपा का पात्र है, जिसमें व्यासदेव, चारों कुमार, शुकदेव गोस्वामी, निम्न योनि के प्राणी, वृक्ष, पौधे तथा पशु सम्मिलित हैं। कृष्ण की कृपा से वे ऊपर उठते हैं और उनकी सेवा में लगते हैं।

तात्पर्य

इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (९.३२) में भी हुई है, जहाँ भगवान् कहते हैं :

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।

"हे पृथापुत्र जो लोग मेरी शरण में आते हैं, वे चाहे निम्नजन्मा—स्त्रियाँ, वैश्य तथा शूद्र क्यों न हों—वे सर्वोपरि गन्तव्य प्राप्त कर सकते हैं।"

हर व्यक्ति कृष्ण का भक्त बनने का अधिकारी है। बस, उसे प्रामाणिक विधि के अनुसार प्रशिक्षित होने की आवश्यकता है। यह तो कृष्ण के अन्तरंग भक्तों का कार्य है कि वे हर एक को कृष्ण-भक्त बनायें। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो फिर कौन करेगा? जो लोग अपने आपको भक्त होने का दावा करते हैं, किन्तु सारे जीवों को कृष्णभावनामृत तक ऊपर उठाने का कार्य नहीं करते, उन्हें *कनिष्ठ अधिकारी* (भक्ति के निम्नतम स्तर पर स्थित व्यक्ति) मानना चाहिए। जब मनुष्य भक्ति के द्वितीय स्तर तक ऊपर उठ जाता है, तो उसका कार्य सारे जगत् में कृष्णभावनामृत का प्रसार करना हो जाता है। जो लोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन में सक्रिय हैं, उन्हें प्रारम्भिक स्तर में ही नहीं बने रहना चाहिए, अपितु भक्ति के द्वितीय स्तर तक—उपदेशकों (प्रचारकों) के स्तर तक उन्नति करनी चाहिए। भक्ति इतनी मोहक होती है कि उत्तम अधिकारी भी प्रचार करने के लिए द्वितीय स्तर में उतरकर सारे जगत् के कल्याण हेतु भगवान् की सेवा करते हैं।

धन्येयमद्य धरणी तृण-वीरुधस्त्वৎ
पाद-স্পৃশো द्रুম-লতাঃ করজাভিমৃষ্টাঃ ।
নদ্যোঽদ্রয়ঃ খগ-মৃগাঃ সদয়াবলোকৈর্
গোপ্যোঽন্তরেণ ভুজয়োরপি যৎস্পৃহা শ্রীঃ ॥২০৬॥

धन्येयमद्य धरणी तृण-वीरुधस्त्वत्
पाद-स्पृशो द्रुम-लताः करजाभिमृष्टाः ।
नद्योऽद्रयः खग-मृगाः सदयावलोकैर्
गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥ २०६ ॥

धन्या—धन्य; **इयम्**—यह; **अद्य**—आज; **धरणी**—भूमि; **तृण-वीरुधः**—घास तथा औषधियाँ; **त्वत्**—आपके; **पाद-स्पृशः**—चरणकमलों के स्पर्श से; **द्रुम-लताः**—वृक्ष तथा लताएँ; **करज-अभिमृष्टाः**—आपके पदनखों से स्पर्श प्राप्त; **नद्यः**—नदियाँ; **अद्रयः**—पर्वत; **खग-मृगाः**—पक्षी तथा पशु; **सदय-अवलोकैः**—आपकी दयापूर्ण दृष्टि के कारण; **गोप्यः**—व्रज की गोपियाँ; **अन्तरेण**—भीतर; **भुजयोः**—आपकी भुजाओं के; **अपि**—भी; **यत्**—जिसके लिए; **स्पृहा**—इच्छुक; **श्रीः**—लक्ष्मीदेवी।

अनुवाद

"'वृन्दावन की यह भूमि (व्रजभूमि) आज धन्य है, क्योंकि आपके चरणकमलों ने इसकी मिट्टी तथा घास का स्पर्श किया है। आपकी अंगुलियों के नखों ने वृक्षों तथा लताओं का स्पर्श किया है तथा आपकी कृपामयी आँखों ने नदियों, पर्वतों, पक्षियों तथा पशुओं पर दृष्टि डाली है। आपके भुजाओं ने गोपियों का आलिंगन किया है और लक्ष्मी तक यही चाहती हैं। अब ये सभी धन्य हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.१५.८) का है, जिसे भगवान् कृष्ण ने श्री बलराम से कहा है।

गा गोपकैरनु-वनं नयतोरुदार-
वेणु-स्वनैः कल-पदैस्तनु-भृत्सु सख्यः ।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां
निर्योग-पाश-कृत-लक्षणयोर्विचित्रम् ॥ २०७॥

गा गोपकैरनु-वनं नयतोरुदार-
वेणु-स्वनैः कल-पदैस्तनु-भृत्सु सख्यः ।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां
निर्योग-पाश-कृत-लक्षणयोर्विचित्रम् ॥ २०७॥

गाः—गायें; **गोपकैः**—ग्वालों के साथ; **अनु-वनम्**—प्रत्येक वन में; **नयतोः**—ले जाकर; **उदार**—उदार; **वेणु-स्वनैः**—वेणु की ध्वनि द्वारा; **कल-पदैः**—मधुर धुनों द्वारा; **तनु-भृत्सु**—जीवों के बीच; **सख्यः**—हे सखियों; **अस्पन्दनम्**—गति का अभाव; **गति-मताम्**—चर जीवों का; **पुलकः**—आनन्दित होना; **तरूणाम्**—वृक्षों का; **निर्योग-पाश**—गायों के पैर

बाँधने की रस्सियाँ; **कृत-लक्षणयोः**—उन दोनों (कृष्ण और बलराम) के, जो इन लक्षणों से युक्त हैं; **विचित्रम्**—अद्भुत।

अनुवाद

"'हे सखी, कृष्ण तथा बलराम दोनों ही अपनी गौवों के आगे आगे अपने ग्वालमित्रों के साथ जंगल से होकर जा रहे हैं। उन दोनों के पास रस्सियाँ हैं, जिनसे गौवें दुहते समय वे उनके पिछले पाँव बाँध देते हैं। जब वे अपनी बाँसुरियाँ बजाते हैं, तो सारे चर प्राणी चकित रह जाते हैं और अचर प्राणी उनके मधुर संगीत से अतीव हर्ष का अनुभव करते हैं। ये सारी बातें निश्चय ही अत्यन्त आश्चर्यजनक हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (१०.२१.१९) का है। जब गोपियों ने कृष्ण को बलदेव के साथ जंगल में विचरण करते और अद्भुत ढंग से अपनी बाँसुरियों को बजाते देखा, तो वे सभी कृष्ण के प्रति अत्यधिक आकृष्ट हो गईं। इस तरह वे भगवान् के कार्यों की प्रशंसा करने लगीं कि वे किस तरह सभी पौधों, पक्षियों, पहाड़ियों तथा जल अर्थात् प्रत्येक वस्तु को प्रोत्साहित कर रहे थे।

वन-लतास्तरव आत्मनि विष्णुं
व्यञ्जयन्त्य इव पुष्प-फलाढ्याः ।
प्रणत-भार-विटपा मधु-धाराः
प्रेम-हृष्ट-तनवो ववृषुः स्म ॥ २०८ ॥

वन-लताः—औषधियाँ और पौधे; **तरवः**—वृक्ष; **आत्मनि**—परमात्मा में; **विष्णुम्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **व्यञ्जयन्त्यः**—प्रकट करते हुए; **इव**—जैसे; **पुष्प-फल-आढ्याः**—फलों तथा फूलों से लदे; **प्रणत-भार**—भार से झुके हुए; **विटपाः**—वृक्ष; **मधु-धाराः**—शहद की धाराएँ; **प्रेम-हृष्ट**—भगवत्प्रेम से प्रेरित; **तनवः**—जिनके शरीर; **ववृषुः**—निरन्तर बरसे; **स्म**—निश्चित रूप से।

अनुवाद

"'सारे पौधे, लताएँ तथा वृक्ष कृष्ण-प्रेम के कारण फूल-फलों से लदे थे। इससे वे झुके जा रहे थे। वे इस प्रकार के अगाध कृष्ण-प्रेम से इतने प्रेरित थे कि वे निरन्तर मधु की वर्षा कर रहे थे। गोपियों ने वृन्दावन के सारे जंगलों को इसी प्रकार देखे।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.३५.९) का है। व्याख्या के लिए मध्य-लीला (८.२७६) देखें।

किरात-हूणान्ध्र-पुलिन्द-पुल्कशा
आभीर-शुम्भा यवनाः खसादयः ।
येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥२०९॥

किरात-हूणान्ध्र-पुलिन्द-पुल्कशा
आभीर-शुम्भा यवनाः खसादयः ।
येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥ २०९ ॥

किरात—किरात नामक आदीवासी; **हूण**—हूण; **आन्ध्र**—आन्ध्र; **पुलिन्द**—पुलिन्द; **पुक्कशाः**—पुक्कश; **आभीर**—आभीर; **शुम्भाः**—शुम्भ; **यवनाः**—जो लोग वैदिक नियम पालन नहीं करते और गाय का मांस खाते हैं; **खश-आदयः**—खश आदि; **ये**—जो; **अन्ये**—ऐसे ही अन्य; **च**—तथा; **पापाः**—पापी लोग; **यत्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के; **उपाश्रय**—भक्तों की; **आश्रयाः**—शरण लेकर; **शुध्यन्ति**—शुद्ध हो जाते हैं; **तस्मै**—उन भगवान् विष्णु को जिनके कारण वे शुद्ध हो जाते हैं; **प्रभविष्णवे**—सर्वशक्तिमान भगवान् विष्णु को; **नमः**—सादर प्रणाम।

अनुवाद

"'किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कश, आभीर, शुम्भ, यवन तथा खश जातियाँ तथा वे भी जो पापकर्म करने के अभ्यस्त हैं, भगवान् के भक्तों की शरण ग्रहण करने से शुद्ध हो सकते हैं, क्योंकि भगवान् परम शक्तिमान हैं। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।'

আগে 'তের' অর্থ করিলুঁ, আর 'ছয়' এই ।
ঊনবিংশতি অর্থ হইল মিলি' এই দুই ॥ ২১০ ॥

আগে 'তের' অর্থ করিলুঁ, আর 'ছয়' এই ।
ঊনবিংশতি অর্থ হইল মিলি' এই দুই ॥ ২১০ ॥

আগে—পহলে; **তের**—তেরহ; **অর্থ**—অর্থ; **করিলুঁ**—মৈंने किये; **আর**—दूसरे; **ছয়**—छह; **এই**—यह; **ঊনবিংশতি**—कुल उन्नीस; **অর্থ**—अर्थ; **হইল**—हो गये; **মিলি'**—मिलकर; **এই দুই**—ये दोनों।

অনুবাদ

"मैंने पहले ही (आत्माराम श्लोक के) तेरह अर्थ बतला दिये हैं। अब ये छह और हैं। इन्हें मिलाकर कुल उन्नीस हो जाते हैं।

তাৎপর্য

आत्माराम शब्द के निम्नलिखित अर्थों पर आधारित छः भिन्न-भिन्न अर्थ इस प्रकार हैं : (१) ज्ञानी (श्लोक १६५), (२) जो विभिन्न प्रकार के प्रयत्नों में लगे हैं (श्लोक १६८), (३) जो धैर्यवान तथा गम्भीर हैं (श्लोक १७४), (४) जो बुद्धिमान तथा विद्वान हैं (श्लोक १८७), (५) जो बुद्धिमान तो हैं, किन्तु निरक्षर तथा मूर्ख हैं (श्लोक १८७) तथा (६) वे जो कृष्ण के प्रति अपनी नित्य दासता से अवगत हैं (श्लोक २०१)।

এই ঊনিশ অর্থ করিলু, আগে শুন আর ।
'আত্ম'-শব্দে 'দেহ' কহে,—চারি অর্থ তার ॥ ২১১ ॥

এই ঊনিশ অর্থ করিলু, আগে শুন আর ।
'আত্ম'-শব্দে 'দেহ' কহে,—চারি অর্থ তার ॥ ২১১ ॥

এই—ये; **ঊনিশ**—उन्नीस; **অর্থ**—अर्थ; **করিলু**—मैंने किये; **আগে**—आगे; **শুন**—सुनो; **আর**—और; **আত্ম-শব্দে**—*आत्मा* शब्द द्वारा; **দেহ**—शरीर; **কহে**—माना जाता है; **চারি অর্থ**—चार अर्थ; **তার**—उसके।

অনুবাদ

"मैं अभी तक उन्नीस भिन्न-भिन्न अर्थ कर चुका हूँ। अब अन्य अर्थ सुनो। 'आत्म' शब्द शरीर का भी द्योतक है और इसे चार प्रकार से ग्रहण किया जा सकता है।

तात्पर्य

देह शब्द के अर्थों के चार प्रकार ये हैं (१) *औपाधिक ब्रह्मदेह*—उपाधियों समेत ब्रह्म के रूप में माना जाने वाला भौतिक शरीर (श्लोक २१२), (२) *कर्मनिष्ठ याज्ञिकेर कर्मदेह*—वैदिक आदेशों के अनुष्ठानों में संलग्न शरीर (श्लोक २१४), (३) *तपोदेह*—तपस्या में संलग्न शरीर (श्लोक २१६) तथा (४) *सर्वकामदेह*—सभी प्रकार की भौतिक इच्छाओं की तुष्टि में संलग्न शरीर (श्लोक २१८)।

देहारामी देहे भजे 'देहोपाधि ब्रह्म' ।
सत्सङ्गे सेह करे कृष्णेर भजन ॥२१२॥

देहारामी देहे भजे 'देहोपाधि ब्रह्म' ।
सत्सङ्गे सेह करे कृष्णेर भजन ॥ २१२॥

देहारामी—जिन लोगों ने शरीर को आत्मा मान लिया है तथा केवल इन्द्रियतृप्ति में व्यस्त हैं; **देहे**—देह में; **भजे**—उपासना करते हैं; **देह-उपाधि ब्रह्म**—देह रूपी उपाधि से युक्त ब्रह्मन्; **सत्-सङ्गे**—भक्तों के संग में; **सेह**—ऐसा व्यक्ति; **करे**—करता है; **कृष्णेर भजन**—भगवान् कृष्ण की सेवा।

अनुवाद

"देहात्म-बुद्धि वाला व्यक्ति अपने ही शरीर को ब्रह्म समझकर पूजता है, किन्तु जब वह भक्त के सम्पर्क में आता है, तो वह इस गलत खयाल को त्याग देता है और कृष्ण की भक्ति में लग जाता है।

उदरमुपासते य ऋषि-वर्त्मसु कूर्प-दृशः
परिसर-पद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ।
तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं
पुनरिह यत्समेत्य न पतन्ति कृतान्त-मुखे ॥२१३॥

उदरमुपासते य ऋषि-वर्त्मसु कूर्प-दृशः
परिसर-पद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ।
तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं
पुनरिह यत्समेत्य न पतन्ति कृतान्त-मुखे ॥ २१३॥

उदरम्—उदर की; **उपासते**—उपासना करते हैं; **ये**—जो; **ऋषि-वर्त्मसु**—महान् ऋषियों द्वारा निर्देशित पथ पर; **कूर्प-दृशः**—जिसकी दृष्टि देहात्म बुद्धि के स्तर पर स्थित है; **परिसर-पद्धतिम्**—जहाँ से नाड़ियाँ निकलती हैं; **हृदयम्**—हृदय; **आरुणयः**—आरूण ऋषि आदि साधु; **दहरम्**—हृदय के भीतर आकाश, हृदय में स्थित परमात्मा का सूक्ष्म सिद्धान्त; **ततः**—उससे; **उदगात्**—ऊपर चले गये; **अनन्त**—हे अनन्त; **तव**—आपका; **धाम**—धाम; **शिरः**—सिर; **परमम्**—परम; **पुनः**—फिर; **इह**—इस भौतिक जगत् में; **ये**—जिन्हें; **समेत्य**—प्राप्त करके; **न**—नहीं; **पतन्ति**—गिरते; **कृत-अन्त-मुखे**—जन्म और मृत्यु के चक्र में।

अनुवाद

"'जो लोग महान् सन्त योगियों के मार्ग का अनुसरण करते हैं, वे यौगिक आसन करते हैं और उदर से पूजा करना प्रारम्भ करते हैं, जहाँ ब्रह्म का वास बताया जाता है। ऐसे लोग शार्कराक्ष कहलाते हैं, जिसका अर्थ यह होता है कि वे स्थूल देहात्म-बुद्धि में स्थित हैं। कुछ आरुण ऋषि के भी अनुयायी होते हैं। वे उनके मार्ग का अनुसरण करते हुए नाड़ियों के कार्य का अवलोकन करते हैं। इस तरह वे क्रमशः हृदय तक पहुँचते हैं, जहाँ सूक्ष्म ब्रह्म या परमात्मा स्थित हैं। तब वे उनकी उपासना करते हैं। हे अनन्त! इनसे अच्छे तो वे योगीजन हैं, जो अपने शिरोभाग से आपकी पूजा करते हैं। उदर से चल करके हृदय होते हुए वे सिर के ऊपरी भाग तक पहुँचते हैं, जहाँ से वे ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचते हैं, जो खोपड़ी की चोटी पर स्थित छिद्र है। इस तरह ये योगी सिद्धि प्राप्त करते हैं और जन्म-मृत्यु के चक्र में फिर से नहीं पड़ते।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (१०.८७.१८) का है।

দেহারামী কর্ম-নিষ্ঠ—যাজ্ঞিকাদি জন ।
সত্সঙ্গে 'কর্ম' ত্যজি' করয় ভজন ॥২১৪॥

দেহারামী কর্ম-নিষ্ঠ—য়াজ্ঞিকাদি জন ।
সত্সঙ্গে 'কর্ম' ত্যজি' করয় ভজন ॥ ২১৪॥

দেহারামী—जो देहात्म बुद्धि में हैं; **কর্ম-নিষ্ঠ**—सकाम कर्मों में आसक्त; **য়াজ্ঞিক-আদি জন**—जो लोग जीवन की उच्च सुविधाओं के लिए यज्ञ आदि करते हैं; **সত্-সঙ্গে**—

भक्तों के संग में; **कर्म त्यजि'**—ऐसे सकाम कर्म त्यागकर; **करय भजन**—भगवान् की सेवा में लग जाते हैं।

अनुवाद

"जो लोग देहात्म-बुद्धि में स्थित रहते हैं, वे मुख्यतः सकाम कर्म में संलग्न होते हैं। जो लोग यज्ञ तथा अनुष्ठान करते हैं, वे भी इसी श्रेणी में आते हैं। किन्तु किसी तरह जब वे शुद्ध भक्त के सम्पर्क में आते हैं, तब वे अपना सकाम कर्म त्यागकर भगवान् की सेवा में पूरी तरह लग जाते हैं।

कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूम-धूम्रात्मनां भवान् ।
आपाययति गोविन्द-पाद-पद्मासवं मधु ॥ २१५ ॥

कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूम-धूम्रात्मनां भवान् ।
आपाययति गोविन्द-पाद-पद्मासवं मधु ॥ २१५ ॥

कर्मणि—सकाम कर्मों में; **अस्मिन्**—इसमें; **अनाश्वासे**—यद्यपि परिणाम के बारे में विश्वस्त नहीं हैं; **धूम-धूम्र-आत्मनाम्**—जिनके शरीर धूँए के कारण काले हो रहे हैं; **भवान्**—आप; **आपाययति**—पीने का अवसर देते हैं; **गोविन्द-पाद-पद्म-आसवम्**—भगवान् गोविन्द के चरणकमलों से बहता अमृत; **मधु**—मधुर।

अनुवाद

"'हमने अभी-अभी यह सकाम कर्म—अग्निहोम—शुरू किया है, किन्तु अपने कर्म में अनेक त्रुटियों के कारण हम इसके फल के विषय में निश्चित नहीं हैं। धुएँ से हमारे शरीर काले पड़ गये हैं, किन्तु हम भगवान् गोविन्द के चरणकमलों के उस अमृत से सचमुच प्रसन्न हैं, जिसे आप वितरित कर रहे हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१.१८.१२) का है, जो सूत गोस्वामी को नैमिषारण्य में मुनियों की सभा में कहा गया था। इस सभा में ऋषियों की अध्यक्षता शौनक ऋषि कर रहे थे और सूत गोस्वामी उस सभा में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के यशस्वी कार्यों का वर्णन कर रहे थे। उस समय वहाँ पर उपस्थित

सारे ऋषियों ने अनुष्ठान बन्द कर दिये थे, क्योंकि उन्हें इन अनुष्ठानों के निश्चित फल का कोई आश्वासन प्राप्त नहीं था। सभी यज्ञ करने वाले अग्नि से निकलने वाले प्रचुर धुएँ की कालिख से ढक गये थे।

'तपस्वी' प्रभृति यत देहारामी हय ।
साधु-सङ्गे तप छाड़ि' श्री-कृष्ण भजय ॥२१६॥

'तपस्वी' प्रभृति यत देहारामी हय ।
साधु-सङ्गे तप छाड़ि' श्री-कृष्ण भजय ॥ २१६ ॥

तपस्वी—जो लोग कठोर तपस्याएँ करते हैं; **प्रभृति**—इस प्रकार के; **यत**—सभी; **देहारामी हय**—देहात्मबुद्धि की श्रेणी में; **साधु-सङ्गे**—भक्तों के संग में; **तप छाड़ि'**—ऐसी तपस्याएँ छोड़कर; **श्री-कृष्ण भजय**—भगवान् कृष्ण की सेवा में लग जाते।

अनुवाद

"उच्च लोक जाने के लिए कठोर तपस्या करने वाले तपस्वी भी इसी श्रेणी में आते हैं। जब ऐसे व्यक्ति किसी भक्त के सम्पर्क में आते हैं, तो वे सारे ऐसे अभ्यास को त्यागकर भगवान् कृष्ण की सेवा में लग जाते हैं।

यत्पाद-सेवाभिरुचिस्तपस्विनाम्
अशेष-जन्मोपचितं मलं धियः ।
सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती
यथा पदाङ्गुष्ठ-विनिःसृता सरित् ॥२१७॥

यत्पाद-सेवाभिरुचिस्तपस्विनाम्
अशेष-जन्मोपचितं मलं धियः ।
सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती
यथा पदाङ्गुष्ठ-विनिःसृता सरित् ॥ २१७ ॥

यत्-पाद-सेवा-अभिरुचिः—भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की सेवा की रुचि; **तपस्विनाम्**—कठोर तपस्याओं में लगे लोगों के; **अशेष**—असीमित; **जन्म-उपचितम्**—जन्म जन्मांतर से संचित; **मलम्**—मल; **धियः**—बुद्धि के; **सद्यः**—तुरन्त; **क्षिणोति**—नष्ट कर देती है; **अनु-अहम्**—प्रतिदिन; **एधती**—बढ़ा देती है; **सती**—सत्त्वगुण में स्थित; **यथा**—जैसे; **पद-अङ्गुष्ठ-विनिःसृता**—भगवान् के चरणों से निकलने वाली; **सरित्**—गंगा नदी।

अनुवाद

"'प्रेमाभक्ति का आस्वाद गंगा नदी के जल के समान है, जो भगवान् कृष्ण के पैरों से निकलती है। जो लोग तपस्या करते हैं, उनके द्वारा अनेक जन्मों के संचित पापकर्मों का फल इस आस्वाद से नित्य प्रति घटता जाता है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (४.२१.३१) से उद्धृत है।

देहारामी, सर्व-काम——सब आत्मारामा ।
कृष्ण-कृपाय कृष्ण भजे छाड़ि' सब काम ॥२१८॥

देहारामी, सर्व-काम——सब आत्माराम ।
कृष्ण-कृपाय कृष्ण भजे छाड़ि' सब काम ॥ २१८ ॥

देहारामी—देहात्म-बुद्धि में स्थित लोग; **सर्व-काम**—सभी भौतिक इच्छाओं से पूर्ण; **सब**—सब; **आत्माराम**—आत्मसन्तुष्टि का अनुभव करते हुए; **कृष्ण-कृपाय**—कृष्ण की कृपा द्वारा; **कृष्ण भजे**—भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा में लग जाते हैं; **छाड़ि' सब काम**—सभी प्रकार की भौतिक इच्छाएँ त्यागकर।

अनुवाद

"जब तक मनुष्य देहात्म-बुद्धि के अधीन श्रम करता है, तब तक उसे अनेकानेक भौतिक इच्छाओं की पूर्ति करनी पड़ती है। ऐसा व्यक्ति आत्माराम कहलाता है। जब ऐसे आत्माराम पर कृष्ण की कृपा होती है, तो वह अपनी तथाकथित आत्मतुष्टि त्याग देता है और भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लग जाता है।

स्थानाभिलाषी तपसि स्थितोऽहं
त्वां प्राप्तवान्देव-मुनीन्द्र-गुह्यम् ।
काचं विचिन्वन्नपि दिव्य-रत्नं
स्वामिन्कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे ॥२१९॥

स्थानाभिलाषी तपसि स्थितोऽहं
त्वां प्राप्तवान्देव-मुनीन्द्र-गुह्यम् ।

काचं विचिन्वन्नपि दिव्य-रत्नं
स्वामिन्कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे ॥ २१९ ॥

स्थान-अभिलाषी—भौतिक संसार में उच्च अवस्था प्राप्त करने की इच्छा से; **तपसि**—कठोर तपस्याओं में; **स्थितः**—स्थित; **अहम्**—मैंने; **त्वाम्**—आपको; **प्राप्तवान्**—प्राप्त कर लिया; **देव-मुनि-इन्द्र-गुह्यम्**—महान् देवताओं, साधुओं और राजाओं के लिए भी प्राप्त करने कठिन; **काचम्**—काँच का एक टुकड़ा; **विचिन्वन्**—ढूँढते हुए; **अपि**—भी; **दिव्य-रत्नम्**—एक दिव्य रत्न; **स्वामिन्**—हे मेरे प्रभु; **कृत-अर्थः अस्मि**—मैं पूर्णतया सन्तुष्ट हो गया; **वरम्**—कोई वरदान; **न याचे**—नहीं माँगता।

अनुवाद

"[पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से आशिर्वाद प्राप्त करते समय ध्रुव महाराज ने कहा :] 'हे प्रभु, चूँकि मैं ऐश्वर्य से युक्त भौतिक पद की खोज में था, इसलिए मैं कठोर तपस्या कर रहा था। अब मैंने आपको पा लिये हैं, जो देवताओं, सन्तों तथा राजाओं को भी कठिनाई से प्राप्त हो पाते हैं। मैं तो काँच के टुकड़े की खोज कर रहा था, किन्तु बदले में मुझे अमूल्य रत्न मिल गया है। अतः मैं इतना सन्तुष्ट हूँ कि अब मैं आपसे कोई भी वर नहीं माँगना चाहता।'

तात्पर्य

यह श्लोक *हरिभक्ति सुधोदय* (७.२८) से है।

एइ चारि अर्थ सह हइल 'तेइश' अर्थ ।
आर तिन अर्थ शुन परम समर्थ ॥ २२० ॥
एइ चारि अर्थ सह हइल 'तेइश' अर्थ ।
आर तिन अर्थ शुन परम समर्थ ॥ २२० ॥

एइ—इन; **चारि**—चार; **अर्थ**—अर्थों के; **सह**—साथ; **हइल**—हो गये; **तेईश अर्थ**—तेईस भिन्न प्रकार के अर्थ; **आर तिन अर्थ**—अन्य तीन अर्थ; **शुन**—सुनो; **परम समर्थ**—अत्यन्त दृढ़।

अनुवाद

"पहले बताए गये श्लोक के अन्य उन्नीस अर्थों के साथ यह 'आत्माराम' शब्द चार और अर्थ देता है, जब इसका अर्थ 'देहात्मबुद्धि

के अधीन श्रम करता हुआ' लिया जाता है। इससे कुल मिलाकर तेईस अर्थ हो जाते हैं। अब अन्य तीन अर्थ सुनो जो अत्यन्त उपयुक्त हैं।

तात्पर्य

ये तीन और अर्थ समझे जाते हैं जब (१) *च* का अर्थ "कालान्तर में" लिया जाता है, (२) *च* का अर्थ *एव* लिया जाता है तथा *अपि* का अर्थ "निन्दा" लिया जाता है तथा (३) *निर्ग्रन्थ* का अर्थ "जो अत्यन्त निर्धन है" लिया जाता है।

च-शब्दे 'समुच्चये', आर अर्थ कय ।
'आत्मारामाश्च मुनयश्च' कृष्णेरे भजय ॥२२१॥

च-शब्दे 'समुच्चये', आर अर्थ कय ।
'आत्मारामाश्च मुनयश्च' कृष्णेरे भजय ॥२२१॥

च-शब्दे—*च* शब्द द्वारा; **समुच्चये**—समुच्चय में; **आर**—दूसरा; **अर्थ**—अर्थ; **कय**—होता है; **आत्मारामाः च मुनयः च**—सभी आत्माराम और मुनि; **कृष्णेरे भजय**—कृष्ण की उपासना करते हैं।

अनुवाद

"जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, 'च' का प्रयोग 'समुच्चय' के अर्थ में भी किया जा सकता है। इस अर्थ के अनुसार सारे आत्माराम तथा मुनि कृष्ण की सेवा में लगे रहते हैं। 'समुच्चय' के अतिरिक्त भी 'च' शब्द का एक अन्य अर्थ होता है।

'निर्ग्रन्थाः' हञा इहाँ 'अपि'—निर्धारणे ।
'रामश्च कृष्णश्च' यथा विहरये वने ॥२२२॥

'निर्ग्रन्थाः' हञा इहाँ 'अपि'—निर्धारणे ।
'रामश्च कृष्णश्च' यथा विहरये वने ॥२२२॥

निर्ग्रन्थाः हञा—मुक्त साधु होकर; **इहाँ**—यहाँ; **अपि**—*अपि* शब्द; **निर्धारणे**—निश्चितता के अर्थ में; **रामः च कृष्णः च**—राम तथा कृष्ण दोनों; **यथा**—जैसे; **विहरये**—विहार करते हैं; **वने**—वन में।

अनुवाद

"'निर्ग्रन्थाः' शब्द विशेषण की तरह प्रयुक्त हो सकता है और 'अपि' शब्द निश्चयात्मकता के लिए। उदाहरणार्थ रामश्च कृष्णश्च का अर्थ यह है कि राम तथा कृष्ण दोनों जंगल में विचरण करना पसन्द करते हैं।

तात्पर्य

क्योंकि यह कहा गया है कि राम और कृष्ण दोनों वन में भ्रमण का आनन्द उठा रहे हैं, इससे यही समझा जाता है कि दोनों वन में भ्रमण का आस्वादन कर रहे हैं।

च-शब्दे 'अन्वाचये' अर्थ कहे आर ।
'बटो, भिक्षामट, गां चानय' यैछे प्रकार ॥ २२३ ॥

च-शब्दे 'अन्वाचये' अर्थ कहे आर ।
'बटो, भिक्षामट, गां चानय' यैछे प्रकार ॥ २२३ ॥

च-शब्दे—च शब्द द्वारा; **अन्वाचये**—गौण क्रियाओं को प्रस्तुत करने में; **अर्थ**—अर्थ; **कहे**—कहता है; **आर**—दूसरा; **बटो**—हे ब्रह्मचारी; **भिक्षाम् अट**—कुछ भिक्षा लाओ; **गाम् च आनय**—तथा साथ ही गायों को लाओ; **यैछे प्रकार**—इस प्रकार।

अनुवाद

"'च' शब्द का अर्थ और भी है, जिसका अभिप्राय है एक ही समय एक गौण कार्य का सम्पन्न होना। च के इस अर्थ को समझना अन्वाचय कहलाता है। एक उदाहरण है, 'हे ब्रह्मचारी, भिक्षा माँगने जाओ और साथ ही गौवों को ले आओ।'

कृष्ण-मनने मुनि कृष्णे सर्वदा भजय ।
'आत्मारामा अपि' भजे,—गौण अर्थ कय ॥ २२४ ॥

कृष्ण-मनने मुनि कृष्णे सर्वदा भजय ।
'आत्मारामा अपि' भजे,—गौण अर्थ कय ॥ २२४ ॥

कृष्ण-मनने—कृष्ण का मनन करने में; **मुनि**—साधु जन; **कृष्णे**—भगवान् कृष्ण के प्रति; **सर्वदा**—सदैव; **भजय**—प्रेम भक्ति करते हैं; **आत्मारामाः अपि**—तथा आत्माराम भी; **भजे**—स्वयं को प्रेममयी सेवा में लगाते हैं; **गौण अर्थ कय**—यह भी दूसरा गौण अर्थ है।

अनुवाद

"वे सन्त पुरुष, जो सदैव कृष्ण का ध्यान करते हैं, भगवद्भक्ति में लगे रहते हैं। आत्माराम भी भगवान् की सेवा में व्यस्त रहते हैं। यही गौण अर्थ है।

तात्पर्य

च शब्द का *अन्वाचये* अर्थ सूचित करता है कि जब *च* दो शब्दों के बीच में आता है, तो इनमें से एक अधिक महत्त्वपूर्ण होता है और दूसरे को गौण माना जाता है। उदाहरणार्थ, "हे ब्रह्मचारी, बाहर जाकर भिक्षा माँगो और साथ ही गौवें लेते आओ।" इसमें भिक्षा माँगना प्रमुख है, जबकि गौवें लाना गौण है। इसी तरह जो व्यक्ति सदैव कृष्ण का ध्यान करता है, वह मुख्य रूप से उनकी सेवा में लगा रहने वाला कृष्ण-भक्त है। अन्य आत्माराम भक्ति में गौण हैं।

'च' एवार्थे—'मुनयः एव' कृष्णेरे भजय ।
''आत्मारामा अपि''—'अपि' 'गर्हा'-अर्थ कय ॥२२५॥

'च' एवार्थे—'मुनयः एव' कृष्णेरे भजय ।
"आत्मारामा अपि"—'अपि' 'गर्हा'-अर्थ कय ॥ २२५॥

च—*च* शब्द; **एव-अर्थे**—*एव* के अर्थ में; **मुनयः एव**—साधु ही; **कृष्णेरे भजय**—भगवान् कृष्ण की भक्ति में लगते हैं; **आत्मारामाः अपि**—इस सन्धि में भी; **अपि**—*अपि* शब्द; **गर्हा-अर्थ कय**—निन्दा के भाव में।

अनुवाद

"'च' शब्द इस निश्चयात्मकता का भी सूचक है कि सन्त पुरुष ही कृष्ण-भक्ति करने में व्यस्त रहते हैं। 'आत्माराम अपि' सन्धि में 'अपि' का प्रयोग दोषारोपण (निन्दा) करने में होता है।

'निर्ग्रन्थ हञा'—एइ दुँहार 'विशेषण' ।
आर अर्थ शुन, यैछे साधुर सङ्गम ॥२२६॥

'निर्ग्रन्थ हञा'—एइ दुँहार 'विशेषण' ।
आर अर्थ शुन, यैछे साधुर सङ्गम ॥ २२६॥

निर्ग्रन्थ हञा—*निर्ग्रन्थ* होकर; **एइ**—यह; **दुँहार**—दोनों का; **विशेषण**—विशेषण; **आर अर्थ**—अन्य अर्थ; **शुन**—कृपया सुनो; **ग्रैछे**—जिसमें; **साधुर सङ्गम**—साधुओं का संग होता है।

अनुवाद

"'निर्ग्रन्थ' शब्द मुनि तथा आत्माराम दोनों की विशेषता बताने वाला विशेषण है। इसका एक अन्य अर्थ भी है, जो तुम मुझसे सुन सकते हो। यह भक्त की संगति का सूचक है। अब मैं बतलाऊँगा कि किस तरह भक्त की संगति से निर्ग्रन्थ भी भक्त बन सकता है।

निर्ग्रन्थ-शब्दे कहे तबे 'व्याध', 'निर्धन' ।
साधु-सङ्गे सेह करे श्री-कृष्ण-भजन ॥ २२७॥

निर्ग्रन्थ-शब्दे कहे तबे 'व्याध', 'निर्धन' ।
साधु-सङ्गे सेह करे श्री-कृष्ण-भजन ॥ २२७॥

निर्ग्रन्थ-शब्दे—*निर्ग्रन्थ* शब्द द्वारा; **कहे**—कहते हैं; **तबे**—इसलिए; **व्याध**—एक शिकारी; **निर्धन**—गरीब; **साधु-सङ्गे**—एक साधु के संग द्वारा; **सेह**—वह भी; **करे**—करता है; **श्री-कृष्ण-भजन**—भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा में।

अनुवाद

"'निर्ग्रन्थ' शब्द जो 'अपि' के साथ मिलकर निश्चयात्मकता का सूचक है, ऐसे व्यक्ति को बताता है, जो पेशे से या तो शिकारी हो या अत्यन्त निर्धन हो। तो भी जब ऐसा व्यक्ति नारद जैसे महान् सन्त की संगति करता है, तो वह कृष्ण-भक्ति में संलग्न हो जाता है।

'कृष्णारामाश्च' एव—हय कृष्ण-मनन ।
व्याध हञा हय पूज्य भागवतोत्तम ॥ २२८॥

'कृष्णारामाश्च' एव—हय कृष्ण-मनन ।
व्याध हञा हय पूज्य भागवतोत्तम ॥ २२८॥

कृष्ण-आरामाः च—जो कृष्ण में आनन्द लेता है; **एव**—निश्चित रूप से; **हय**—होता है; **कृष्ण-मनन**—कृष्ण का ध्यान; **व्याध हञा**—एक शिकारी होकर; **हय**—हो जाता है; **पूज्य**—पूजनीय; **भागवत-उत्तम**—भक्तों में श्रेष्ठ।

अनुवाद

"'कृष्णारामाश्च' शब्द उसका सूचक है, जो कृष्ण के चिन्तन में आनन्द पाता है। भले ही ऐसा व्यक्ति शिकारी क्यों न हो, फिर भी वह पूजनीय है और भक्तों में श्रेष्ठ है।

एक भक्त-व्याधेर कथा शुन सावधाने ।
याहा हैते हय सज्जङ्ग-महिमार ज्ञाने ॥२२९॥

एक भक्त-व्याधेर कथा शुन सावधाने ।
याहा हैते हय सत्सङ्ग-महिमार ज्ञाने ॥ २२९ ॥

एक भक्त-व्याधेर—एक भक्त जो एक शिकारी था उसकी; **कथा**—कथा; **शुन**—कृपया सुनो; **सावधाने**—सावधानीपूर्वक; **याहा हैते**—जिससे; **हय**—हो जाता है; **सत्-सङ्ग-महिमार ज्ञाने**—एक महान् भक्त के संग की महानता का ज्ञान।

अनुवाद

"अब मैं एक कथा सुनाऊँगा कि एक शिकारी किस तरह नारद मुनि जैसे महापुरुष की संगति से महान् भक्त बना। इस कथा से शुद्ध भक्त की संगति की महानता को समझा जा सकता है।

एक दिन श्री-नारद देखि' नारायण ।
त्रिवेणी-स्नाने प्रयाग करिला गमन ॥२३०॥

एक दिन श्री-नारद देखि' नारायण ।
त्रिवेणी-स्नाने प्रयाग करिला गमन ॥ २३० ॥

एक दिन—एक दिन; **श्री-नारद**—महान् सन्त नारद मुनि; **देखि' नारायण**—भगवान् नारायण के दर्शन के बाद; **त्रि-वेणी-स्नाने**—गंगा, यमुना और सरस्वती नदियों के संगम स्थान पर स्नान करने के लिए; **प्रयाग**—प्रयाग में; **करिला गमन**—गये।

अनुवाद

"एक बार महान् सन्त नारद मुनि भगवान् नारायण से वैकुण्ठ में भेंट करने के बाद गंगा, यमुना तथा सरस्वती—इन तीन नदियों के संगम में स्नान करने प्रयाग गये।

तात्पर्य

महान् सन्त नारद मुनि इतने मुक्त हैं कि वे नारायण का दर्शन करने वैकुण्ठ जा सकते हैं और तुरन्त ही भौतिक जगत् में इस लोक में आकर तीन नदियों के संगम पर स्नान करने प्रयाग जा सकते हैं। *त्रिवेणी* तीन नदियों के संगम का सूचक है। अब भी इस संगम में लाखों लोग स्नान करने के लिए जनवरी माह में (विशेषत: माघ मेला में) जाते हैं। मुक्त व्यक्ति, जिसका भौतिक शरीर नहीं है, कहीं भी जा सकता है। इसलिए जीव *सर्वग* कहलाता है—अर्थात् वह सर्वत्र जा सकता है। आजकल विज्ञानी अन्य ग्रहों पर जाने का प्रयास कर रहे हैं, किन्तु वे अपने भौतिक शरीरों के कारण मुक्त रूप से गति करने के लिए स्वतन्त्र नहीं हैं। किन्तु यदि कोई अपने मूल आध्यात्मिक शरीर में स्थित होता है, तो वह बिना कठिनाई के सर्वत्र घूम सकता है। इस भौतिक जगत् के भीतर सिद्धलोक नामक एक ग्रह है, जिसके निवासी किसी यन्त्र या अन्तरिक्ष-राकेट की सहायता लिए बिना ही एक ग्ह से दूसरे ग्रह पर जा सकते हैं। भौतिक जगत् में प्रत्येक ग्रह का अपना विशिष्ट लाभ (*विभूति भिन्न*) होता है। किन्तु आध्यात्मिक जगत् में सारे ग्रह तथा उनके निवासी आध्यात्मिक शक्ति से बने होते हैं। चूँकि आध्यात्मिक जगत् में कोई भौतिक अवरोध नहीं होता, इसलिए उसमें हर वस्तु एक-सी होती है।

বন-পথে দেখে মৃগ আছে ভূমে পড়ি' ।
বাণ-বিদ্ধ ভগ্ন-পাদ করে ধড়-ফড়ি ॥২৩১॥

বন-পথে দেখে মৃগ আছে ভূমে পড়ি' ।
বাণ-বিদ্ধ ভগ্ন-পাদ করে ধড়-ফড়ি ॥ ২৩১ ॥

বন-পথে—বন के मार्ग पर; **দেখে**—देखा; **মৃগ**—हिरन; **আছে**—था; **ভূমে পড়ি'**—भूमि पर गिरा हुआ; **বাণ-বিদ্ধ**—एक तीर द्वारा बिंधा हुआ; **ভগ্ন-পাদ**—टूटी टाँगे; **করে ধড়-ফড়ি**—दर्द से तड़प रहा था।

अनुवाद

"जंगल से जाते हुए नारद मुनि ने रास्ते में एक हिरन पड़ा देखा, जो एक तीर से बिंधा हुआ था। उसके पाँव टूट चुके थे और वह तीव्र पीड़ा के कारण तड़प रहा था।

আর কত-দূরে এক দেখেন শূকর ।
তৈছে বিদ্ধ ভগ্ন-পাদ করে ধড়্-ফড় ॥২৩২॥

আর কত-দূরে এক দেখেন শূকর ।
তৈছে বিদ্ধ ভগ্ন-পাদ করে ধড়্-ফড় ॥ ২৩২॥

आर कत-दूरे—थोड़ा और दूर; **एक**—एक; **देखेन**—देखते हैं; **शूकर**—एक सुअर; **तैछे**—वैसी ही; **विद्ध**—बिंधा हुआ; **भग्न-पाद**—टूटी टांगो वाला; **करे धड़्-फड़**—दर्द में तड़पता।

अनुवाद

"कुछ ही दूरी पर नारद मुनि ने तीर से बिंधा एक सुअर देखा। उसके भी पाँव टूटे थे और वह पीड़ा से तड़प रहा था।

ঐছে এক শশক দেখে আর কত-দূরে ।
জীবের দুঃখ দেখি' নারদ ব্যাকুল-অন্তরে ॥২৩৩॥

ঐছে এক শশক দেখে আর কত-দূরে ।
জীবের দুঃখ দেখি' নারদ ব্যাকুল-অন্তরে ॥ ২৩৩॥

ऐछे—इसी प्रकार; **एक शशक**—एक खरगोश; **देखे**—उन्होंने देखा; **आर कत-दूरे**—थोड़ा आगे; **जीवेर**—जीव का; **दुःख देखि'**—ऐसे भयानक कष्ट देखकर; **नारद**—महामुनि नारद; **व्याकुल-अन्तरे**—मन में अत्यन्त दुःखी हो गये।

अनुवाद

"जब वे आगे बढ़े, तो उन्होंने एक खरगोश को भी तड़पते देखा। नारद मुनि इन जीवों को इस तरह कष्ट भोगते देखकर हृदय में अत्यधिक दुःखी हुए।

কত-দূরে দেখে ব্যাধ বৃক্ষে ওঁত হঞা ।
মৃগ মারিবারে আছে বাণ যুড়িয়া ॥২৩৪॥

কত-দূরে দেখে ব্যাধ বৃক্ষে ওঁত হঞা ।
মৃগ মারিবারে আছে বাণ যুড়িয়া ॥ ২৩৪॥

कत-दूरे—कुछ और दूरी पर; **देखे**—नारद मुनि ने देखा; **व्याध**—एक शिकारी; **वृक्षे**

ओंत हञा—एक वृक्ष के पीछे छुपकर; **मृग मारिबारे**—पशुओं को मारने के लिए; **आछे**—वहाँ था; **बाण ग्रुड़िया**—हाथ में तीर पकड़कर।

अनुवाद

"जब नारद मुनि और आगे बढ़े, तो उन्होंने एक वृक्ष के पीछे एक शिकारी को देखा। यह शिकारी तीर लिये था और अन्य पशुओं को मारने के लिए तैयार था।

শ্যাম-বর্ণ রক্ত-নেত্র মহা-ভয়ঙ্কর ।
ধনুর্বাণ হস্তে,—যেন যম দণ্ড-ধর ॥২৩৫॥

श्याम-वर्ण रक्त-नेत्र महा-भयङ्कर ।
धनुर्बाण हस्ते,—ग्रेन ग्रम दण्ड-धर ॥ २३५ ॥

श्याम-वर्ण—काले रंग का; **रक्त-नेत्र**—लाल आँखें; **महा-भयङ्कर**—अत्यन्त भयानक रूप वाला; **धनुर्-बाण हस्ते**—हाथ में धनुष और बाण के साथ; **ग्रेन ग्रम दण्ड-धर**—बिलकुल मृत्यु के देवता यमराज के समान।

अनुवाद

"इस शिकारी का शरीर काला था। उसकी आँखें लाल-लाल थीं और वह अत्यन्त भयानक लग रहा था। वह ऐसा दिख रहा था, मानो वह यमराज हो, जो वहाँ पर अपने हाथों में धनुष-बाण लिए खड़े हो।

পথ ছাড়ি' নারদ তার নিকটে চলিল ।
নারদে দেখি' মৃগ সব পলাঞা গেল ॥২৩৬॥

पथ छाड़ि' नारद तार निकटे चलिल ।
नारदे देखि' मृग सब पलाञा गेल ॥ २३६ ॥

पथ छाड़ि'—मार्ग छोड़कर; **नारद**—नारद मुनि; **तार निकटे**—उसके पास; **चलिल**—गये; **नारदे देखि'**—नारद को देखकर; **मृग**—पशु; **सब**—सभी; **पलाञा गेल**—भाग गये।

अनुवाद

"जब नारद मुनि जंगल का मार्ग छोड़कर शिकारी के पास गये, तो सारे पशुओं ने तुरन्त उन्हें देखा और वहाँ से भाग गये।

ক্রুদ্ধ হঞা ব্যাধ তাঁরে গালি দিতে চায় ।
নারদ-প্রভাবে মুখে গালি নাহি আয় ॥২৩৭॥

क्रुद्ध हञा व्याध ताँरे गालि दिते चाय ।
नारद-प्रभावे मुखे गालि नाहि आय ॥ २३७॥

क्रुद्ध हञा—अत्यन्त क्रोधित होकर; **व्याध**—शिकारी; **ताँरे**—उन्हें; **गालि दिते चाय**—गाली देना चाहता था; **नारद-प्रभावे**—नारद के प्रभाव द्वारा; **मुखे**—मुँह में; **गालि**—गाली; **नाहि आय**—नहीं आई।

अनुवाद

"जब सारे पशु भाग गये, तो शिकारी ने गाली देकर नारद को दण्डित करना चाहा, किन्तु नारद के समक्ष वह एक भी बुरा शब्द उच्चारित न कर सका।

''গোসাঞি, প্রয়াণ-পথ ছাড়ি' কেনে আইলা ।
তোমা দেখি' মোর লক্ষ্য মৃগ পলাইলা'' ॥২৩৮॥

"गोसाञि, प्रयाण-पथ छाड़ि' केने आइला ।
तोमा देखि' मोर लक्ष्य मृग पलाइला" ॥ २३८॥

गोसाञि—हे महान् साधु; **प्रयाण-पथ छाड़ि'**—सामान्य मार्ग छोड़कर; **केने**—क्यों; **आइला**—आप आये हैं; **तोमा देखि'**—आपको देखकर; **मोर लक्ष्य**—मेरे लक्ष्य; **मृग**—पशु; **पलाइला**—भाग गये।

अनुवाद

"शिकारी ने नारद मुनि से कहा, 'हे गोस्वामी! हे महामुनि! आपने मेरे पास आने के लिए जंगल में से होकर जाने वाले सामान्य मार्ग को क्यों छोड़ा? आपको देखते ही मेरे शिकार के सारे पशु भाग गये।'

নারদ কহে,—''পথ ভুলি' আইলাঙ পুছিতে ।
মনে এক সংশয় হয়, তাহা খণ্ডাইতে ॥২৩৯॥

नारद कहे,—"पथ भुलि' आइलाङ पुछिते ।
मने एक संशय हय, ताहा खण्डाइते ॥ २३९॥

नारद कहे—नारद मुनि ने उत्तर दिया; **पथ भुलि'**—सामान्य मार्ग छोड़कर; **आइलाङ**—मैं आया हूँ; **पुछिते**—तुमसे पूछने के लिए; **मने**—मेरे मन में; **एक**—एक; **संशय हय**—संशय है; **ताहा**—वह; **खण्डाइते**—दूर करने के लिए।

अनुवाद

"नारद मुनि ने उत्तर दिया, 'मार्ग छोड़कर मैं तुम्हारे पास अपना एक सन्देह दूर करने आया हूँ।

পথে যে শূকর-মৃগ, জানি তোমার হয়'' ।
ব্যাধ কহে,—''যেই কহ, সেই ত' নিশ্চয়'' ॥২৪০॥

पथे ये शूकर-मृग, जानि तोमार हय" ।
व्याध कहे,—"येइ कह, सेइ त' निश्चय" ॥ २४० ॥

पथे—मार्ग में; **ये**—जो; **शूकर-मृग**—सुअर और अन्य पशु; **जानि**—मैं समझ सकता हूँ; **तोमार हय**—सभी तुम्हारे हैं; **व्याध कहे**—शिकारी ने कहा; **येइ कह**—आप जो भी कह रहे हैं; **सेइ त' निश्चय**—यह सत्य है।

अनुवाद

"'मैं संशय में था कि ये सारे अधमरे सुअर तथा अन्य पशु क्या तुम्हारे हैं।' शिकारी ने उत्तर दिया, 'हाँ, आप जो कह रहे हैं, सही है।'

নারদ কহে,—''যদি জীবে মার' তুমি বাণ ।
অর্ধ-মারা কর কেনে, না লও পরাণ?'' ॥২৪১॥

नारद कहे,—"यदि जीवे मार' तुमि बाण ।
अर्ध-मारा कर केने, ना लओ पराण?" ॥ २४१ ॥

नारद कहे—नारद मुनि ने कहा; **यदि**—यदि; **जीवे**—पशुओं को; **मार'**—मारते हो; **तुमि**—तुम; **बाण**—बाण; **अर्ध-मारा कर**—तुम अधमरा करते हो; **केने**—क्यों; **ना लओ पराण**—उनके प्राण पूरी तरह क्यों नहीं लेते।

अनुवाद

"तब नारद मुनि ने पूछा, 'तुमने इन पशुओं को पूरी तरह से क्यों नहीं मारा? तुमने उनके शरीरों में अपने तीर बेधकर उन्हें अधमरा क्यों रखा?'

ব্যাধ কহে,—"শুন, গোসাঞি, 'মৃগারি' মোর নাম ।
পিতার শিক্ষাতে আমি করি ঐছে কাম ॥২৪২॥

व्याध कहे,—"शुन, गोसाञि, 'मृगारि' मोर नाम ।
पितार शिक्षाते आमि करि ऐछे काम ॥ २४२॥

व्याध कहे—शिकारी ने उत्तर दिया; **शुन**—कृपया सुनो; **गोसाञि**—हे महान् साधु; **मृग-अरि**—पशुओं का शत्रु; **मोर नाम**—मेरा नाम; **पितार शिक्षाते**—अपने पिता की शिक्षा के अनुसार; **आमि**—मैं; **करि**—करता हूँ; **ऐछे काम**—ऐसे कार्य।

अनुवाद

"शिकारी ने उत्तर दिया, 'हे साधु पुरुष, मेरा नाम मृगारि अर्थात् पशुओं का शत्रु है। मेरे पिता ने इन्हें इसी प्रकार मारे जाने की शिक्षा मुझे दी है।

অর্ধ-মারা জীব যদি ধড়্-ফড় করে ।
তবে ত' আনন্দ মোর বাড়য়ে অন্তরে" ॥২৪৩॥

अर्ध-मारा जीव यदि धड़्-फड़ करे ।
तबे त' आनन्द मोर बाड़ये अन्तरे" ॥ २४३॥

अर्ध-मारा जीव—अधमरा जीव; **यदि**—यदि; **धड़्-फड़ करे**—कष्ट के कारण तड़पता है; **तबे**—तब; **त'**—ही; **आनन्द**—आनन्द; **मोर**—मेरा; **बाड़ये अन्तरे**—अन्दर बढ़ता है।

अनुवाद

"'जब मैं अधमरे पशुओं को तड़पते देखता हूँ, तो मुझे बड़े आनन्द का अनुभव होता है।'

নারদ কহে,—'এক-বস্তু মাগি তোমার স্থানে' ।
ব্যাধ কহে,—"মৃগাদি লহ, যেই তোমার মনে ॥২৪৪॥

नारद कहे,—'एक-वस्तु मागि तोमार स्थाने' ।
व्याध कहे,—"मृगादि लह, येइ तोमार मने ॥ २४४॥

नारद कहे—नारद मुनि ने कहा; **एक-वस्तु मागि**—मैं एक वस्तु माँगना चाहता हूँ; **तोमार स्थाने**—तुमसे; **व्याध कहे**—शिकारी ने उत्तर दिया; **मृग-आदि लह**—शिकार किए हुए पशुओं में से कुछ ले लो; **येइ तोमार मने**—जो आप पसन्द करें।

अनुवाद

"तब नारद मुनि ने शिकारी से कहा, 'मुझे तुमसे एक वस्तु माँगनी है।' शिकारी ने उत्तर दिया, 'आप जो भी पशु या अन्य वस्तु चाहें उसे ले सकते हैं।

मृग-छाल चाह यदि, आइस मोर घरे ।
येई चाह ताहा दिब मृग-व्याघ्राम्बरे'' ॥२४५॥

मृग-छाल चाह यदि, आइस मोर घरे ।
येइ चाह ताहा दिब मृग-व्याघ्राम्बरे" ॥ २४५ ॥

मृग-छाल—हिरण की चमड़ी; **चाह यदि**—यदि आप चाहते हैं; **आइस मोर घरे**—मेरे निवास पर आइये; **येइ चाह**—आप जो भी चाहें; **ताहा**—वह; **दिब**—मैं दूँगा; **मृग-व्याघ्र-अम्बरे**—हिरण या एक शेर की खाल।

अनुवाद

"'यदि आपको मृगछाला चाहिए तो मेरे पास अनेक हैं। मैं आपको मृगछाला या व्याघ्र की खाल दे दूँगा।'

नारद कहे,—''इहा आमि किछु नाहि चाहि ।
आर एक-दान आमि मागि तोमा-ठाञि ॥२४६॥

नारद कहे,—"इहा आमि किछु नाहि चाहि ।
आर एक-दान आमि मागि तोमा-ठाञि ॥ २४६ ॥

नारद कहे—नारद मुनि ने कहा; **इहा**—यह; **आमि किछु नाहि चाहि**—मैं नहीं चाहता; **आर**—दूसरा; **एक-दान**—एक दान; **आमि**—मैं; **मागि**—माँगता हूँ; **तोमा-ठाञि**—तुमसे।

अनुवाद

"नारद मुनि ने कहा, 'मैं कोई छाल नहीं चाहता। मैं तुमसे दान में केवल एक वस्तु चाहता हूँ।

कालि हैते तुमि येई मृगादि मारिबा ।
प्रथमेई मारिबा, अर्ध-मारा ना करिबा'' ॥२४७॥

कालि हैते तुमि येइ मृगादि मारिबा ।
प्रथमेइ मारिबा, अर्ध-मारा ना करिबा" ॥ २४७॥

कालि हैते—कल से; **तुमि**—तुम; **येइ**—जिन; **मृग-आदि**—पशुओं को; **मारिबा**—मारोगे; **प्रथमेइ मारिबा**—उन्हें प्रारम्भ में ही मार दो; **अर्ध-मारा**—अधमरा; **ना करिबा**—मत करना।

अनुवाद

"'मैं तुमसे याचना करता हूँ कि आज से आगे तुम पशुओं को पूरी तरह मारोगे और उन्हें अधमरा नहीं छोड़ोगे।'

ব্যাধ কহে,—"কিবা দান মাগিলা আমারে ।
অর্ধ মারিলে কিবা হয়, তাহা কহ মোরে" ॥২৪৮॥

व्याध कहे,—"किबा दान मागिला आमारे ।
अर्ध मारिले किबा हय, ताहा कह मोरे" ॥ २४८॥

व्याध कहे—शिकारी ने उत्तर दिया; **किबा दान**—ये किस प्रकार का दान; **मागिला आमारे**—आपने मुझसे माँग लिया है; **अर्ध मारिले**—आधा मारने में; **किबा**—क्या; **हय**—है; **ताहा**—वह; **कह मोरे**—मुझे समझाइये।

अनुवाद

"शिकारी ने उत्तर दिया, 'हे महाशय, आप मुझसे यह क्या माँग रहे हैं? इन पड़े हुए अधमरे पशुओं में क्या बुराई है? क्या आप मुझे बतला सकेंगे?'

নারদ কহে,—"অর্ধ মারিলে জীব পায় ব্যথা ।
জীবে দুঃখ দিতেছ, তোমার হইবে ঐছে অবস্থা ॥২৪৯॥

नारद कहे,—"अर्ध मारिले जीव पाय व्यथा ।
जीवे दुःख दितेछ, तोमार हइबे ऐछे अवस्था ॥ २४९॥

नारद कहे—नारद मुनि ने उत्तर दिया; **अर्ध मारिले**—पशुओं को आधा मारकर; **जीव पाय व्यथा**—जीव अत्यन्त कष्ट पाता है; **जीवे दुःख दितेछ**—तुम जीवों को कष्ट दे रहे हो; **तोमार**—तुम्हारा; **हइबे**—होगा; **ऐछे अवस्था**—बदले में इसी समान कष्ट।

अनुवाद

"नारद मुनि ने उत्तर दिया, 'यदि तुम पशुओं को अधमरा छोड़ते हो, तो तुम जान-बूझकर उन्हें पीड़ा पहुँचाते हो। अतः बदले में तुम्हें दुःख भोगना होगा।'

तात्पर्य

यह एक महाजन नारद मुनि का प्रामाणिक कथन है। यदि कोई किसी जीव को व्यर्थ ही कष्ट पहुँचाता है, तो प्रकृति के नियमों द्वारा उसे वैसा ही कष्ट पहुँचाया जायेगा। यद्यपि मृगारि असभ्य था, फिर भी उसे अपने पापकर्मों का फल भोगना पड़ता। किन्तु यदि कोई सभ्य मनुष्य अपनी तथाकथित सभ्यता को बनाये रखने के लिए कसाई-घरों में नियमित रूप से पशुओं की हत्या वैज्ञानिक विधियों तथा यन्त्रों का प्रयोग करते हुए करता है, तो उसे मिलने वाले कष्ट का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। तथाकथित सभ्य व्यक्ति अपने आपको बहुत शिक्षित मानते हैं, किन्तु वे प्रकृति के कठोर नियमों के विषय में नहीं जानते। प्रकृति के नियमानुसार जीवन का बदला जीवन से लिया जाता हैं। कसाई-घर चलाने वाले व्यक्ति के कष्ट का हम अनुमान भी नहीं लगा सकते। वह न केवल इस जीवन में, अपितु अगले जीवन में भी कष्ट पाता है। कहा जाता है कि शिकारी, हत्यारे या बधिक को न तो जीने का और न मरने का परामर्श दिया जाता है। यदि वह जीवित रहता है, तो और अधिक पाप एकत्र करता है, जिससे अगले जन्म में उसे अधिक कष्ट उठाने पड़ते हैं। उसे मरने का भी उपदेश नहीं दिया जाता, क्योंकि उसके मरने का अर्थ यह है कि तुरन्त ही उसे अधिक कष्ट उठाना पड़ता है। इसीलिए उसे न जीने तथा न मरने का उपदेश दिया जाता है।

वैदिक सिद्धान्तों के अनुयायी होने के नाते हम नारद मुनि के इन कथनों को स्वीकार करते हैं। हमारा यह कर्तव्य है कि हम देखें कि कोई भी व्यक्ति पापकर्मों के फलस्वरूप कष्ट न उठाये। *भगवद्गीता* में मूर्ख धूर्तों (मूढ़ों) को *मायया पहृतज्ञानाः* कहा गया है, जिसका अर्थ यह है कि उनका ज्ञान सतही होते हुए भी माया उनके वास्तविक ज्ञान को हर लेती है। ऐसे ही लोग वर्तमान समय में मानव समाज की अगुवाई कर रहे हैं। *श्रीमद्भागवत* में ऐसे लोगों को *अन्धा*

यथान्धैरुपनीयमानाः कहा गया है। ये धूर्त स्वयं तो अन्धे होते ही हैं, फिर भी वे दूसरे अन्धे लोगों का मार्गदर्शन करते हैं। जब लोग ऐसे नेताओं का अनुसरण करते हैं, तो भविष्य में उन्हें अपार कष्ट मिलता है। तथाकथित प्रगति या उन्नति के बावजूद यह सब घटित हो रहा है। तो कौन सुरक्षित है? कौन सुखी है? कौन चिन्तारहित है?

ব্যাধ তুমি, জীব মার—'অল্প' অপরাধ তোমার ।
কদর্থনা দিয়া মার'—এ পাপ 'অপার' ॥২৫০॥

व्याध तुमि, जीव मार—'अल्प' अपराध तोमार ।
कदर्थना दिया मार'—ए पाप 'अपार' ॥ २५० ॥

व्याध तुमि—तुम एक शिकारी हो; **जीव मार**—तुम्हारा कार्य पशुओं को मारना है; **अल्प**—तुच्छ; **अपराध**—अपराध; **तोमार**—तुम्हारा; **कदर्थना दिया**—उन्हें अनावश्यक रूप से कष्ट देकर; **मार'**—जब तुम मारते हो; **ए पाप अपार**—यह पाप बहुत असीमित है।

अनुवाद

"नारद मुनि ने आगे कहा, 'हे शिकारी, तुम्हारा कार्य पशुओं का वध करना है। यह तो तुम्हारा अल्प अपराध है। किन्तु जब तुम जान-बूझकर उन्हें अधमरा छोड़कर व्यर्थ तड़पाते हो, तो तुम बहुत भारी पाप करते हो।'

तात्पर्य

पशु-हत्यारों के लिए यह अन्य उत्तम आदेश है। मानव समाज में सदैव से पशु-हत्यारे तथा पशु-भक्षक रहे हैं, क्योंकि कम सभ्य लोग मांसाहार के आदी हैं। वैदिक सभ्यता में मांसाहारियों को देवी काली या अन्य किसी ऐसे ही देवता के लिए पशु-वध करने का उपदेश है। यह उपदेश पशुओं को व्यर्थ पीड़ा न पहुँचाने के लिए दिया गया है, जैसाकि कसाई-घरों में होता है। देवता के लिए बलिदान-यज्ञ में एक ही वार में पशु का गला काटने की संस्तुति की गई है। इसे कृष्णपक्ष की रात में करना चाहिए और उस समय वध किये जा रहे पशु की पीड़ा-ध्वनि किसी को सुनाई नहीं पड़नी चाहिए। अन्य भी अनेक निषेध हैं। माह में केवल एक बार पशु-हत्या की अनुमति दी जाती है और

पशु के हत्यारे को अगले जीवन में ऐसा ही कष्ट भोगना पड़ता है। इस समय तथाकथित सभ्य व्यक्ति किसी भी धार्मिक उत्सव या अनुष्ठान में मूर्ति को पशुओं की बलि नहीं देते। वे खुलेआम केवल अपनी जीभ के स्वाद के लिए नित्य हजारों पशुओं का व्यर्थ ही वध करते हैं। इसी कारण सम्पूर्ण जगत् नाना प्रकार से पीड़ित है। राजनीतिज्ञ व्यर्थ ही युद्ध की घोषणा करते हैं और भौतिक प्रकृति के कठोर नियमों के अनुसार राष्ट्रों के सामूहिक रूप से हत्याएँ हो रही हैं :

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

"मोहग्रस्त जीवात्मा भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के अधीन अपने आपको कर्मों का कर्ता मानता है, जबकि वस्तुतः वे प्रकृति द्वारा सम्पन्न होते हैं"। (*भगवद्गीता* ३.२७) प्रकृति के नियम बड़े कठोर हैं। किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि उसे पशुओं का वध करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है और उसे इसका परिणाम नहीं भोगना होगा। ऐसा करके कोई बच नहीं सकता। यहाँ नारद मुनि कहते हैं कि पशु-वध अपराध है, विशेषतया जब पशुओं को व्यर्थ ही कष्ट पहुँचाया जाता है। मांसाहारियों तथा पशु-बधिकों को परामर्श दिया जाता है कि वे कसाई-घरों से मांस न खरीदें। वे चाहें तो मास में एक बार काली की पूजा करके किसी क्षुद्र पशु को मारकर खा सकते हैं। किन्तु इस विधि का पालन करने पर भी वह अपराधी तो रहता ही है।

कदर्थिया तुमि यत मारिला जीवेरे ।
तारा तैछे तोमा मारिबे जन्म-जन्मान्तरे" ॥२५१॥

कदर्थिया तुमि यत मारिला जीवेरे ।
तारा तैछे तोमा मारिबे जन्म-जन्मान्तरे" ॥ २५१ ॥

कदर्थिया—अनावश्यक कष्ट देकर; **तुमि**—तुमने; **यत**—सभी; **मारिला**—मार दिया; **जीवेरे**—जीव; **तारा**—वे सभी; **तैछे**—उसी प्रकार; **तोमा**—तुम्हें; **मारिबे**—मारेंगे; **जन्म-जन्म-अन्तरे**—जन्मजन्मांतर।

अनुवाद

"नारद मुनि ने कहा : 'तुमने जिन पशुओं को मारा है और व्यर्थ ही जिन्हें पीड़ा पहुँचाई है, वे सब एक-एक करके अगले जन्मों में तुम्हें मारते रहेंगे।'

तात्पर्य

यह महान सन्त नारद मुनि का एक अन्य प्रामाणिक कथन है । जो लोग पशुओं का वध करते हैं और उन्हें व्यर्थ पीड़ा पहुँचाते हैं—जैसाकि कसाई-घरों में होता है—वे अगले जीवन में तथा उससे भी आगे के अनेक जीवन में इसी तरह वध किये जायेंगे। ऐसे अपराध से किसी को क्षमा नहीं मिल सकती। यदि कोई व्यक्ति पेशे के रूप में हजारों पशुओं का इसलिए वध करता है कि लोग खाने के लिए मांस खरीदें, तो उसे अगले जीवन में तथा उससे भी आगे के अनेक जीवन में इसी तरह से मारे जाने के लिए तैयार रहना होगा। ऐसे अनेक धूर्त हैं, जो अपने ही धर्म के नियमों का अतिक्रमण करते हैं। जूडियो-क्रिश्चियन शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है, "तुम हत्या मत करो।" इतने पर भी कई तरह के बहाने बनाकर धर्मध्वजी लोग अपने आपको सन्त बतलाते हुए पशुओं का वध करते हैं। मानव समाज में इस तरह की विडम्बना और दिखावा असीम कष्टों को लाने वाला है, इसीलिए रह-रहकर महान् युद्ध छिड़ते रहते हैं। लोगों के झुंडों के झुंड युद्धस्थलों में जाकर एक दूसरे का वध करते हैं। अब तो लोगों ने परमाणु बम का आविष्कार कर लिया है, जो बड़े पैमाने पर विनाश के लिए उपयोग की प्रतीक्षा में है। यदि लोग चाहते हैं कि वे जन्म-जन्मांतर इस हत्या-कार्य से छुटकारा पा लें, तो उन्हें कृष्णभावनामृत का आश्रय ग्रहण करना होगा और पापकर्म बन्द कर देना होगा। अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ हर व्यक्ति से मांसाहार, अवैध सम्बन्ध, नशा तथा जुआ खेलना छोड़ने की प्रार्थना करता है। जब मनुष्य इन पापकृत्यों का परित्याग कर देता है, तब वह कृष्ण को समझ सकता है और इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन को ग्रहण कर सकता है। इसीलिए हम हर एक से पापकर्म का परित्याग करने और हरे कृष्ण मन्त्र का जप करने का अनुरोध करते हैं। इस तरह से लोग अपने आपको जन्म-मृत्यु की पुनरावृत्ति से तथा कसाई-घरों में पशुओं की तरह मारे जाने से बचा सकते हैं।

নারদ-সঙ্গে ব্যাধের মন পরসন্ন হইল ।
তাঁর বাক্য শুনি' মনে ভয় উপজিল ॥২৫২॥

नारद-सङ्गे व्याधेर मन परसन्न हइल ।
ताँर वाक्य शुनि' मने भय उपजिल ॥ २५२॥

नारद-सङ्गे—महान् साधु नारद मुनि के संग में; **व्याधेर**—शिकारी का; **मन**—मन; **परसन्न हइल**—शुद्ध और सन्तुष्ट हो गया; **ताँर**—उनके; **वाक्य**—वचन; **शुनि'**—सुनकर; **मने**—मन में; **भय उपजिल**—कुछ भय उत्पन्न हुआ।

अनुवाद

"इस तरह नारद मुनि की संगति से वह शिकारी अपने पापकृत्यों को थोड़ा-बहुत स्वीकार करने लगा। अतः वह अपने अपराधों के कारण कुछ भयभीत हो उठा।

तात्पर्य

यह शुद्ध भक्तों की संगति का प्रभाव है। सारे विश्व में कृष्णभावनामृत का प्रचार करने वाले हमारे प्रचारकों को नारद मुनि के चरणचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए और चार नियमों का पालन करके तथा हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करके शुद्ध बनना चाहिए। इससे वे वैष्णव बनने के योग्य बन सकेंगे। तब जब वे पापी लोगों से इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन की शिक्षाओं के विषय में कहेंगे, तो लोगों पर प्रभाव पड़ेगा और वे इन उपदेशों को ग्रहण करेंगे। हमें गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा भक्ति विषयक शिक्षा प्राप्त होती है। नारद मुनि हमारे आदि गुरु हैं, क्योंकि वे व्यासदेव के गुरु हैं। व्यासदेव हमारी गुरु-शिष्य परम्परा के गुरु हैं, अतः हमें नारद मुनि के चरणचिह्नों पर चलकर शुद्ध वैष्णव बनना चाहिए। शुद्ध वैष्णव वह है, जिसका कोई स्वार्थ न हो। वह भगवान् की सेवा में अपने आपको पूर्णतया समर्पित कर देता है। वह भौतिक इच्छाओं से रहित होता है और तथाकथित विद्या तथा परोपकारी कार्यों में रुचि नहीं दिखाता। तथाकथित विद्वान तथा परोपकारी वस्तुतः *कर्मी* तथा *ज्ञानी* हैं और कुछ तो कृपण हैं, जो पापकृत्य में लगे हुए हैं। ये सभी निन्दनीय हैं, क्योंकि वे कृष्ण-भक्त नहीं हैं।

हर एक के पास इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन से जुड़कर तथा विधि-

विधानों का कठोरता से पालन करते हुए शुद्ध बनने का अवसर है। हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करने से मनुष्य सभी प्रकार के कल्मषों से, विशेषतया पशु-हत्या से उत्पन्न कलुष से छूट सकता है। स्वयं भगवान् कृष्ण ने कहा है :

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

"तुम सारे धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सारे पापों से मुक्ति दिला दूँगा। तुम डरो मत।" (*भगवद्गीता* १८.६६)

हमें कृष्ण की यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और गुरु-शिष्य परम्परा में नारद मुनि के चरण-चिह्नों का अनुसरण करना चाहिए। यदि हम केवल कृष्ण के चरणकमलों की शरण लें और इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन को गम्भीरतापूर्वक स्वीकार करें, तो हम पाप से होने वाले कर्म से मुक्त हो सकते हैं। यदि हम पर्याप्त बुद्धिमान होंगे, तो भगवान् की प्रेममयी सेवा में अवश्य लग जायेंगे। तभी हमारा जीवन सफल होगा और हमें उस शिकारी की तरह जन्म-जन्मांतर कष्ट नहीं भोगना पड़ेगा। पशुओं की हत्या करने से हम न केवल मानव योनि से विहीन होंगे, अपितु हमें पशु-योनि ग्रहण करनी होगी और किसी-न-किसी प्रकार वैसे ही पशु द्वारा हमें मारा जायेगा। यह प्रकृति का नियम है। *मांस* संस्कृत शब्द है *मां सः खादति इति मांसः* अर्थात् "मैं अभी एक पशु का मांस खा रहा हूँ, जो किसी दिन भविष्य में मेरे मांस को खायेगा।"

ব্যাধ কহে,—"বাল্য হৈতে এই আমার কর্ম ।
কেমনে তরিমু মুঞি পামর অধম? ॥২৫৩॥

व्याध कहे,—"बाल्य हैते एइ आमार कर्म ।
केमने तरिमु मुञि पामर अधम? ॥ २५३॥

व्याध कहे—शिकारी ने कहा; **बाल्य हैते**—बचपन से ही; **एइ आमार कर्म**—मुझे यही कर्म सिखाया गया (पशुओं को आधा मारना); **केमने**—कैसे; **तरिमु**—इन पापकर्मों से मुक्त हो पाऊँगा; **मुञि**—मैं; **पामर अधम**—पापी और अधम।

अनुवाद

"शिकारी ने स्वीकार किया कि उसके द्वारा पापकर्म हुए हैं। तब उसने कहा, 'मुझे बचपन से ही इस पेशे की शिक्षा दी गई है। अब मैं सोच रहा हूँ कि मैं किस तरह अपने अनगिनत पापकर्मों से मुक्त हो सकता हूँ।'

तात्पर्य

इस प्रकार की स्वीकारोक्ति तब तक लाभप्रद है, जब तक कोई फिर से पाप न करे। धोखा और दिखावा उच्च महापुरुष सहन नहीं करते। यदि कोई समझ लेता है कि पाप क्या है, तो उसे निष्ठापूर्वक इन पापों को त्यागकर पश्चाताप करना चाहिए और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रतिनिधि, शुद्ध भक्त के माध्यम से भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए। इस तरह वह पाप के फल से छुटकारा पा सकता है और भक्ति में प्रगति कर सकता है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति प्रायश्चित्त करने के बाद पाप करता रहता है, तो उसे नहीं बचाया जा सकता है। शास्त्रों में ऐसे प्रायश्चित्त की उपमा गज-स्नान से दी गई है। हाथी अच्छी तरह से स्नान करता है और अपना शरीर भलीभाँति साफ करता है, किन्तु जैसे ही वह पानी के बाहर आता है, किनारे से कुछ धूल उठाकर अपने सारे शरीर पर छिड़क लेता है। प्रायश्चित्त कितने ही उत्तम ढंग से क्यों न किया जाए, किन्तु यदि कोई पाप करता रहे तो इससे उस मनुष्य को कोई सहायता नहीं मिलेगी। इसीलिए उस शिकारी ने पहले सन्त पुरुष नारद के समक्ष अपने पापकर्म को स्वीकार किया और तब पूछा कि वह किस तरह इससे बच सकता है।

এই পাপ যায় মোর, কেমন উপায়ে? ।
নিস্তার করহ মোরে, পড়োঁ তোমার পায়ে'' ॥২৫৪॥

एइ पाप याय मोर, केमन उपाये? ।
निस्तार करह मोरे, पड़ों तोमार पाये" ॥ २५४॥

एइ—यह; **पाप याय मोर**—मेरे पापकर्मों का परिणाम नष्ट हों; **केमन उपाये**—किस उपाय द्वारा; **निस्तार करह मोरे**—कृपया मेरा उद्धार कीजिए; **पड़ों**—मैं गिरता हूँ; **तोमार पाये**—आपके चरणकमलों में।

अनुवाद

"शिकारी ने आगे कहा, 'हे महानुभाव, कृपया मुझे बतायें कि मैं अपने पापी जीवन के कर्मफलों से किस प्रकार छुटकारा पा सकता हूँ। अब मैं पूरी तरह से आपकी शरण में हूँ और आपके चरणकमलों पर पड़ता हूँ। कृपया मेरे पापकर्म के फलों से मेरा उद्धार करें।'

तात्पर्य

नारद मुनि की कृपा से उस शिकारी में सद्बुद्धि जाग्रत हुई और तुरन्त ही वह उनकी शरण में आ गया। यही विधि है। सन्त पुरुष की संगति से मुनष्य अपने पापी जीवन के कर्मफलों को समझ सकता है। जब कोई स्वेच्छा से ऐसे सन्त पुरुष की शरण में आता है, जो कृष्ण का प्रतिनिधि होता है और उसके आदेशों का पालन करता है, तो वह पापफलों से मुक्त हो सकता है। कृष्ण पापी व्यक्ति द्वारा समर्पण चाहते हैं और कृष्ण का प्रतिनिधि भी यही उपदेश देता है। कृष्ण का प्रतिनिधि कभी भी अपने शिष्य से यह नहीं कहता, "मेरी शरण में आओ;" प्रत्युत वह कहता है कि, "कृष्ण की शरण में जाओ।" यदि शिष्य इस नियम को स्वीकार करता है और कृष्ण के प्रतिनिधि के माध्यम से शरणागत बनता है, तो उसका जीवन पापों से बच जाता है।

नारद कहे,—'यदि धर आमार वचन ।
तबे से करिते पारि तोमार मोचन' ॥ २५५ ॥

नारद कहे,—'यदि धर आमार वचन ।
तबे से करिते पारि तोमार मोचन' ॥ २५५ ॥

नारद कहे—नारद मुनि ने उत्तर दिया; **यदि धर**—यदि तुम मानते हो; **आमार वचन**—मेरे उपदेश; **तबे**—तब; **से**—यह; **करिते पारि**—मैं कर सकता हूँ; **तोमार**—तुम्हारी; **मोचन**—मुक्ति।

अनुवाद

"नारद मुनि ने शिकारी को आश्वस्त किया, 'यदि तुम मेरे उपदेशों को सुनोगे, तो मैं तुम्हारी मुक्ति का उपाय ढूँढ निकालूँगा।'

तात्पर्य

गौराङ्गेर भक्तगणे जने जने शक्ति धरे—इस गीत का सार यह है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तगण बड़े शक्तिशाली होते हैं और इनमें से एक एक भक्त सारे संसार का उद्धार कर सकता है। तो फिर नारद मुनि के विषय में क्या कहा जाए? जो कोई नारद मुनि के उपदेशों का पालन करता है, तो वह कितने भी पापकर्मों के फलों से मुक्त किया जा सकता है। यही विधि है। व्यक्ति को गुरु के उपदेशों का पालन करना चाहिए; तब वह अवश्य ही सारे पापकर्मों के फलों से मुक्त हो जायेगा। सफलता का यही रहस्य है। *यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।* यदि किसी को कृष्ण तथा गुरु पर अटल विश्वास है, तो इसका परिणाम *तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः* होगा—अर्थात् ऐसे व्यक्ति के समक्ष सारे शास्त्रों के निष्कर्ष प्रकट हो जायेंगे। कृष्ण का शुद्ध भक्त भी नारद मुनि जैसी ही अपेक्षा रख सकता है। वह कहता है, "यदि तुम मेरे आदेशों को मानोगे, तो मैं तुम्हारी मुक्ति का दायित्व वहन करूँगा।" नारद जैसा शुद्ध भक्त किसी भी पापी व्यक्ति को आश्वासन दे सकता है, क्योंकि भगवत्कृपा उसके पास इतनी शक्ति होती है कि वह ऐसे पापी व्यक्ति का उद्धार कर सकता है बशर्ते कि वह निर्दिष्ट नियमों का पालन करे।

ব্যাধ কহে,—'যেই কহ, সেই ত' করিব' ।
নারদ কহে,—'ধনুক ভাঙ্গ, তবে সে কহিব' ॥২৫৬॥

व्याध कहे,—'येइ कह, सेइ त' करिब' ।
नारद कहे,—'धनुक भाङ्ग, तबे से कहिब' ॥ २५६ ॥

व्याध कहे—शिकारी ने कहा; **येइ कह**—आप जो कहते हैं; **सेइ त' करिब**—मैं वही करूँगा; **नारद कहे**—नारद मुनि ने उत्तर दिया; **धनुक भाङ्ग**—अपना धनुष तोड़ दो; **तबे**—तब; **से कहिब**—मैं तुम्हें बताऊँगा।

अनुवाद

"तब शिकारी ने कहा, 'हे मान्यवर, आप जो कहते हैं वही मैं करूँगा।' नारद ने उसे तुरन्त आदेश दिया, 'पहले तुम अपना धनुष तोड़ डालो। तब मैं तुम्हें बतलाऊँगा कि तुम्हें क्या करना है।'

तात्पर्य

दीक्षा देने की विधि यही है। शिष्य को प्रण करना चाहिए कि अब वह पापमय कृत्य—यथा अवैध सम्बन्ध, मांसाहार, जुआ खेलना तथा नशा—नहीं करेगा। वह गुरु के आदेशों को पूरा करने का वचन देता है। तब गुरु उसकी देखभाल करता है और उसे आध्यात्मिक उच्च पद तक उन्नत करता है।

ব্যাধ কহে,—'ধনুক ভাঙ্গিলে বর্তিব কেমনে?' ।
নারদ কহে,—'আমি অন্ন দিব প্রতি-দিনে' ॥ ২৫৭॥

व्याध कहे,—'धनुक भाङ्गिले वर्तिब केमने?' ।
नारद कहे,—'आमि अन्न दिब प्रति-दिने' ॥ २५७॥

व्याध कहे—शिकारी ने उत्तर दिया; **धनुक भाङ्गिले**—यदि मैं अपना धनुष तोड़ दूँ; **वर्तिब केमने**—मेरा जीवन यापन कैसे होगा; **नारद कहे**—नारद मुनि ने कहा; **आमि**—मैं; **अन्न**—अन्न; **दिब**—दूँगा; **प्रति-दिने**—प्रतिदिन।

अनुवाद

"शिकारी ने उत्तर दिया, 'यदि मैं अपना धनुष तोड़ता हूँ, तो फिर मैं अपना भरण-पोषण कैसे करूँगा?' नारद मुनि ने उत्तर दिया, 'चिन्ता मत करो। मैं तुम्हें प्रतिदिन भोजन दिया करूँगा।'

तात्पर्य

हमारी आय का स्रोत वास्तव में हमारे उदर-पोषण का स्रोत नहीं होता। महान् ब्रह्मा से लेकर एक क्षुद्र चींटी तक सारे जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा पालित होते हैं। *एको बहूनां यो विदधाति कामान्।* एक परमेश्वर कृष्ण ही हर एक का पालन करने वाले हैं। हमारी आय का तथाकथित स्रोत तो हमारी अपनी रुचि है। यदि मैं शिकारी बनना चाहता हूँ, तो ऐसा लगेगा कि शिकार करना ही मेरी आय का स्रोत है। यदि मैं ब्राह्मण बनकर कृष्ण पर पूरी तरह निर्भर रहता हूँ, तो मैं कोई कार्य नहीं करता, किन्तु फिर भी मेरा उदर-पोषण करने वाले कृष्ण हैं। शिकारी अपने धनुष को तोड़ने को लेकर विचलित था, क्योंकि वह अपनी आय के विषय में चिन्तित था। किन्तु नारद मुनि ने शिकारी को आश्वासन दिया, क्योंकि वे जानते थे कि शिकारी का उदर-पोषण धनुष

के कारण नहीं, अपितु कृष्ण द्वारा हो रहा था। कृष्ण के प्रतिनिधि होने के कारण नारद मुनि भलीभाँति जानते थे कि धनुष तोड़ने से शिकारी को कष्ट नहीं पहुँचेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं था कि कृष्ण उसे भोजन प्रदान करेंगे।

धनुक भाङ्गि' ब्याध ताँर चरणे पड़िल ।
तारे उठाञा नारद उपदेश कैल ॥२५८॥

धनुक भाङ्गि' व्याध ताँर चरणे पड़िल ।
तारे उठाञा नारद उपदेश कैल ॥ २५८ ॥

धनुक भाङ्गि'—धनुष तोड़कर; **व्याध**—शिकारी; **ताँर**—उनके (नारद मुनि के); **चरणे**—चरणकमलों में; **पड़िल**—शरणागत हो गया; **तारे**—उसे ; **उठाञा**—उठाकर; **नारद**—नारद मुनि ने; **उपदेश कैल**—उपदेश दिया।

अनुवाद

"नारद मुनि द्वारा इस प्रकार आश्वस्त किये जाने पर शिकारी ने अपना धनुष तोड़ डाला, तुरन्त ही सन्त के चरणकमलों पर गिर पड़ा और अपने आपको पूर्ण समर्पित कर दिया। बाद में नारद मुनि ने अपने हाथ से उसे उठाया और आध्यात्मिक उन्नति का उपदेश दिया।

तात्पर्य

यही है दीक्षा देने की विधि। शिष्य को कृष्ण के प्रतिनिधि रूप गुरु के समक्ष आत्मसमर्पण करना चाहिए। नारद से चलने वाली गुरु-शिष्य परम्परा से सम्बन्धित होने से गुरु नारद मुनि की ही श्रेणी में होता है। मनुष्य अपने पापकर्म से छुटकारा पा सकता है, यदि वह ऐसे व्यक्ति के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है, जो वास्तव में नारद मुनि का प्रतिनिधित्व करता हो। नारद मुनि ने उस शिकारी को शरणागत होने पर उपदेश दिया।

"घरे गिया ब्राह्मणे देह' यत आछे धन ।
एक एक वस्त्र परि' बाहिर हओ दुइ-जन ॥२५९॥

"घरे गिया ब्राह्मणे देह' यत आछे धन ।
एक एक वस्त्र परि' बाहिर हओ दुइ-जन ॥ २५९ ॥

घरे गिया—घर लौटकर; **ब्राह्मणे**—ब्राह्मणों को; **देह'**—दे दो; **यत**—जो भी; **आछे**—तुम्हारे पास है; **धन**—सम्पत्ति; **एक एक**—एक; **वस्त्र परि'**—वस्त्र पहनकर; **बाहिर हओ**—घर त्याग दो; **दुइ-जन**—तुम दोनों (शिकारी और उसकी पत्नी)।

अनुवाद

"तब नारद मुनि ने शिकारी को उपदेश दिया, 'तुम घर लौट जाओ और तुम्हारे पास जितना धन है उसे उन शुद्ध ब्राह्मणों में बाँट दो, जो परम सत्य को जानने वाले हैं। ब्राह्मणों को अपना धन बाँटने के बाद तुम तथा तुम्हारी पत्नी दोनों ही अपने पहनने के लिए एक एक वस्त्र लेकर गृह-त्याग कर दो।'

तात्पर्य

वानप्रस्थ की अवस्था में वैराग्य की यही विधि है। कुछ काल तक गृहस्थ जीवन भोगने के बाद पति-पत्नी को घर त्याग देना चाहिए और अपने धन को ब्राह्मणों तथा वैष्णवों में बाँट देना चाहिए। वानप्रस्थ अवस्था में पत्नी को सहायक रूप में रखा जा सकता है। भाव यह है कि पत्नी अपने पति को आध्यात्मिक उन्नति में सहायता देगी। इसीलिए नारद मुनि ने शिकारी को घर छोड़ने तथा वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने का उपदेश दिया। ऐसा नहीं है कि गृहस्थ मृत्यु-पर्यन्त घर पर ही रहता रहे। वानप्रस्थ संन्यास की तैयारी है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अनेक युवा दम्पति भगवान् की सेवा में लगे हुए हैं। अन्ततः उन्हें वानप्रस्थ ग्रहण करना होगा, जिसके बाद पति को प्रचार या उपदेश-कार्य के लिए संन्यास ग्रहण करना चाहिए। तब पत्नी अकेले रहकर चाहे विग्रह-सेवा में या कृष्णभावनामृत आन्दोलन के अन्तर्गत अन्य सेवाओं में लग सकती है।

নদী-তীরে এক-খানি কুটীর করিয়া ।
তার আগে এক-পিণ্ডি তুলসী রোপিয়া ॥২৬০॥

নদী-তীরে এক-খানি কুটীর করিয়া ।
তার আগে এক-পিণ্ডি তুলসী রোপিয়া ॥ ২৬০॥

नदी-तीरे—नदी के किनारे पर; **एक-खानि**—केवल एक; **कुटीर**—कुटिया; **करिया**—

बनाओ; **तार आगे**—उसके सामने; **एक-पिण्डि**—एक चबूतरे पर; **तुलसी**—तुलसी का पौधा; **रोपिया**—उगाओ।

अनुवाद

"नारद मुनि ने कहा, 'तुम अपना घर छोड़कर नदी किनारे जाओ। वहाँ तुम एक छोटी-सी कुटिया बनाओ और उस कुटिया के सामने एक चबूतरे में तुलसी का एक पौधा लगाओ।

तुलसी-परिक्रमा कर, तुलसी-सेवन ।
निरन्तर कृष्ण-नाम करिह कीर्तन ॥२६१॥

तुलसी-परिक्रमा कर, तुलसी-सेवन ।
निरन्तर कृष्ण-नाम करिह कीर्तन ॥ २६१ ॥

तुलसी-परिक्रमा कर—तुलसी की परिक्रमा करो; **तुलसी-सेवन**—तुलसी की जल देकर सेवा करो; **निरन्तर**—निरन्तर; **कृष्ण-नाम**—कृष्ण का पवित्र नाम; **करिह**—करो; **कीर्तन**—कीर्तन।

अनुवाद

"'अपने घर के सामने तुलसी रोपने के बाद नित्य प्रति उस तुलसी वृक्ष की परिक्रमा करना, उसे जल देकर सेवा देना और निरन्तर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करना।'

तात्पर्य

आध्यात्मिक जीवन का शुभारम्भ यहीं से है। गृहस्थ जीवन का परित्याग करके मनुष्य किसी पवित्र स्थान, यथा गंगा या यमुना के तट पर जाये और वहाँ एक छोटी-सी कुटिया बनाये। ऐसी छोटी कुटिया किसी खर्च के बिना ही बनाई जा सकती है। इसके चार खम्भों के लिए लकड़ी को जगंल से प्राप्त किया जा सकता है। छत को पत्तियों से ढका जा सकता है। इसके भीतरी भाग को बुहारा जा सकता है और उसमें शान्तिपूर्वक रहा जा सकता है। मनुष्य प्रत्येक अवस्था में छोटी-सी कुटिया में रह सकता है, एक तुलसी का पौधा लगाकर प्रातःकाल उसे सींच सकता है, इसकी स्तुति कर सकता है और हरे कृष्ण महामन्त्र का निरन्तर जप कर सकता है। इस तरह से मनुष्य तेजी से

आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। यह तनिक भी कठिन नहीं है। बस, गुरु के आदेशों का कठोरता से पालन करना होता है। तब समय के साथ हर बात सफल होगी। जहाँ तक भोजन का प्रश्न है, उसमें कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती। यदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हर एक को खाद्य प्रदान करते हैं, तो भला वे अपने भक्त को क्यों नहीं देंगे? कभी-कभी तो भक्त कुटी बनाने की भी झंझट मोल नहीं लेता। वह पर्वत की गुफा में ही जाकर रहता है। वह गुफा में, नदी के तट पर बनी झोपड़ी में, महल में या न्यूयार्क या लन्दन जैसे विशाल नगर में निवास कर सकता है। हर अवस्था में वह भक्त अपने गुरु के उपदेशों का पालन कर सकता है और तुलसी के पौधे को सींचकर तथा हरे कृष्ण मन्त्र का जप करके भक्ति में लग सकता है। वह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा हमारे गुरु भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज के उपदेशानुसार विश्व के किसी भी भाग में जाकर लोगों को विधि-विधानों का पालन करके, तुलसी के पौधे की पूजा करके और निरन्तर हरे-कृष्ण महामन्त्र का जप करके भगवद्भक्त बनने का उपदेश दे सकता है।

আমি তোমায় বহু অন্ন পাঠাইমু দিনে ।
সেই অন্ন লবে, যত খাও দুই-জনে'' ॥২৬২॥

आमि तोमाय बहु अन्न पाठाइमु दिने ।
सेइ अन्न लबे, यत खाओ दुइ-जने" ॥ २६२॥

आमि—मैं; **तोमाय**—तुम्हारे लिए; **बहु**—बहुत; **अन्न**—अन्न; **पाठाइमु**—भेजूँगा; **दिने**—प्रतिदिन; **सेइ**—वह; **अन्न**—अन्न; **लबे**—तुम लोगे; **यत**—जो कुछ भी; **खाओ**—खा सकते हो; **दुइ-जने**—दोनों।

अनुवाद

"नारद मुनि ने आगे कहा, 'मैं तुम दोनों को नित्य प्रति पर्याप्त भोजन भेज दिया करूँगा, जिससे तुम इच्छानुसार भोजन कर सकोगे।'

तात्पर्य

जब मनुष्य कृष्णभावनामृत स्वीकार करता है, तब उसे भौतिक आवश्यकताओं की परवाह नहीं करनी चाहिए। कृष्ण कहते हैं कि वे अपने भक्तों की सारी आवश्यकताओं को स्वयं वहन करते हैं—*योगक्षेम वहाम्यहम्।*

आखिर मनुष्य जीवन की आवश्यकताओं के प्रति चिन्तित क्यों हो? सिद्धान्त यह होना चाहिए कि जितने की नितान्त आवश्यकता हो, उससे अधिक की इच्छा वह न करे। नारद मुनि शिकारी को उपदेश देते हैं कि जो उसे तथा उसकी पत्नी के लिए नितान्त आवश्यक हो उतना ही वह स्वीकार करे। भक्त को चाहिए कि खाने के लिए जो नितान्त आवश्यक वस्तुएँ हों, उन्हीं का उपयोग करे और अनावश्यक आवश्यकताओं को जन्म न दे।

তবে সেই মৃগাদি তিনে নারদ সুস্থ কৈল ।
সুস্থ হঞা মৃগাদি তিনে ধাঞা পলাইল ॥২৬৩॥

তবে সেই মৃগাদি তিনে নারদ সুস্থ কৈল ।
সুস্থ হঞা মৃগাদি তিনে ধাঞা পলাইল ॥ ২৬৩॥

তবে—फिर; **সেই**—उन; **মৃগ-আদি**—हिरण आदि पशु; **তিনে**—तीनों को; **নারদ**—नारद मुनि ने; **সুস্থ কৈল**—स्वस्थ कर दिया; **সুস্থ হঞা**—स्वस्थ होकर; **মৃগ-আদি**—हिरण आदि पशु; **তিনে**—तीनों; **ধাঞা পলাইল**—शीघ्र उस स्थान से भाग गये।

अनुवाद

"तत्पश्चात् वे तीनों पशु जो अधमरे थे, नारद मुनि द्वारा पुनः जीवित कर दिये गये। वे पशु उठकर तेजी से भाग गये।

দেখিয়া ব্যাধের মনে হৈল চমৎকার ।
ঘরে গেল ব্যাধ, গুরুকে করি' নমস্কার ॥২৬৪॥

দেখিয়া ব্যাধের মনে হৈল চমৎকার ।
ঘরে গেল ব্যাধ, গুরুকে করি' নমস্কার ॥ ২৬৪॥

দেখিয়া—देखकर; **ব্যাধের**—शिकारी के; **মনে**—मन में; **হৈল**—हो गया; **চমৎকার**—आश्चर्य; **ঘরে**—घर पर; **গেল**—गया; **ব্যাধ**—शिकारी; **গুরুকে**—गुरु को; **করি' নমস্কার**—प्रणाम करके।

अनुवाद

"जब शिकारी ने अधमरे पशुओं को भागते देखा, तो वह आश्चर्यचकित रह गया। तब उसने नारद मुनि को सादर नमस्कार किया और वह अपने घर लौट आया।

यथा-स्थाने नारद गेला, व्याध घरे आइल ।
नारदेर उपदेशे सकल करिल ॥ २६५ ॥

यथा-स्थाने नारद गेला, व्याध घरे आइल ।
नारदेर उपदेशे सकल करिल ॥ २६५ ॥

यथा-स्थाने—उचित स्थान पर; **नारद**—नारद; **गेला**—गये; **व्याध**—शिकारी; **घरे आइल**—अपने घर वापस आ गया; **नारदेर उपदेशे**—नारद मुनि के उपदेशानुसार; **सकल करिल**—उसने सब कुछ किया।

अनुवाद

"इसके बाद नारद मुनि अपने गन्तव्य को चले गये। वह शिकारी घर लौटकर अपने गुरु नारद के उपदेशों का अक्षरशः पालन करने लगा।

तात्पर्य

आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रामाणिक गुरु होना आवश्यक है और उन्नति के प्रति आश्वस्त रहने के लिए उनके उपदेशों का पालन करना चाहिए।

ग्रामे ध्वनि हैल,—व्याध 'वैष्णव' हइल ।
ग्रामेर लोक सब अन्न आनिते लागिल ॥ २६६ ॥

ग्रामे ध्वनि हैल,—व्याध 'वैष्णव' हइल ।
ग्रामेर लोक सब अन्न आनिते लागिल ॥ २६६ ॥

ग्रामे—गाँव में; **ध्वनि हैल**—खबर फैल गई; **व्याध**—शिकारी; **वैष्णव हइल**—एक वैष्णव (भगवान् विष्णु का एक भक्त तथा सेवक) बन गया है; **ग्रामेर लोक**—गाँव के लोग; **सब**—सभी प्रकार के; **अन्न**—अन्न; **आनिते लागिल**—लाने लगे।

अनुवाद

"यह समाचार सारे गाँव में फैल गया कि शिकारी वैष्णव बन गया है। सारे ग्रामवासी भिक्षा लाकर उस वैष्णव को देने लगे जो पहले एक शिकारी था।

तात्पर्य

जनता का कर्तव्य है कि जब किसी सन्त पुरुष, वैष्णव या ब्राह्मण का दर्शन करने जाए, तो उसे कोई भेंट प्रदान करे। हर वैष्णव कृष्ण पर आश्रित है और कृष्ण जीवन की सारी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं, यदि

कोई वैष्णव अपने गुरु द्वारा निर्दिष्ट नियमों का पालन करता हो। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अनेक गृहस्थ हैं। वे आन्दोलन में सम्मिलित होकर संघ के केन्द्रों में रहते हैं, किन्तु यदि वे इस अवसर का लाभ उठाते हैं, परन्तु कोई काम नहीं करते और आन्दोलन के खर्च पर प्रसाद खाकर सोते रहते हैं, तो वे अपने आपको खतरनाक स्थिति में डाल देते हैं। इसलिए उपदेश दिया जाता है कि गृहस्थों को मन्दिर में नहीं रहना चाहिए। उन्हें मन्दिर से बाहर रहकर अपना भरण-पोषण करना चाहिए। किन्तु यदि गृहस्थ लोग अधिकारियों के आदेशानुसार भगवान् की सेवा में पूरी तरह लगे रहते हैं, तो मन्दिर में उनके निवास करने में कोई हानि नहीं है। किसी भी स्थिति में मन्दिर को खाने तथा सोने का स्थान नहीं बनना चाहिए। मन्दिर के प्रबन्धक को इन बातों के विषय में विशेष रूप से सतर्क रहना चाहिए।

एक-दिन अन्न आने दश-विश जने ।
दिने तत लय, यत खाय दुई जने ॥२६७॥

एक अन्न आने दश बिश जने ।
दिने तत लय, यत खाय दुइ जने ॥ २६७॥

एक-दिन—एक दिन में; **अन्न**—अन्न; **आने**—लाते; **दश-बिश जने**—दस बीस लोगों के लिए पर्याप्त; **दिने**—दिन में; **तत लय**—उतना ही स्वीकार करते; **यत**—जितना; **खाय दुइ जने**—दोनों खा सकते थे।

अनुवाद

"एक दिन में दस या बीस लोगों के लिए पर्याप्त भोजन आता, किन्तु शिकारी तथा उसकी पत्नी उतना ही स्वीकार करते, जितना वे दोनों खा सकते थे।

एक-दिन नारद कहे,—"शुनह, पर्वते ।
आमार एक शिष्य आछे, चलह देखिते" ॥२६८॥

एक-दिन नारद कहे,—"शुनह, पर्वते ।
आमार एक शिष्य आछे, चलह देखिते" ॥ २६८॥

एक-दिन—एक दिन; **नारद कहे**—नारद मुनि ने कहा; **शुनह**—कृपया सुनो; **पर्वते**—मेरे प्रिय पर्वत; **आमार**—मेरा; **एक**—एक; **शिष्य**—शिष्य; **आछे**—है; **चलह देखिते**—चलो, उसे देखने चलें।

अनुवाद

"एक दिन अपने मित्र पर्वत मुनि से बातें करते हुए नारद मुनि ने उनसे कहा कि चलो, चलकर उनके शिकारी शिष्य को देख आयें।

तबे दुई ऋषि आइला सेई व्याध-स्थाने ।
दूर हैते व्याध पाइल गुरुर दरशने ॥२६९॥
तबे दुइ ऋषि आइला सेइ व्याध-स्थाने ।
दूर हैते व्याध पाइल गुरुर दरशने ॥ २६९ ॥

तबे—फिर; **दुइ ऋषि**—दोनों ऋषि; **आइला**—आये; **सेइ व्याध-स्थाने**—उस शिकारी के स्थान पर; **दूर हैते**—कुछ दूरी से; **व्याध**—शिकारी को; **पाइल**—हो गये; **गुरुर दरशने**—अपने गुरु के दर्शन।

अनुवाद

"जब दोनों ऋषि शिकारी के स्थान के निकट पहुँचे, तो शिकारी ने दूर से ही उन्हें आते देखा।

आस्ते-व्यस्ते धाञा आसे, पथ नाहि पाय ।
पथेर पिपीलिका इति-उति धरे पाय ॥२७०॥
आस्ते-व्यस्ते धाञा आसे, पथ नाहि पाय ।
पथेर पिपीलिका इति-उति धरे पाय ॥ २७० ॥

आस्ते-व्यस्ते—अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक; **धाञा**—भागकर; **आसे**—आ रहा था; **पथ नाहि पाय**—मार्ग नहीं पा रहा था; **पथेर**—मार्ग में; **पिपीलिका**—चींटियाँ; **इति-उति**—इधर-उधर; **धरे पाय**—पैर रख रहा था।

अनुवाद

"वह शिकारी बड़ी तेजी से अपने गुरु की ओर दौड़ पड़ा, किन्तु वह पृथ्वी पर गिरकर प्रणाम नहीं कर सका, क्योंकि वहाँ चीटियाँ पाँवों के चारों ओर इधर-उधर दौड़ रही थीं।

দণ্ডবত্স্থানে পিপীলিকারে দেখিয়া ।
বস্ত্রে স্থান ঝাড়ি' পড়ে দণ্ডবৎ হঞা ॥ ২৭১ ॥

दण्डवत्स्थाने पिपीलिकारे देखिया ।
वस्त्रे स्थान झाड़ि' पड़े दण्डवत् हञा ॥ २७१ ॥

दण्डवत्-स्थाने—जिस स्थान पर वह प्रणाम करना चाहता था, वहाँ; **पिपीलिकारे देखिया**—चींटियों को देखकर; **वस्त्रे**—कपड़े द्वारा; **स्थान झाड़ि'**—स्थान को झाड़कर; **पड़े दण्ड-वत् हञा**—दण्डवत प्रणाम करने लगा।

अनुवाद

"चींटियों को देखकर शिकारी ने उन्हें एक वस्त्र से हटाया। भूमि को इस तरह चीटियों से साफ करके वह नमस्कार करने के लिए दण्डवत् गिर पड़ा।

तात्पर्य

दण्ड शब्द का अर्थ है "डण्डा" और *वत्* शब्द का अर्थ है "की तरह।" गुरु को नमस्कार करने के लिए शिष्य को भूमि पर डण्डे की तरह गिरना चाहिए। यही *दण्डवत्* है।

নারদ কহে,—"ব্যাধ, এই না হয় আশ্চর্য ।
হরি-ভক্ত্যে হিংসা-শূন্য হয় সাধু-বর্য ॥ ২৭২ ॥

नारद कहे,—"व्याध, एइ ना हय आश्चर्य ।
हरि-भक्त्ये हिंसा-शून्य हय साधु-वर्य ॥ २७२ ॥

नारद कहे—नारद मुनि ने कहा; **व्याध**—मेरे प्रिय शिकारी; **एइ ना हय आश्चर्य**—यह तुम्हारे लिए कोई आश्चर्य नहीं है; **हरि-भक्त्ये**—हरि-भक्ति में प्रगति द्वारा; **हिंसा-शून्य हय**—व्यक्ति हिंसा रहित तथा ईष्या मुक्त होकर; **साधु-वर्य**—ईमानदार सज्जनों में श्रेष्ठ व्यक्ति बन जाता है।

अनुवाद

"नारद मुनि ने कहा, 'हे शिकारी, ऐसा आचरण तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है। भक्ति में मनुष्य स्वतः अहिंसक बन जाता है। वह साधु-पुरुषों में सर्वोत्तम होता है।

तात्पर्य

इस श्लोक में आये *साधुवर्य* शब्द का अर्थ है "साधु पुरुषों में श्रेष्ठ।" आजकल ऐसे अनेक तथाकथित साधु पुरुष हैं, जो पशु-पक्षियों को मारने में दक्ष हैं। तो भी वे ऐसे धर्मावलम्बी होते हैं, जिसमें हिंसा सर्वथा वर्जित है। नारद मुनि तथा वैदिक संस्कृति के अनुसार पशु-हिंसक साधु पुरुष भी नहीं हैं, धार्मिक कहना तो दूर रहा। एक धार्मिक पुरुष या भगवद्भक्त को अहिंसक होना चाहिए। धार्मिक व्यक्ति का स्वभाव ही ऐसा होता है। हिंसक होते हुए अपने आपको धार्मिक व्यक्ति घोषित करना विरोधाभास है। ऐसा दिखावा नारद मुनि तथा गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा मान्य नहीं है।

एते न ह्यद्भुता व्याध तवाहिंसादयो गुणाः ।
हरि-भक्तौ प्रवृत्ता ये न ते स्युः पर-तापिनः ॥ २७३॥

एते न ह्यद्भुता व्याध तवाहिंसादयो गुणाः ।
हरि-भक्तौ प्रवृत्ता ग्रे न ते स्युः पर-तापिनः ॥ २७३॥

एते—ये सभी; **न**—नहीं; **हि**—निश्चित रूप से; **अद्भुताः**—अद्भुत; **व्याध**—हे शिकारी; **तव**—तुम्हारे; **अहिंसा-आदयः**—अहिंसा आदि; **गुणाः**—गुण; **हरि-भक्तौ**—हरि भक्ति में; **प्रवृत्ताः**—लगे हुए; **ग्रे**—जो; **न**—नहीं; **ते**—वे; **स्युः**—हैं; **पर-तापिनः**—दूसरे जीवों को कष्ट देने वाले।

अनुवाद

'"हे शिकारी, तुमने अहिंसा जैसे जिन सद्गुणों को विकसित कर रखा है, वे बहुत आश्चर्यजनक नहीं हैं, क्योंकि भगवद्भक्ति में लगे व्यक्ति कभी भी अन्यों को ईर्ष्यावश पीड़ा पहुँचाने की मनोवृत्ति नहीं रखते।'

तात्पर्य

यह *स्कन्द पुराण* से उद्धृत श्लोक है।

तबे सेइ व्याध दोंहारे अङ्गने आनिल ।
कुशासन आनि' दोंहारे भक्त्ये वसाइल ॥ २७४॥

तबे सेइ व्याध दोंहारे अङ्गने आनिल ।
कुशासन आनि' दोंहारे भक्त्ये वसाइल ॥ २७४॥

तबे—फिर; **सेइ**—वह; **व्याध**—शिकारी; **दोंहारे**—नारद मुनि तथा पर्वत मुनि दोनों को; **अङ्गने आनिल**—अपने घर के आँगन में ले आया; **कुश-आसन आनि'**—कुशा के आसन लाकर; **दोंहारे**—उन दोनों को; **भक्त्ये**—भक्तिभाव के साथ; **वसाइल**—बिठाया।

अनुवाद

"तब उस शिकारी ने दोनों ऋषियों का अपने आँगन में स्वागत किया। उसने उनके बैठने के लिए कुश की चटाई बिछा दी और बड़ी ही भक्ति के साथ उनसे बैठने की प्रार्थना की।

जल आनि' भक्त्ये दोँहार पाद प्रक्षालिल ।
सेइ जल स्त्री-पूरुषे पिया शिरे लइल ॥२७५॥

जल आनि' भक्त्ये दोंहार पाद प्रक्षालिल ।
सेइ जल स्त्री-पुरुषे पिया शिरे लइल ॥ २७५ ॥

जल आनि'—जल लाकर; **भक्त्ये**—भक्ति के साथ; **दोंहार**—दोनों के; **पाद प्रक्षालिल**—चरण धोये; **सेइ जल**—वह जल; **स्त्री-पुरुषे**—पति पत्नी ने; **पिया**—पिया; **शिरे लइल**—अपने सिरों पर छिड़का।

अनुवाद

"तब वह जल ले आया और बड़ी ही भक्ति के साथ उसने जल से ऋषियों का पाद-प्रक्षालन किया। तब पति-पत्नी दोनों ने उस जल को पिया और अपने सिरों पर छिड़का।

तात्पर्य

गुरु या गुरु के समकक्ष अन्य किसी का स्वागत करते हुए इसी विधि का पालन करना चाहिए। जब गुरु अपने शिष्यों के घर जाता है, तो शिष्यों को इस शिकारी के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि दीक्षा के पूर्व कौन कैसा था। दीक्षा के बाद उसे यहाँ पर उल्लिखित शिष्टाचार को सीखना चाहिए।

कम्प-पुलकाश्रु हैल कृष्ण-नाम गाञा ।
ऊर्ध्व बाहु नृत्य करे वस्त्र उड़ाञा ॥२७६॥

कम्प-पुलकाश्रु हैल कृष्ण-नाम गाञा ।
ऊर्ध्व बाहु नृत्य करे वस्त्र उड़ाञा ॥ २७६ ॥

कम्प—कँपन; **पुलक-अश्रु**—आँसु और आनन्द; **हैल**—हो गये; **कृष्ण-नाम गाञा**—हरे कृष्ण महामन्त्र गाकर; **ऊर्ध्व बाहु**—भुजाओं को उठाकर; **नृत्य करे**—नाचने लगा; **वस्त्र उड़ाञा**—अपने वस्त्र ऊपर नीचे फहराने लगा।

अनुवाद

"जब उस शिकारी ने अपने गुरु के समक्ष हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन किया, तो उसका शरीर काँपने लगा और नेत्रों से अश्रुओं की धारा बह चली। भावविभोर होकर वह अपने हाथ उठाकर अपने वस्त्रों को ऊपर-नीचे लहराता हुआ नृत्य करने लगा।

দেখিয়া ব্যাধের প্রেম পর্বত-মহামুনি ।
নারদেরে কহে,—তুমি হও স্পর্শ-মণি ॥২৭৭॥
देखिया व्याधेर प्रेम पर्वत-महामुनि ।
नारदेरे कहे,—तुमि हओ स्पर्श-मणि ॥ २७७ ॥

देखिया—देखकर; **व्याधेर**—शिकारी का; **प्रेम**—प्रेमभाव; **पर्वत-महा-मुनि**—महामुनि पर्वत ने; **नारदेरे कहे**—नारद मुनि से कहा; **तुमि हओ स्पर्श-मणि**—आप एक पारसमणि के समान हैं।

अनुवाद

"जब पर्वत मुनि ने शिकारी के भावमय प्रेम के लक्षणों को देखा तो वे नारद से बोले, 'निश्चय ही आप स्पर्शमणि हो।'

तात्पर्य

जब स्पर्शमणि लोहे का स्पर्श करता है, तो वह लोहे को सोने में बदल देता है। पर्वत मुनि ने नारद मुनि को स्पर्शमणि इसीलिए कहा, क्योंकि उनके स्पर्श से वह अधम शिकारी उच्च पद को प्राप्त होकर पूर्ण वैष्णव बन गया। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने कहा है कि वैष्णव के पद की परीक्षा यह देखकर की जा सकती है कि वह कितना उत्तम स्पर्शमणि है—अर्थात् यह देखकर कि उसने अपने जीवन में कितने वैष्णव बनाये हैं। वैष्णव को स्पर्शमणि होना चाहिए, जिससे वह अपने उपदेश द्वारा दूसरों को वैष्णव बना सके, भले ही

लोग उस शिकारी जैसे पतित क्यों न हों। ऐसे अनेकानेक तथाकथित उन्नत भक्त हैं, जो अपने निजी लाभ के लिए एकान्त स्थान में बैठे रहते हैं। वे प्रचार करने और दूसरों को वैष्णव बनाने के लिए बाहर नहीं जाते, अतएव वे स्पर्शमणि नहीं कहे जा सकते। *कनिष्ठ अधिकारी* भक्त दूसरों को वैष्णव नहीं बना सकते, किन्तु मध्यम अधिकारी वैष्णव उपदेश द्वारा ऐसा कर सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने अनुयायियों को वैष्णवों की संख्या बढ़ाने का उपदेश दिया है।

यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश।
आमार आज्ञाय गुरु हञा तार' एइ देश॥

(*चैतन्य-चरितामृत,* मध्य ७.१२८)

यह श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा है कि हर व्यक्ति वैष्णव तथा गुरु बने। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनकी गुरु-शिष्य परम्परा के आदेशों का पालन करते हुए मनुष्य गुरु बन सकता है, क्योंकि इसकी विधि अत्यन्त सरल है। मनुष्य कृष्ण के उपदेशों के प्रचारार्थ कहीं भी जा सकता है। *भगवद्गीता* कृष्ण के उपदेश ही हैं; अतएव प्रत्येक वैष्णव का कर्तव्य है कि अपने देश में या विदेश में भ्रमण करके *भगवद्गीता* का प्रचार करे। नारद मुनि के पदचिह्नों पर चलते हुए यही *स्पर्शमणि* की परीक्षा है।

''अहो धन्योऽसि देवर्षे कृपया यस्य तत्क्षणात् ।
नीचोऽप्युत्पुलको लेभे लुब्धको रतिमच्युते'' ॥२७८॥

"अहो धन्योऽसि देवर्षे कृपया ग्रस्य तत्क्षणात् ।
नीचोऽप्युत्पुलको लेभे लुब्धको रतिमच्युते" ॥ २७८ ॥

अहो—ओह; **धन्यः**—धन्य हैं; **असि**—आप; **देव-ऋषे**—हे देवर्षि; **कृपया**—कृपा द्वारा; **ग्रस्य**—जिनकी; **तत्-क्षणात्**—तुरन्त; **नीचः अपि**—नीच व्यक्ति भी; **उत्पुलकः**—प्रेमभाव में आनन्दित होकर; **लेभे**—प्राप्त करता है; **लुब्धकः**—एक शिकारी; **रतिम्**—आकर्षण; **अच्युते**—भगवान् अच्युत में।

अनुवाद

"पर्वत मुनि ने आगे कहा, 'हे मित्र नारद, आप तुम देवताओं में ऋषि

के रूप में विख्यात हैं। आपकी कृपा से इस शिकारी जैसा निम्न-जन्मा व्यक्ति भी तुरन्त कृष्ण के प्रति अनुरक्त हो सकता है।'

तात्पर्य

शुद्ध वैष्णव शास्त्रों के वचनों पर विश्वास करता है। यह श्लोक वैदिक साहित्य *स्कन्द-पुराण* से उद्धृत है।

नारद कहे,—'वैष्णव, तोमार अन्न किछु आय?' ।
व्याध कहे,—'यारे पाठाओ, सेइ दिया याय ॥२७९॥

नारद कहे,—'वैष्णव, तोमार अन्न किछु आय?' ।
व्याध कहे, "यारे पाठाओ, सेइ दिया याय ॥ २७९ ॥

नारद कहे—नारद मुनि ने कहा; **वैष्णव**—हे वैष्णव; **तोमार**—तुम्हारा; **अन्न**—अन्न; **किछु आय**—कुछ आता है; **व्याध कहे**—शिकारी ने उत्तर दिया; **यारे पाठाओ**—आप जिसे भी भेजते हैं; **सेइ**—वह व्यक्ति; **दिया**—कुछ देकर; **याय**—जाता है।

अनुवाद

"तब नारद मुनि ने शिकारी से पूछा, 'हे वैष्णव, क्या तुम्हारे पास अपने जीवन-निर्वाह के लिए कोई आय है?' शिकारी ने उत्तर दिया, "हे गुरु, आप जिसे भी भेजते हैं, वह जब मुझसे मिलने आता है, कुछ न कुछ मुझे देता है।'

तात्पर्य

इससे *भगवद्गीता* के उस कथन (९.२२) की पुष्टि होती है कि भगवान् अपने वैष्णव भक्त की सारी आवश्यकताओं को वहन करते हैं। नारद मुनि ने पूर्व-शिकारी से पूछा कि वह किस तरह उदर-पोषण करता है, तो उसने उत्तर दिया कि जो भी उससे मिलने आता है, उसके उदर-पोषण के लिए कुछ न कुछ ले आता है। प्रत्येक के हृदय में स्थित कृष्ण कहते हैं, "मैं वैष्णव की सारी आवश्यकताओं को स्वयं वहन करता हूँ।" वे किसी को भी इसे सम्पन्न करने का आदेश दे सकते हैं। हर व्यक्ति वैष्णव को कुछ न कुछ देने को तैयार रहता है और यदि वैष्णव पूर्णतया भक्ति में लगा हो, तो उसे अपने उदर-पोषण के लिए कदापि चिन्तित नहीं होना चाहिए।

এত অন্ন না পাঠাও, কিছু কার্য নাই ।
সবে দুই-জনার যোগ্য ভক্ষ্য-মাত্র চাই'' ॥২৮০॥

এত অন্ন না পাঠাও, কিছু কার্য্য নাই ।
সবে দুই-জনার য্যোগ্য ভক্ষ্য-মাত্র চাই" ॥ ২৮০॥

এত অন্ন—इतना अन्न; **না পাঠাও**—आप मत भिजवाइये; **কিছু কার্য্য নাই**—ऐसी आवश्यकता नहीं है; **সবে**—केवल; **দুই-জনার**—दो लोगों के लिए; **য্যোগ্য**—आवश्यक; **ভক্ষ্য-মাত্র**—खाने के लिए; **চাই**—हम चाहते हैं।

अनुवाद

"उस पूर्व-शिकारी ने कहा, 'कृपया इतना अन्न मत भेजें। केवल उतना ही भेजें जितना हम दोनों के लिए पर्याप्त हो, अधिक नहीं।'

तात्पर्य

पूर्व-शिकारी केवल दो व्यक्तियों के लिए पर्याप्त भोजन चाहता था, अधिक नहीं। वैष्णव के लिए अगले दिन के लिए भोजन का संग्रह करना आवश्यक नहीं है। उसे केवल एक दिन तक पर्याप्त भोजन स्वीकार करना चाहिए। अगले दिन उसे पुनः भगवत्कृपा पर आश्रित रहना चाहिए। यही श्री चैतन्य महाप्रभु का आदेश है। जब उनका निजी सेवक गोविन्द कभी-कभी *हरीतकी* का संग्रह करता, तो श्री चैतन्य महाप्रभु उसे यह कहकर भर्त्सना करते, "तुमने अगले दिन के लिए यह संग्रह क्यों किया?" श्रील रूप गोस्वामी तथा अन्य भक्त अपने उदर-पोषण के लिए हररोज द्वार-द्वार जाकर भिक्षा माँगा करते थे और वे अपने आश्रम में अगले दिन के लिए भोजन-संग्रह नहीं होने देते थे। हमे यह सोचकर भौतिक दृष्टि से गणना नहीं करना चाहिए कि, "एक सप्ताह के लिए भोजन का संग्रह करना श्रेयस्कर होगा। हम भगवान् को क्यों कष्ट दें कि वे नित्य भोजन लायें?" भक्त को आश्वस्त रहना चाहिए कि भगवान् नित्य ही भोजन देंगे। अगले दिन के लिए भोजन संग्रह करने की आवश्यकता नहीं है।

নারদ কহে,—'ঐছে রহ, তুমি ভাগ্যবান্' ।
এত বলি' দুই-জন হইলা অন্তর্ধান ॥২৮১॥

नारद कहे,—'ऐछे रह, तुमि भाग्यवान्' ।
एत बलि' दुइ-जन हइला अन्तर्धान ॥ २८१ ॥

नारद कहे—नारद मुनि ने कहा; **ऐछे रह**—ऐसे ही जीवन यापन करो; **तुमि भाग्यवान्**—निश्चित रूप से तुम अत्यन्त भाग्यवान हो; **एत बलि'**—यह कहकर; **दुइ-जन**—नारद मुनि और पर्वत मुनि; **हइला अन्तर्धान**—अन्तर्धान हो गये।

अनुवाद

"नारद मुनि ने एक दिन से अधिक भोजन की आपूर्ति की इच्छा न करने के प्रति सहमति व्यक्त की और उसे यह कहते हुए आशीर्वाद दिया कि, 'तुम भाग्यशाली हो।' तत्पश्चात् नारद मुनि तथा पर्वत मुनि उस स्थान से अन्तर्धान हो गये।

एइ त' कहिलुँ तोमाय व्याधेर आख्यान ।
या शुनिले हय साधु-सङ्ग-प्रभाव-ज्ञान ॥२८२॥

एइ त' कहिलुँ तोमाय व्याधेर आख्यान ।
या शुनिले हय साधु-सङ्ग-प्रभाव-ज्ञान ॥ २८२ ॥

एइ त' कहिलुँ—इस प्रकार मैंने बताई; **तोमाय**—तुम्हें; **व्याधेर आख्यान**—शिकारी की कहानी; **या शुनिले**—जिसे सुनकर; **हय**—होता है; **साधु-सङ्ग**—भक्तों के संग के; **प्रभाव**—प्रभाव का; **ज्ञान**—ज्ञान।

अनुवाद

"इस प्रकार मैंने शिकारी की घटना का वर्णन किया। इस कथा को सुनकर भक्तों की संगति के प्रभाव को समझा जा सकता है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु इस बात पर बल देना चाह रहे थे कि पुरुषों में अधम, एक शिकारी तक नारद मुनि अथवा उनकी प्रामाणिक गुरु-शिष्य परम्परा के भक्त की संगति करने से सर्वोच्च वैष्णव बन गया।

एइ आर तिन अर्थ गणनाते पाइल ।
एइ दुई अर्थ मिलि' 'छाब्बिश' अर्थ हैल ॥२८३॥

एइ आर तिन अर्थ गणनाते पाइल ।
एइ दुइ अर्थ मिलि' 'छाब्बिश' अर्थ हैल ॥ २८३ ॥

एइ—यह उदाहरण; **आर**—अन्य; **तिन अर्थ**—तीन अर्थ; **गणनाते**—गिनने से; **पाइल**—हमें प्राप्त हो गये; **एइ दुइ अर्थ मिलि'**—इन दो अर्थों को जोड़कर; **छाब्बिश**—छब्बीस; **अर्थ**—अर्थ; **हैल**—हो गये।

अनुवाद

"इस तरह हमें (आत्माराम श्लोक के) तीन अर्थ और मिल गये हैं। अन्य अर्थों के साथ इन्हें मिलाने पर अर्थों की कुल संख्या छब्बीस हो जाती है।

आर अर्थ शुन, याहा——अर्थेर भाण्डार ।
स्थूले 'दुई' अर्थ, सूक्ष्मे 'बत्रिश' प्रकार ॥ २८४॥

आर अर्थ शुन, याहा——अर्थेर भाण्डार ।
स्थूले 'दुइ' अर्थ, सूक्ष्मे 'बत्रिश' प्रकार ॥ २८४॥

आर—अन्य; **अर्थ**—अर्थ; **शुन**—सुनो; **याहा**—जो; **अर्थेर भाण्डार**—ज्ञान के भण्डार हैं; **स्थूले**—स्थूल रूप से; **दुइ अर्थ**—दो अर्थ; **सूक्ष्मे**—सूक्ष्म अर्थ द्वारा; **बत्रिश**—बत्तीस; **प्रकार**—प्रकार के।

अनुवाद

"एक अन्य अर्थ भी है, जो नाना प्रकार के अर्थों से पूर्ण है। वस्तुतः दो स्थूल अर्थ हैं और बत्तीस सूक्ष्म अर्थ हैं।

तात्पर्य

जिन दो स्थूल अर्थों का प्रसंग आया है वे वैधी भक्ति तथा रागानुगा भक्ति हैं। इसके अतिरिक्त बत्तीस सूक्ष्म अर्थ भी हैं। वैधी भक्ति के अन्तर्गत आत्माराम के अर्थ के आधार पर सोलह अर्थ हैं (१) भगवान् के निजी पार्षद के रूप में भगवान् का दास, (२) निजी मित्र, (३) माता-पिता या उसी प्रकार के गुरुजन, (४) प्रेयसी (कान्ता), (५) आध्यात्मिक अनुशीलन द्वारा उन्नत पद को प्राप्त (साधनसिद्ध) दास, (६) साधन-सिद्ध मित्र, (७) साधन-सिद्ध माता-पिता तथा ज्येष्ठ भक्तगण, (८) साधन-सिद्ध कान्ता या सखी, (९) दास के रूप में प्रौढ़ भक्त, (१०) मित्र के रूप में उन्नत भक्त, (११) माता-पिता तथा गुरुजन के रूप में उन्नत भक्त, (१२) पत्नी तथा कान्ता के रूप में उन्नत भक्त, (१३) दास के रूप में अपरिपक्व भक्त, (१४) मित्र के रूप में अपरिपक्व

भक्त, (१५) पिता तथा गुरुजन के रूप में कनिष्ठ भक्त तथा (१६) प्रियतमा के रूप में कनिष्ठ भक्त। इसी प्रकार रागानुगा भक्ति के अन्तर्गत भी सोलह प्रकार के पार्षद होते हैं। इस तरह वैधी भक्ति तथा रागानुगा भक्ति शीर्षक के अन्तर्गत कुल भक्तों की संख्या बत्तीस हो जाती है।

'आत्मा'-शब्दे कहे——सर्व-विध भगवान् ।
एक 'स्वयं भगवान्', आर 'भगवान्'-आख्यान ॥ २८५ ॥

'आत्मा'-शब्दे कहे——सर्व-विध भगवान् ।
एक 'स्वयं भगवान्', आर 'भगवान्'-आख्यान ॥ २८५ ॥

आत्मा-शब्दे—*आत्मा* शब्द द्वारा; **कहे**—कहा जाता है; **सर्व-विध भगवान्**—सब प्रकार के भगवान्; **एक**—एक; **स्वयम् भगवान्**—मूल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण; **आर**—दूसरे; **भगवान्-आख्यान**—भगवान् के अंश विस्तार।

अनुवाद

"'आत्मा' शब्द पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समस्त विभिन्न अंशों का द्योतक है। इनमें से एक स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं और शेष कृष्ण के विभिन्न अवतार या अंश हैं।

तात्पर्य

आत्मा शब्द के अन्तर्गत पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सभी प्रकार आ जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि कृष्ण के अनन्त विस्तार हैं। इसका वर्णन *ब्रह्म-संहिता* (५.४६) में हुआ है :

दीपार्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य
दीपायते विवृतहेतुसमानधर्मा।
यस्तादृगेव हि च विष्णुतया विभाति
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

कृष्ण के विस्तारों की उपमा दीपकों से दी गई है, जो एक मूल दीपक से जलाये जाते हैं। सारे गौण दीपक समान रूप में शक्तिशाली होते हैं, किन्तु मूल दीपक वह होता है, जिससे अन्य सारे दीपक जलाये जाते हैं। कृष्ण आदि पूर्ण

पुरुषोत्तम भगवान् हैं और उन्होंने अपना विस्तार बलराम, संकर्षण, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न तथा वासुदेव के रूप में किया है। इस तरह असंख्य अवतार एवं विस्तार हैं, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के नाम से भी जाने जाते हैं।

भगवान् के विविध रूपों के सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि कृष्ण तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं ही, उनके विस्तार भी भगवान् कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण अन्य सारे अवतारों के मूल स्रोत हैं। ज्ञानी तथा योगी भी कृष्ण के स्वरूप का ध्यान करते हैं, किन्तु यह स्वरूप आदि भगवान् का नहीं होता। ऐसे भगवान् तो भगवान् की पूर्ण शक्ति की आंशिक अभिव्यक्ति होते हैं। फिर भी उन्हें भगवान् ही समझना होगा। इस बात को स्पष्ट करने के लिए मनुष्य को इतना ही जानना चाहिए कि वृन्दावन में नन्द महाराज के पुत्र, ग्वालों के मित्र तथा गोपियों के प्रियतम कृष्ण ही वास्तव में आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। उन्हें रागानुग प्रेम द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। यद्यपि उनके विस्तार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कहलाते हैं, किन्तु उन्हें वैधी भक्ति सम्पन्न करके ही प्राप्त किये जा सकते हैं।

তাঁতে রমে যেই, সেই সব—'আত্মারাম' ।
'বিধি-ভক্ত', 'রাগ-ভক্ত',—দুই-বিধ নাম ॥২৮৬॥

তাঁতে রমে যেই, সেই সব—'আত্মারাম' ।
'বিধি-ভক্ত', 'রাগ-ভক্ত',—দুই-বিধ নাম ॥ ২৮৬ ॥

তাঁতে—उन सभी भगवान् में; **রমে**—सेवा का आनन्द लेते हैं; **যেই**—जो; **সেই সব**—वे सभी; **আত্মারাম**—आत्माराम कहलाते हैं; **বিধি-ভক্ত**—विधि नियमों का पालन करने वाले भक्त; **রাগ-ভক্ত**—रागानुगा प्रेम का अनुसरण करने वाले भक्त; **দুই-বিধ নাম**—दो प्रकार के।

अनुवाद

"जो व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा में सदैव लगा रहता है, वह आत्माराम कहलाता है। आत्माराम के दो प्रकार होते हैं। पहला आत्माराम वह है जो वैधी भक्ति में लगा रहता है (वैधी भक्त) तथा दूसरा वह है जो रागानुगा भक्ति में लगा रहता है (राग भक्त)।

দুই-বিধ ভক্ত হয় চারি চারি প্রকার ।
পারিষদ, সাধন-সিদ্ধ, সাধক-গণ আর ॥২৮৭॥

দুই-বিধ ভক্ত হয় চারি চারি প্রকার ।
পারিষদ, সাধন-সিদ্ধ, সাধক-গণ আর ॥ ২৮৭॥

দুই-বিধ ভক্ত—ये दो प्रकार के आत्माराम भक्त; **হয়**—हैं; **চারি চারি প্রকার**—चार-चार भिन्न प्रकार के; **পারিষদ**—पार्षद; **সাধন-সিদ্ধ**—साधना भक्ति के नियमों के पालन द्वारा पार्षदों की स्थिति तक मुक्त; **সাধক-গণ আর**—तथा वे भक्त जो पहले से ही भगवान् की प्रेममयी सेवा में लगे हुए हैं।

अनुवाद

"वैधी तथा रागानुगा भक्ति में लगे आत्मारामों के चार-चार प्रकार हैं। ये हैं—नित्य पार्षद, भक्ति द्वारा सिद्धिप्राप्त पार्षद (साधन-सिद्ध) तथा भक्ति में लगे हुए साधक जिनके दो प्रकार हैं।

জাত-অজাত-রতি-ভেদে সাধক দুই ভেদ ।
বিধি-রাগ-মার্গে চারি চারি—অষ্ট ভেদ ॥২৮৮॥

জাত-অজাত-রতি-ভেদে সাধক দুই ভেদ ।
বিধি-রাগ-মার্গে চারি চারি—অষ্ট ভেদ ॥ ২৮৮॥

জাত-অজাত-রতি-ভেদে—परिपक्व और अपरिपक्व प्रेम के भेद द्वारा; **সাধক দুই ভেদ**—साधक भक्तों के दो भेद हैं; **বিধি**—विधि निषेध से युक्त साधना भक्ति; **রাগ**—रागानुग भक्ति; **মার্গে**—दोनों मार्गों पर; **চারি চারি**—चार प्रकार हैं; **অষ্ট ভেদ**—आठ प्रकार के।

अनुवाद

"भक्ति का अभ्यास करने वाले (साधक) या तो परिपक्व होते हैं (जात) अथवा अपरिपक्व (अजात) होते हैं। अतः साधक दो प्रकार के होते हैं। चूँकि भक्तगण या तो वैधी भक्ति करते हैं या रागानुगा भक्ति और चूँकि इन दोनों के अन्तर्गत चार-चार प्रकार होते हैं, अतः कुल मिलाकर आठ भेद हो जाते हैं।

বিধি-ভক্ত্যে নিত্য-সিদ্ধ পারিষদ—'দাস' ।
'সখা' 'গুরু', 'কান্তা-গণ',—চারি-বিধ প্রকাশ ॥২৮৯॥

विधि-भक्त्ये नित्य-सिद्ध पारिषद—'दास'।
'सखा' 'गुरु', 'कान्ता-गण',—चारि-विध प्रकाश ॥ २८९॥

विधि-भक्त्ये—विधी भक्ति द्वारा; **नित्य-सिद्ध पारिषद**—नित्यसिद्ध पार्षद; **दास**—सेवक; **सखा गुरु कान्ता-गण**—सखा, वरिष्ठ तथा प्रेयसी; **चारि-विध प्रकाश**—ये चार प्रकार से प्रकट होते हैं।

अनुवाद

"वैधी भक्ति करने से मनुष्य नित्यसिद्ध पार्षद के पद को प्राप्त होता है। यथा दास, सखा, गुरुजन या प्रियतमा। इनमें से प्रत्येक के चार प्रकार हैं।

साधन-सिद्ध—दास, सखा, गुरु, कान्त-गण ।
जात-रति साधक-भक्त—चारि-विध जन ॥२९०॥

साधन-सिद्ध—दास, सखा, गुरु, कान्ता-गण ।
जात-रति साधक-भक्त—चारि-विध जन ॥ २९०॥

साधन-सिद्ध—जो साधना द्वारा सिद्ध हो गये हैं; **दास**—सेवक; **सखा**—मित्र; **गुरु**—अग्रज; **कान्ता-गण**—प्रिय गोपियाँ; **जात-रति साधक-भक्त**—जो भक्त सेवा द्वारा परिपक्व हो जाते हैं; **चारि-विध जन**—वे भी चार प्रकार के हैं।

अनुवाद

"जिन्होंने भक्ति के द्वारा सिद्धि प्राप्त की है (साधन-सिद्ध) उनमें दास, सखा, गुरुजन तथा प्रेमिकाएँ (गोपियाँ)—ये चार आते हैं। इसी प्रकार परिपक्व भक्तों (जातरति साधक भक्तों) के चार प्रकार हैं।

अजात-रति साधक-भक्त,—এ চারি প্রকার ।
বিধি-মার্গে ভক্তে ষোড়শ ভেদ প্রচার ॥২৯১॥

अजात-रति साधक-भक्त,—ए चारि प्रकार ।
विधि-मार्गे भक्ते षोड़श भेद प्रचार ॥ २९१॥

अजात-रति साधक-भक्त—भक्ति में लगा हुआ अपरिपक्व भक्त जिसको आकर्षण उत्पन्न नहीं हुआ है; **ए चारि प्रकार**—ये भी चार प्रकार हैं; **विधि-मार्गे**—वैधी साधना भक्ति के मार्ग पर; **भक्ते**—भक्तों के; **षोड़श भेद प्रचार**—सोलह प्रकार के भेद हैं।

अनुवाद

"वैधी भक्ति के अन्तर्गत अपरिपक्व भक्त (अजातरति साधक भक्त) भी हैं। ये भी चार प्रकार के होते हैं। इस तरह वैधी भक्ति के अन्तर्गत कुल सोलह प्रकार हैं।

राग-मार्गे ऐछे भक्ते षोड़श विभेद ।
दुई मार्गे आत्मारामेर बत्रिश विभेद ॥२९२॥

राग-मार्गे ऐछे भक्ते षोड़श विभेद ।
दुइ मार्गे आत्मारामेर बत्रिश विभेद ॥ २९२॥

राग-मार्गे—रागानुगा प्रेममयी सेवा के मार्ग पर; **ऐछे**—समान रूप से; **भक्ते**—सभी भक्तों के; **षोड़श विभेद**—सोलह प्रकार के; **दुइ मार्गे**—साधना तथा रागानुग भक्ति के रूप में; **आत्मारामेर**—आत्मारामों के; **बत्रिश विभेद**—बत्तीस प्रकार के भक्त।

अनुवाद

"रागानुगा भक्ति के अन्तर्गत भी सोलह प्रकार के भक्त हैं। इस प्रकार इन दोनों मार्गों का आनन्द लेने वाले आत्मारामों के बत्तीस प्रकार हैं।

'मुनि', 'निर्ग्रन्थ', 'च' 'अपि',—चारि शब्देर अर्थ ।
याहाँ येई लागे, ताहा करिये समर्थ ॥२९३॥

'मुनि', 'निर्ग्रन्थ', 'च' 'अपि',—चारि शब्देर अर्थ ।
याहाँ येइ लागे, ताहा करिये समर्थ ॥ २९३॥

मुनि—*मुनि;* **निर्ग्रन्थ**—*निग्रन्थ;* **च**—*च;* **अपि**—*अपि;* **चारि शब्देर अर्थ**—इन चार शब्दों के अर्थ; **याहाँ**—कहाँ; **येइ लागे**—वे पालन करते हैं; **ताहा करिये समर्थ**—उन्हें समर्थ बना देता है।

अनुवाद

"जब इन बत्तीस प्रकार के भक्तों की विशेषता 'मुनि,' 'निर्ग्रन्थ,' 'च,' तथा 'अपि' शब्दों द्वारा बताई जाती है, तब उन्हें विभिन्न प्रकारों से बढ़ाया जा सकता है और उनकी भलीभाँति व्याख्या की जा सकती है।

বত্রিশে ছাব্বিশে মিলি, অষ্ট-পঞ্চাশ ।
আর এক ভেদ শুন অর্থের প্রকাশ ॥২৯৪॥

বত্রিশে ছাব্বিশে মিলি, অষ্ট-পঞ্চাশ ।
আর এক ভেদ শুন অর্থের প্রকাশ ॥ ২৯৪॥

বত্রিশে—ये बत्तीस प्रकार के; **ছাব্বিশে**—पहले बताएँ छब्बीस गुण; **মিলি'**—मिलाकर; **অষ্ট-পঞ্চাশ**—ये अट्ठावन व्यक्ति; **আর**—अन्य; **এক**—एक; **ভেদ**—भेद; **শুন**—कृपया सुनो; **অর্থের প্রকাশ**—अर्थ के प्रकाश।

अनुवाद

"जब हम भक्तों के छब्बीस प्रकारों को इन बत्तीस प्रकारों में जोड़ देते हैं, तो कुल संख्या अट्ठावन हो जाती है। अब तुम मुझसे अर्थों की और अभिव्यक्तियाँ सुन सकते हो।

ইতরেতর 'চ' দিয়া সমাস করিয়ে ।
'আটান্ন'-বার আত্মারাম নাম লইয়ে ॥২৯৫॥

ইতরেতর 'চ' দিয়া সমাস করিয়ে ।
'আটান্ন'-বার আত্মারাম নাম লইয়ে ॥ ২৯৫॥

ইতরেতর—भिन्न प्रकार से; **চ**—*च* शब्द; **দিয়া**—मिलाकर; **সমাস করিয়ে**—समास करके; **আটান্ন-বার**—अट्ठावन बार; **আত্মারাম**—आत्माराम भक्त; **নাম লইয়ে**—मैं इन्हें नामों से बुलाता हूँ।

अनुवाद

"इस तरह मैं हर शब्द के बाद 'च' शब्द जोड़ता हूँ, तो समास बनता है। इस तरह विभिन्न आत्मारामों के नाम अट्ठावन बार लिये जा सकते हैं।

'আত্মারামাশ্চ আত্মারামাশ্চ' আটান্ন-বার ।
শেষে সব লোপ করি' রাখি এক-বার ॥২৯৬॥

'আত্মারামাশ্চ আত্মারামাশ্চ' আটান্ন-বার ।
শেষে সব লোপ করি' রাখি এক-বার ॥ ২৯৬॥

আত্মারামাঃ চ আত্মারামাঃ চ—*आत्मारामाः* शब्द को दोहराकर; **আটান্ন-বার**—

अट्ठावन बार; **शेषे**—अन्त में; **सब लोप करि'**—सबको हटाकर; **राखि**—हम रखते हैं; **एक-बार**—केवल एक।

अनुवाद

"इस तरह अट्ठावन अर्थों में से प्रत्येक के लिए 'आत्मारामाः' शब्द की 'च' के साथ पुनरावृत्ति की जा सकती है। इस पूर्वकथित विधि का पालन करते हुए तथा अन्तिम के अतिरिक्त अन्य सभी अर्थों का निषेध करते हुए हमारे पास जो बचेगा, वह समस्त अर्थों का प्रतिनिधित्व करता है।

सरूपाणामेक-शेष एक-विभक्तौ, उक्तार्थानामप्रयोग इति ॥ २९७॥
सरूपाणामेक-शेष एक-विभक्तौ, उक्तार्थानामप्रयोग इति ॥ २९७॥

स-रूपाणाम्—समान रूप वाले शब्दों का; **एक-शेषः**—केवल अन्तिम; **एक-विभक्तौ**—समान विभक्ति में; **उक्त-अर्थानाम्**—पूर्वोक्त अर्थों का; **अप्रयोगः**—अप्रयोग; **इति**—इति।

अनुवाद

"'एक ही रूप तथा एक ही विभक्ति वाले सारे शब्दों में से केवल अन्तिम को रहने दिया जाता है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *पाणिनि-सूत्र* (१.२.६४) से है।

आटान्न च-कारेर सब लोप हय ।
एक आत्माराम-शब्दे आटान्न अर्थ कय ॥ २९८॥
आटान्न च-कारेर सब लोप हय ।
एक आत्माराम-शब्दे आटान्न अर्थ कय ॥ २९८॥

आटान्न—अट्ठावन; **च-कारेर**—*च* शब्द के; **सब लोप हय**—उन सभी का लोप हो जाता है; **एक**—एक; **आत्माराम**—*आत्माराम;* **शब्दे**—शब्द द्वारा; **आटान्न अर्थ कय**—स्वयं अट्ठावन अर्थ प्रकट हो जाते हैं।

अनुवाद

"सारे च-कार अर्थात् 'च' से युक्त शब्द हटा लिए जाने पर भी केवल एक शब्द 'आत्माराम' से अट्ठावन विभिन्न अर्थ प्राप्त किये जा सकते हैं।

अश्वत्थ-वृक्षाश्च वट-वृक्षाश्च कपित्थ-वृक्षाश्च आम्र-वृक्षाश्च वृक्षाः ॥ २९९॥

अश्वत्थ-वृक्षाश्च बट-वृक्षाश्च कपित्थ-वृक्षाश्च आम्र-वृक्षाश्च वृक्षाः ॥ २९९॥

अश्वत्थ-वृक्षाः—अश्वत्थ वृक्ष; **च**—तथा; **बट-वृक्षाः**—वटवृक्ष; **च**—तथा; **कपित्थ-वृक्षाः**—कैपित्थ वृक्ष; **च**—तथा; **आम्र-वृक्षाः**—आम का वृक्ष; **च**—तथा; **वृक्षाः**—'वृक्ष' शब्द से सभी वृक्षों का संकेत है।

अनुवाद

"'इस बहुवचन शब्द 'वृक्षाः' से सारे वृक्ष यथा बरगद, पीपल, कैथा तथा आम के वृक्षों का संकेत होता है।'

"अस्मिन्वने वृक्षाः फलन्ति" यैछे हय ।
तैछे सब आत्माराम कृष्णे भक्ति करय ॥ ३००॥

"अस्मिन्वने वृक्षाः फलन्ति" यैछे हय ।
तैछे सब आत्माराम कृष्णे भक्ति करय ॥ ३००॥

अस्मिन् वने—इस वन में; **वृक्षाः फलन्ति**—विभिन्न प्रकार के वृक्ष फल देते हैं; **यैछे हय**—जिस प्रकार इस वाक्य में; **तैछे**—उसी प्रकार; **सब**—सभी; **आत्माराम**—आत्माराम जीव; **कृष्णे भक्ति करय**—स्वयं को भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा में लगाते हैं।

अनुवाद

"आत्माराम श्लोक वैसा ही है जैसाकि यह वाक्य, 'इस जंगल में अनेक विभिन्न वृक्षों में फल लगते हैं।' सारे आत्माराम भगवान् कृष्ण की सेवा करते हैं।

'आत्मारामाश्च' समुच्चये कहिये च-कार ।
'मुनयश्च' भक्ति करे,—एई अर्थ तार ॥ ३०१॥

'आत्मारामाश्च' समुच्चये कहिये च-कार ।
'मुनयश्च' भक्ति करे,—एइ अर्थ तार ॥ ३०१॥

आत्मारामाः च—इसी प्रकार *च* शब्द से संयुक्त *आत्मारामाः* शब्द; **समुच्चये**—संयुक्त रूप में; **कहिये**—अर्थ करता है; **च-कार**—*च* शब्द; **मुनयः च**—*च* शब्द से संयुक्त *मुनय* शब्द; **भक्ति करे**—वे सभी भक्ति करते हैं; **एइ अर्थ तार**—यही श्लोक का उचित अर्थ है।

अनुवाद

"'आत्मारामाः' शब्द को अट्ठावन बार उच्चरित करके तथा 'च' को समुच्चयवाचक मानकर इसके साथ 'मुनयः' शब्द जोड़ा जा सकता है। तब इसका अर्थ यह होगा कि मुनिगण भी भगवान् कृष्ण की भक्ति करते हैं। इस तरह कुल उनसठ अर्थ हो जाते हैं।

'निर्ग्रन्था एव' हञा, 'अपि'—निर्धारणे ।
एই 'ঊনষষ্টি' প্রকার অর্থ করিলুঁ ব্যাখ্যানে ॥৩০২॥

'निर्ग्रन्था एव' हञा, 'अपि'—निर्धारणे ।
एइ 'ऊनषष्टि' प्रकार अर्थ करिलुँ व्याख्याने ॥ ३०२॥

निर्ग्रन्थाः—*निर्ग्रन्थाः* शब्द; **एव**—तथा *एव* शब्द; **हञा**—होकर; **अपि**—*अपि* शब्द; **निर्धारणे**—निर्धारण करने में; **एइ ऊनषष्टि प्रकार अर्थ**—इस प्रकार उनसठ प्रकार के अर्थ; **करिलुँ व्याख्याने**—मैंने वर्णित कर दिये।

अनुवाद

"तत्पश्चात् 'निर्ग्रन्थाः' शब्द को लेते हुए तथा 'अपि' को पुष्ट करने के अर्थ में लेते हुए मैंने इस शब्द के उनसठवे अर्थ की व्याख्या करने का प्रयास किया है।

সর্ব-সমুচ্চয়ে আর এক অর্থ হয় ।
'আত্মারামাশ্চ মুনয়শ্চ নির্গ্রন্থাশ্চ' ভজয় ॥৩০৩॥

सर्व-समुच्चये आर एक अर्थ हय ।
'आत्मारामाश्च मुनयश्च निर्ग्रन्थाश्च' भजय ॥ ३०३॥

सर्व-समुच्चये—उन सबको एक साथ लेकर; **आर**—दूसरा; **एक**—एक; **अर्थ**—अर्थ; **हय**—होता है; **आत्मारामाः च मुनयः च निर्ग्रन्थाः च भजय**—आत्माराम, महामुनिजन, तथा निर्ग्रन्थ (विद्वान तथा मूर्ख) भगवान् की दिव्य सेवा करने के योग्य हैं।

अनुवाद

"सारे शब्दों को एकसाथ लेने पर एक अन्य अर्थ होता है। चाहे कोई आत्माराम हो, मुनि हो या निर्ग्रन्थ, हर व्यक्ति को भगवान् की सेवा करनी चाहिए।

तात्पर्य

यहाँ पर *सर्वसमुच्चये* शब्द महत्त्वपूर्ण है। इसमें सभी वर्ग के मनुष्य आ जाते हैं—*आत्माराम, मुनि* तथा *निर्ग्रन्थ।* हर व्यक्ति को भगवान् की सेवा करनी चाहिए। *अपि* शब्द का 'निर्णय' अर्थ लगाने पर कुल मिलाकर साठ भिन्न अर्थ हो जाते हैं।

'अपि'-शब्द—अवधारणे, सेह चारि बार ।
चारि-शब्द-सङ्गे एवेर करिबे उच्चार ॥ ३०४॥

'अपि'-शब्द—अवधारणे, सेह चारि बार ।
चारि-शब्द-सङ्गे एवेर करिबे उच्चार ॥ ३०४॥

अपि-शब्द—*अपि* शब्द; **अवधारणे**—निर्धारण करने के अर्थ में; **सेह चारि बार**—चार बार; **चारि-शब्द**—चार शब्दों के; **सङ्गे**—साथ; **एवेर**—*एव* शब्द का; **करिबे**—कर सकते हैं; **उच्चार**—उच्चारण।

अनुवाद

"जब 'अपि' शब्द निर्णय के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है, तो चार शब्दों के साथ 'एव' शब्द चार बार उच्चरित हो सकता है।

''उरुक्रमे एव भक्तिमेव अहैतुकीमेव कुर्वन्त्येव'' ॥ ३०५॥

"उरुक्रमे एव भक्तिमेव अहैतुकीमेव कुर्वन्त्येव" ॥ ३०५॥

उरुक्रमे—सर्वशक्तिमान की; **एव**—केवल; **भक्तिम्**—प्रेममयी सेवा; **एव**—ही; **अहैतुकीम्**—निष्काम; **एव**—ही; **कुर्वन्ति**—वे करते हैं; **एव**—केवल।

अनुवाद

"'उरुक्रम,' 'भक्ति,' 'अहैतुकी' तथा 'कुर्वन्ति' शब्दों को 'एव' के साथ बारम्बार मिलाते हैं। इस तरह अन्य अर्थ निकलता है।

এই ত' কহিলুঁ শ্লোকের 'ষষ্টি' সঙ্খ্যক অর্থ ।
আর এক অর্থ শুন প্রমাণে সমর্থ ॥৩০৬॥

এइ त' कहिलुँ श्लोकेर 'षष्टि' सङ्ख्यक अर्थ ।
आर एक अर्थ शुन प्रमाणे समर्थ ॥ ३०६ ॥

एइ त'—इस प्रकार; **कहिलुँ**—मैंने बताया है; **श्लोकेर**—श्लोक के; **षष्टि**—साठ; **सङ्ख्यक**—गिनती के; **अर्थ**—अर्थ; **आर**—अन्य; **एक**—एक; **अर्थ**—अर्थ; **शुन**—कृपया सुनो; **प्रमाणे समर्थ**—प्रमाण देने में समर्थ।

अनुवाद

"अब तक मैं इस श्लोक के साठ भिन्न-भिन्न अर्थ दे चुका हूँ, तो भी एक अन्य अर्थ है, जो अत्यधिक स्पष्ट है।

'आत्मा'-শব্দে কহে 'ক্ষেত্রজ্ঞ জীব'-লক্ষণ ।
ব্রহ্মাদি কীট-পর্যন্ত——তাঁর শক্তিতে গণন ॥৩০৭॥

'आत्मा'-शब्दे कहे 'क्षेत्रज्ञ जीव'-लक्षण ।
ब्रह्मादि कीट-पर्य्यन्त——ताँर शक्तिते गणन ॥ ३०७ ॥

आत्मा-शब्दे—*आत्मा* शब्द द्वारा; **कहे**—कहा जाता है; **क्षेत्र-ज्ञ जीव**—जीवात्मा जो अपने शरीर के विषय में जानता है; **लक्षण**—लक्षण; **ब्रह्मा-आदि**—ब्रह्माजी से लेकर; **कीट-पर्य्यन्त**—तुच्छ चींटी तक; **ताँर**—उनकी; **शक्तिते**—तटस्थ शक्ति के रूप में; **गणन**—गिनती।

अनुवाद

"'आत्मा' शब्द उस जीव का भी सूचक है, जो अपने शरीर के विषय में जानता है। यह अन्य लक्षण है। ब्रह्माजी से लेकर एक क्षुद्र चींटी तक हर एक को भगवान् की तटस्था शक्ति के रूप में गिना जाता है।

বিষ্ণু-শক্তিঃ পরা প্রোক্তা ক্ষেত্রজ্ঞাখ্যা তথা পরা ।
অবিদ্যা-কর্ম-সংজ্ঞান্যা তৃতীয়া শক্তিরিষ্যতে ॥৩০৮॥

विष्णु-शक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथा परा ।
अविद्या-कर्म-संज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥ ३०८ ॥

विष्णु-शक्तिः—भगवान् विष्णु की शक्ति; **परा**—आध्यात्मिक; **प्रोक्ता**—कही जाती है; **क्षेत्र-ज्ञ-आख्या**—*क्षेत्रज्ञ* नामक शक्ति; **तथा**—साथ ही; **परा**—आध्यात्मिक; **अविद्या**—

अज्ञान; **कर्म**—सकाम कर्म; **संज्ञा**—नामक; **अन्या**—अन्य; **तृतीया**—तीसरी; **शक्तिः**—शक्ति; **इष्यते**—कही जाती है।

अनुवाद

"'भगवान् विष्णु की शक्ति की तीन श्रेणियाँ हैं—आध्यात्मिक शक्ति, जीव तथा अविद्या। आध्यात्मिक शक्ति ज्ञान से पूर्ण होती है। जीव यद्यपि आध्यात्मिक शक्ति से सम्बन्धित होते हैं, किन्तु वे मोहग्रस्त होते रहते हैं; और तीसरी शक्ति, जो अविद्या से भरी होती है, सदैव सकाम कर्मों में देखने में आती है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *विष्णु-पुराण* का है। इसकी व्याख्या के लिए देखें आदिलीला (७.११९)।

''क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः प्रधानं प्रकृतिः स्त्रियाम्'' ॥ ३०९॥

"क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः प्रधानं प्रकृतिः स्त्रियाम्" ॥ ३०९॥

क्षेत्र-ज्ञः—*क्षेत्रज्ञ* शब्द; **आत्मा**—जीवात्मा; **पुरुषः**—भोक्ता; **प्रधानम्**—प्रधान; **प्रकृतिः**—भौतिक प्रकृति; **स्त्रियाम्**—स्त्रीलिंग में।

अनुवाद

"'क्षेत्रज्ञ' शब्द जीव, भोक्ता, प्रधान तथा भौतिक प्रकृति का द्योतक है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *अमरकोश* (७) के स्वर्गवर्ग से है।

भ्रमिते भ्रमिते यदि साधु-सङ्ग पाय।
सब त्यजि' तबे तिँहो कृष्णेरे भजय ॥ ३१०॥

भ्रमिते भ्रमिते ग्रदि साधु-सङ्ग पाय ।
सब त्यजि' तबे तिंहो कृष्णेरे भजय ॥ ३१०॥

भ्रमिते भ्रमिते—विभिन्न रूपों में विभिन्न प्रकार से भ्रमण करते करते; **ग्रदि**—यदि; **साधु-सङ्ग पाय**—कोई भक्तों का संग प्राप्त करता है; **सब त्यजि'**—सब कुछ त्यागकर; **तबे**—फिर; **तिंहो**—वह; **कृष्णेरे भजय**—भगवान् कृष्ण की सेवा में लग जाता है।

अनुवाद

"विभिन्न योनियों में जीव विभिन्न लोकों में विचरण करते हैं, किन्तु यदि कदाचित् उन्हें शुद्ध भक्त (साधु) की संगति प्राप्त हो जाती है, तो वे सारे कार्य त्यागकर भगवान् कृष्ण की सेवा में लग जाते हैं।

षाटि अर्थ कहिलुँ, सब——कृष्णेर भजने ।
सेइ अर्थ हय एइ सब उदाहरणे ॥ ३११ ॥

षाटि अर्थ कहिलुँ, सब——कृष्णेर भजने ।
सेइ अर्थ हय एइ सब उदाहरणे ॥ ३११ ॥

षाटि—साठ; **अर्थ**—अर्थ; **कहिलुँ**—मैंने बताये; **सब**—सब; **कृष्णेर भजने**—कृष्ण की दिव्य प्रेममयी सेवा को लक्ष्य करके; **सेइ अर्थ हय**—केवल यही अर्थ है; **एइ सब**—इन सभी; **उदाहरणे**—उदाहरणों का।

अनुवाद

"इस तरह मैंने साठ भिन्न-भिन्न अर्थ बतलाये और वे सबके सब कृष्ण की सेवा को ही लक्षित करते हैं। इतने सारे उदाहरण देने के बाद यही एकमात्र अर्थ है।

'एक-षष्टि' अर्थ एबे स्फुरिल तोमा-सङ्गे ।
तोमार भक्ति-वशे उठे अर्थेर तरङ्गे ॥ ३१२ ॥

'एक-षष्टि' अर्थ एबे स्फुरिल तोमा-सङ्गे ।
तोमार भक्ति-वशे उठे अर्थेर तरङ्गे ॥ ३१२ ॥

एक-षष्टि—इकसठवाँ; **अर्थ**—अर्थ; **एबे**—अब; **स्फुरिल**—जागृत हो गया; **तोमा-सङ्गे**—तुम्हारे संग के कारण; **तोमार**—तुम्हारी; **भक्ति-वशे**—भक्ति के प्रभाव से; **उठे**—उत्पन्न हो रही हैं; **अर्थेर**—अर्थों की; **तरङ्गे**—लहरें।

अनुवाद

"अब तुम्हारी संगति से एक अन्य अर्थ स्फुरित हुआ है। तुम्हारी भक्ति के कारण ही अर्थों की तरंगें उठ रही हैं।

तात्पर्य

आत्मा शब्द जीव का द्योतक है। ब्रह्माजी से लेकर क्षुद्र चींटी तक सारे

प्राणी जीव माने जाते हैं। जीवों को भगवान् की तटस्था शक्ति का अंश माना जाता है। वे सभी *क्षेत्रज्ञ* हैं अर्थात् शरीर के ज्ञाता हैं। जब वे *निर्ग्रन्थ* या मुक्त साधु पुरुष हो जाते हैं, तो वे भगवान् कृष्ण की सेवा में लग जाते हैं। यह श्लोक का इकसठवाँ अर्थ है।

अहं वेद्मि शुको वेत्ति व्यासो वेत्ति न वेत्ति वा ।
भक्त्या भागवतं ग्राह्यं न बुद्ध्या न च टीकया ॥ ३१३ ॥

अहम्—मैं (शिवजी); **वेद्मि**—जानता हूँ; **शुकः**—शुकदेव गोस्वामी; **वेत्ति**—जानते हैं; **व्यासः**—व्यासदेव; **वेत्ति**—जानते हैं; **न वेत्ति वा**—या नहीं जानते; **भक्त्या**—नौ प्रकार की भक्ति द्वारा; **भागवतम्**—*भागवत पुराण* (*परमहंस संहिता* नामक दिव्य ग्रन्थ, जो सर्वश्रेष्ठ अध्यात्मवादियों द्वारा पढ़ा जाता है; **ग्राह्यम्**—ग्रहण की जा सकती है; **न**—न; **बुद्ध्या**—तथाकथित बुद्धि या प्रायोगिक ज्ञान से; **न**—न ही; **च**—तथा; **टीकया**—मनोकल्पित टीका द्वारा।

अनुवाद

"[शिवजी ने कहा :] 'श्रीमद्भागवत को या तो मैं जानता हूँ या व्यासपुत्र शुकदेव गोस्वामी जानते हैं, तथा व्यासदेव जानते हैं अथवा नहीं जानते। इस निष्कलंक पुराण श्रीमद्भागवत को केवल भक्ति से सीखा जा सकता है—भौतिक बुद्धि, चिन्तन विधियों या काल्पनिक टीकाओं द्वारा नहीं।'"

तात्पर्य

भक्ति में नौ विधियाँ सम्मिलित हैं—यथा श्रवण, कीर्तन, भगवान् विष्णु की लीलाओं का स्मरण इत्यादि। जिसने भक्ति को अंगीकार किया है, वही *श्रीमद्भागवत* को समझ सकता है, क्योंकि अध्यात्मवादी (*परमहंस*) के लिए यह एक निष्कलंक पुराण है। इस कार्य के लिए तथाकथित टीकाएँ व्यर्थ हैं। वैदिक आदेशानुसार—*यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।* सारे वैदिक ग्रन्थों का मत है कि *श्रीमद्भागवत* को किसी भागवत से सीखना चाहिए और

इसे समझने के लिए शुद्ध भक्ति करनी आवश्यक है। *श्रीमद्भागवत* को तथाकथित विद्वान पण्डित या वैयाकरण नहीं समझ सकते। जिसने शुद्ध कृष्णभावना विकसित कर ली है और शुद्ध भक्त या गुरु की सेवा की है, वही *श्रीमद्भागवत* को समझ सकता है, अन्य कोई नहीं।

अर्थ शुनि' सनातन विस्मित हञा ।
स्तुति करे महाप्रभुर चरणे धरिया ॥ ३१४॥

अर्थ शुनि'—(*आत्माराम* श्लोक के) अर्थों को सुनकर; **सनातन**—सनातन गोस्वामी; **विस्मित हञा**—आश्चर्यचकित होकर; **स्तुति करे**—स्तुति करते हैं; **महाप्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **चरणे धरिया**—चरणकमलों को पकड़कर।

अनुवाद

आत्माराम श्लोक के विभिन्न अर्थों की व्याख्या सुनकर सनातन गोस्वामी आश्चर्यचकित हो गये। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े और स्तुति करने लगे।

"साक्षातीश्वर तुमि व्रजेन्द्र-नन्दन ।
तोमार निश्वासे सर्व-वेद-प्रवर्तन ॥ ३१५॥

"साक्षात् ईश्वर तुमि व्रजेन्द्र-नन्दन ।
तोमार निश्वासे सर्व-वेद-प्रवर्तन ॥ ३१५॥

साक्षात् ईश्वर तुमि—आप साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं; **व्रजेन्द्र-नन्दन**—महाराज नन्द के पुत्र; **तोमार निश्वासे**—आपके श्वास द्वारा; **सर्व-वेद**—सारे वैदिक ग्रन्थ; **प्रवर्तन**—प्रकट हुए हैं।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने कहा, "हे प्रभु, आप महाराज नन्द के पुत्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। सारे वैदिक ग्रन्थ आपके श्वास के माध्यम से ध्वनित होते हैं।

তুমি—বক্তা ভাগবতের, তুমি জান অর্থ ।
তোমা বিনা অন্য জানিতে নাহিক সমর্থ'' ॥ ৩১৬॥

তুমি—বক্তা ভাগবতের, তুমি জান অর্থ ।
তোমা বিনা অন্য জানিতে নাহিক সমর্থ" ॥ ३१६॥

তুমি—आप ही; **বক্তা**—वक्ता; **ভাগবতের**—*श्रीमद्भागवत* के; **তুমি**—आप; **জান**—जानते हैं; **অর্থ**—अर्थ; **তোমা বিনা**—आपके सिवा; **অন্য**—कोई और; **জানিতে**—जानने में; **নাহিক**—नहीं है; **সমর্থ**—समर्थ।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप भागवत के आदि वक्ता हैं। अतः आप ही इसके वास्तविक अर्थ को जानते हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी श्रीमद्भागवत के गुह्य अर्थ को नहीं समझ सकता।"

तात्पर्य

श्रील सनातन गोस्वामी के इस कथन के आधार पर हमने हमारी *श्रीमद्भागवत* की भूमिका (प्रथम स्कन्ध, पृष्ठ १-४१) लिखी है।

প্রভু কহে,—''কেনে কর আমার স্তবন ।
ভাগবতের স্বরূপ কেনে না কর বিচারণ? ॥ ৩১৭॥

প্রভু কহে,—"কেনে কর আমার স্তবন ।
ভাগবতের স্বরূপ কেনে না কর বিচারণ? ॥ ३१७॥

প্রভু কহে—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **কেনে কর**—तुम क्यों कर रहे हो; **আমার স্তবন**—मेरा गुणगान; **ভাগবতের স্বরূপ**—*श्रीमद्भागवत* का वास्तविक स्वरूप; **কেনে**—क्यों; **না কর**—नहीं करते; **বিচারণ**—विचार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "तुम मेरा स्तवन क्यों कर रहे हो? तुम्हें श्रीमद्भागवत की दिव्य स्थिति को समझना चाहिए। तुम इस महत्त्वपूर्ण बात पर क्यों नहीं विचार करते?

কৃষ্ণ-তুল্য ভাগবত—বিভু, সর্বাশ্রয় ।
প্রতি-শ্লোকে প্রতি-অক্ষরে নানা অর্থ কয় ॥ ৩১৮॥

कृष्ण-तुल्य भागवत—विभु, सर्वाश्रय ।
प्रति-श्लोके प्रति-अक्षरे नाना अर्थ कय ॥ ३१८॥

कृष्ण-तुल्य भागवत—*श्रीमद्भागवत* कृष्ण से अभिन्न है; **विभु**—परम; **सर्व-आश्रय**—सबके आदि स्रोत या सर्वनियन्ता; **प्रति-श्लोके**—प्रत्येक श्लोक में; **प्रति-अक्षरे**—प्रत्येक अक्षर में; **नाना अर्थ कय**—विभिन्न अर्थ हैं।

अनुवाद

"श्रीमद्भागवत कृष्ण के तुल्य महान् है, जोकि परमेश्वर तथा सबके आश्रय हैं। श्रीमद्भागवत के प्रत्येक श्लोक में तथा प्रत्येक अक्षर में अनेक अर्थ निहित हैं।

প্রশ্নোত্তরে ভাগবতে করিয়াছে নির্ধার ।
যাঁহার শ্রবণে লোকে লাগে চমত্কার ॥৩১৯॥

প্রশ্নোত্তরে ভাগবতে করিয়াছে নির্ধার ।
যাঁহার শ্রবণে লোকে লাগে চমত্কার ॥ ३१९ ॥

प्रश्न-उत्तरे—प्रश्न-उत्तर के रूप में; **भागवते**—*श्रीमद्भागवत* में; **करियाछे**—किया है; **निर्धार**—निष्कर्ष; **याँहार श्रवणे**—जिसे सुनकर; **लोके**—सभी लोगों में; **लागे**—हो जाता है; **चमत्कार**—अत्यधिक विस्मय।

अनुवाद

"श्रीमद्भागवत का रूप प्रश्नों तथा उत्तरों में दिया हुआ है। इस तरह निष्कर्ष स्थापित किया जाता है। इन प्रश्नों तथा उत्तरों को सुनकर मनुष्य को अत्यधिक आश्चर्य होता है।

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्म-वर्मणि ।
स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥३२०॥

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्म-वर्मणि ।
स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥ ३२० ॥

ब्रूहि—कृपया बताइए; **योग-ईश्वरे**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, सब योग शक्तियों के स्वामी; **कृष्णे**—भगवान् कृष्ण; **ब्रह्मण्ये**—ब्राह्मण संस्कृति के रक्षक; **धर्म-वर्मणि**—धर्म के

नियमों की बलवान भुजाएँ; **स्वाम्**—अपने; **काष्ठाम्**—निजी धाम को; **अधुना**—अब; **उपेते**—लौट जाने पर; **धर्मः**—धर्म के सिद्धान्त; **कम्**—किसकी; **शरणम्**—शरण; **गतः**—चले गये।

अनुवाद

"'अब जबकि परम सत्य, योगेश्वर श्रीकृष्ण अपने धाम प्रस्थान कर चुके हैं, तो कृपया हमें बताइये कि इस समय धर्म की रक्षा किसके द्वारा की जा रही है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१.१.२३) का है। इसमें शौनक आदि ऋषियों ने एक प्रश्न उठाया था। महाभागवत सूत गोस्वामी से पूछे छह प्रश्नों में से यह सर्वप्रमुख है। इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर अगले श्लोक में दिया गया है, जो *श्रीमद्भागवत* (१.३.४३) का है।

कृष्णे स्व-धामोपगते धर्म-ज्ञानादिभिः सह ।
कलौ नष्ट-दृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥ ३२१ ॥

कृष्णे स्व-धामोपगते धर्म-ज्ञानादिभिः सह ।
कलौ नष्ट-दृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥ ३२१ ॥

कृष्णे—भगवान् कृष्ण के; **स्व-धाम**—अपने धाम में; **उपगते**—लौट जाने के बाद; **धर्म-ज्ञान-आदिभिः सह**—धर्म, दिव्य ज्ञान आदि के साथ; **कलौ**—कलियुग में; **नष्ट-दृशाम्**—उन लोगों के लिए, जिन्होंने अपनी आध्यात्मिक दृष्टि खो दी है; **एषः**—यह; **पुराण-अर्कः**—सूर्य के समान प्रकाशित होने वाला पुराण या वैदिक ग्रन्थ; **अधुना**—वर्तमान समय में; **उदितः**—उदय हुआ है।

अनुवाद

"'जब कृष्ण धर्म तथा दिव्य ज्ञान समेत अपने धाम के लिए प्रस्थान कर गये, तो श्रीमद्भागवत नामक यह पुराण इस कलियुग में सूर्य के समान उन लोगों को आलोक देने के लिए उदित हुआ है, जो आध्यात्मिक दृष्टि से विहीन हैं।'

এই মত কহিলুঁ এক শ্লোকের ব্যাখ্যান ।
বাতুলের প্রলাপ করি' কে করে প্রমাণ? ॥৩২২॥

एइ मत कहिलुँ एक श्लोकेर व्याख्यान ।
बातुलेर प्रलाप करि' के करे प्रमाण? ॥ ३२२॥

एइ मत—इस प्रकार; **कहिलुँ**—मैंने कहा है; **एक**—एक; **श्लोकेर**—श्लोक की; **व्याख्यान**—व्याख्या; **बातुलेर प्रलाप**—एक पागल की बातें; **करि'**—करता हूँ; **के करे प्रमाण**—कौन इसे प्रमाण के रूप में स्वीकार करेगा।

अनुवाद

"इस तरह मैंने एक पागल की तरह केवल एक श्लोक के अर्थ की व्याख्या की है। मैं नहीं जानता कि इसे प्रमाण के रूप में कौन ग्रहण करेगा।

আমা-হেন যেবা কেহ 'বাতুল' হয় ।
এই-দৃষ্টে ভাগবতের অর্থ জানয়'' ॥৩২৩॥

আমা-হেন য়েবা কেহ 'বাতুল' হয ।
এइ-দৃষ্টে ভাগবতের অর্থ জানয" ॥ ३२३॥

आमा-हेन—मेरे ही समान; **य़ेबा**—जो; **केह**—कोई व्यक्ति; **बातुल हय**—पागल बन जाता है; **एइ-दृष्टे**—इस प्रक्रिया के अनुसार; **भागवतेर**—*श्रीमद्भागवत* के; **अर्थ**—अर्थों को; **जानय**—वह समझ सकता है।

अनुवाद

"यदि कोई मेरे ही समान पागल बनता है, तो इस विधि से वह भी श्रीमद्भागवत के अर्थ को समझ सकता है।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु स्पष्ट बतलाते हैं कि जो लोग भौतिकतावादी हैं, वे *श्रीमद्भागवत* को नहीं समझ सकते। दूसरे शब्दों में, मनुष्य को श्री चैतन्य महाप्रभु के ही समान पागल बनना होगा। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने के अतिरिक्त श्री चैतन्य महाप्रभु एक *आचार्य* भी हैं, जिन्होंने पागल के समान भगवत्प्रेम प्रदर्शित किया। अपने ही द्वारा लिखित श्लोक के अनुसार *युगायितं निमेषेण।* वे कहते हैं कि उन्हें "एक क्षण बारह वर्षों के समान लगता है।" *चक्षुषा प्रावृषायितम्*—"मेरे अश्रु वर्षा की धारा के समान बह रहे हैं।" *शून्यायितं*

जगत् सर्वम्—"मुझे लगता है कि सारा ब्रह्माण्ड शून्य है।" क्यों? *गोविन्दविरहेण मे*—"गोविन्द अर्थात् श्रीकृष्ण से बिछुड़ जाने से।"

कृष्ण के लिए पागल श्री चैतन्य महाप्रभु के पदचिह्नों पर चलकर ही *श्रीमद्भागवत* को समझा जा सकता है। किन्तु हम श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुकरण नहीं कर सकते। यह सम्भव नहीं है। जब तक कोई व्यक्ति कृष्ण को समझने के लिए निष्ठावान न हो, तब तक वह *श्रीमद्भागवत* को नहीं समझ सकता। *श्रीमद्भागवत* में कृष्ण की दिव्य लीलाओं का पूर्ण विवरण दिया हुआ है। प्रथम नौ स्कन्ध बतलाते हैं कि कृष्ण कौन हैं और दसवें स्कन्ध में भगवान् के जन्म तथा कार्यों का वर्णन हुआ है। *भगवद्गीता* में कहा गया है—*जन्म कर्म च मे दिव्यम्।* कृष्ण के आविर्भाव तथा तिरोधान दिव्य हैं, लौकिक नहीं। जो व्यक्ति कृष्ण को तथा उनके आविर्भाव एवं तिरोधान को पूरी तरह समझ लेता है, वह भगवद्धाम जाने का पात्र बन जाता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (४.९) में स्वयं कृष्ण द्वारा की गई है—*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन* से हो जाती है।

अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि *श्रीमद्भागवत* तथा *भगवद्गीता* से कृष्ण के विषय में सीखना चाहिए और श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए। जो लोग श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुसरण नहीं करते, वे *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* को नहीं समझ सकते।

पुनः सनातन कहे युड़ि' दुई करे ।
"प्रभु आज्ञा दिला 'वैष्णव-स्मृति' करिवारे ॥ ३२४॥

पुनः सनातन कहे मुड़ि' दुइ करे ।
"प्रभु आज्ञा दिला 'वैष्णव-स्मृति' करिबारे ॥ ३२४॥

पुनः—फिर; **सनातन**—सनातन गोस्वामी; **कहे**—कहते हैं; **मुड़ि' दुइ करे**—अपने दोनों हाथ जोड़कर; **प्रभु आज्ञा दिला**—आपने मुझे आदेश दिया है; **वैष्णव-स्मृति करिबारे**—वैष्णव कार्यकलापों का स्मृति ग्रन्थ लिखने का।

अनुवाद

हाथ जोड़कर सनातन गोस्वामी ने कहा, "हे प्रभु, आपने मुझे वैष्णवों

के कार्यकलापों के विषय में एक निर्देशिका (स्मृति) लिखने का आदेश दिया है।

मुञि—नीच-जाति, किछु ना जानों आचार ।
मो-हैते कैछे हय स्मृति-परचार ॥ ३२५ ॥

मुञि—नीच-जाति, किछु ना जानों आचार ।
मो-हैते कैछे हय स्मृति-परचार ॥ ३२५ ॥

मुञि—मैं; **नीच-जाति**—नीच जाति का; **किछु**—कुछ; **ना**—नहीं; **जानों**—जानता; **आचार**—उचित आचरण के विषय में; **मो-हैते**—मुझसे; **कैछे**—कैसे; **हय**—हो सकता है; **स्मृति-परचार**—वैष्णव आचरण के निर्देशों का प्रचार।

अनुवाद

"मैं अत्यन्त नीच व्यक्ति हूँ। मुझे अच्छे आचरण का तनिक भी ज्ञान नहीं है। मेरे लिए वैष्णवों के कार्यकलापों के विषय में प्रामाणिक निर्देश लिखना कैसे सम्भव हो सकता है?"

तात्पर्य

वास्तविकता तो यह है कि सनातन गोस्वामी अत्यन्त सम्मान्य ब्राह्मण परिवार के थे। तो भी उन्होंने अपने आपको पतित, निम्न जाति का माना, क्योंकि वे मुसलमान सरकार में नौकर रह चुके थे। ब्राह्मण से कभी यह आशा नहीं की जाती कि वह किसी की नौकरी करेगा। जीविका के लिए नौकरी करना तो शूद्रों का पेशा है (*परिचर्यात्मकं कर्म*)। ब्राह्मण तो सदैव स्वतन्त्र रहता है और शास्त्रों का अध्ययन करने तथा क्षत्रियों एवं वैश्यों जैसे समाज के निम्न कोटि के सदस्यों को शास्त्रों का उपदेश देने में व्यस्त रहता है। सनातन गोस्वामी वैष्णवों के आचरण के विषय में *वैष्णव स्मृति* लिखने के लिए अपने आपको अयोग्य मानते थे, क्योंकि वे ब्राह्मण-पद से नीचे गिर चुके थे। इस तरह सनातन गोस्वामी स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि ब्राह्मण-संस्कृति का मानकीकरण होना चाहिए। आजकल भारत में तथाकथित ब्राह्मण अधिकांशतया किसी न किसी संसारी सेवा में लगे हैं और वे वैदिक शास्त्रों के अर्थ को नहीं समझते। तो भी वे जन्म के आधार पर अपने आपको ब्राह्मण मानते आ रहे

हैं। इस सम्बन्ध में सनातन गोस्वामी कहते हैं कि यदि ब्राह्मण को समाज में अग्रणी भूमिका निभानी है, तो उसे किसी की नौकरी नहीं करनी चाहिए। *श्रीमद्भागवत* में नारद मुनि कहते हैं कि चाहे कोई ब्राह्मण कितने ही कष्ट में क्यों न हो, उसे शूद्र की वृत्ति ग्रहण नहीं करनी चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि उसे किसी अन्य की सेवा में नहीं लगना चाहिए, क्योंकि यह तो कुत्तों का कार्य है। इस परिस्थिति में सनातन गोस्वामी अपने आपको अत्यन्त नीच मान रहे थे, क्योंकि उन्होंने मुसलमान सरकार की नौकरी स्वीकार की थी। निष्कर्ष यह है कि किसी अन्य की सेवा करते हुए कोई व्यक्ति केवल जन्म के कारण अपने आपको ब्राह्मण न कहे।

सूत्र करि' दिशा यदि करह उपदेश ।
आपनि करह यदि हृदये प्रवेश ॥३२६॥

सूत्र करि' दिशा यदि करह उपदेश ।
आपने करह यदि हृदये प्रवेश ॥ ३२६ ॥

सूत्र करि'—संक्षेप में; **दिशा**—दिशा का; **यदि**—यदि; **करह उपदेश**—आप उपदेश करें; **आपने**—स्वयं; **करह**—आप करें; **यदि**—यदि; **हृदये प्रवेश**—मुझमें प्रवेश करके या मेरे हृदय में प्रकट होकर।

अनुवाद

तब सनातन गोस्वामी ने महाप्रभु से निवेदन किया, "कृपया आप स्वयं मुझे बतायें कि मैं वैष्णव आचरण के विषय में इस कठिन ग्रन्थ को कैसे लिखूँ। कृपया आप मेरे हृदय में प्रकट हों।

तात्पर्य

वैष्णव साहित्य का लेखन सामान्य व्यक्तियों का कार्य नहीं है। वैष्णव साहित्य मानसिक कल्पना नहीं है। वे सब प्रामाणिक साहित्य हैं, जो वैष्णव बनने वालों के मार्गदर्शन हेतु होते हैं। ऐसी परिस्थिति में कोई सामान्य व्यक्ति अपना मत नहीं दे सकता। उसके मत को सदैव वेदों के निर्णय के अनुरूप होना चाहिए। जब तक कोई व्यक्ति वैष्णव आचरण में पूर्ण दक्ष न हो और श्रेष्ठ अधिकारी (पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्) द्वारा अधिकार-प्राप्त न हो, तब तक वह *श्रीमद्भागवत* तथा *भगवद्गीता* पर न तो टीकाएँ लिखे, न वैष्णव ग्रन्थ लिखे।

তবে তার দিশা স্ফুরে মো-নীচের হৃদয় ।
ঈশ্বর তুমি,—যে করাহ, সেই সিদ্ধ হয়” ॥৩২৭॥

तबे तार दिशा स्फुरे मो-नीचेर हृदय ।
ईश्वर तुमि,—ये कराह, सेइ सिद्ध हय” ॥ ३२७॥

तबे—यदि आप ऐसा करें; **तार**—उसकी; **दिशा**—लिखने की क्रिया में; **स्फुरे**—प्रकट हुए; **मो-नीचेर**—मुझ जैसे नीच के; **हृदय**—हृदय में; **ईश्वर तुमि**—आप परम ईश्वर हैं; **ये कराह**—आप जो भी करवाएँ; **सेइ सिद्ध हय**—वह हो जाता है।

अनुवाद

“यदि आप मेरे हृदय में प्रकट हों और इस पुस्तक को लिखने के लिए स्वयं निर्देश दें, तब मैं निम्न जन्मा होते हुए भी आशा कर सकता हूँ कि इसे लिख पाऊँगा। आप ऐसा कर सकते हैं, क्योंकि आप स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और आप जो आदेश देंगे वही पूर्ण है।”

প্রভু কহে,—“যে করিতে করিবা তুমি মন ।
কৃষ্ণ সেই সেই তোমা করাবে স্ফুরণ ॥৩২৮॥

प्रभु कहे,—“ये करिते करिबा तुमि मन ।
कृष्ण सेइ सेइ तोमा कराबे स्फुरण ॥ ३२८॥

प्रभु कहे—श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **ये**—जो; **करिते**—करने का; **करिबा तुमि मन**—तुम चाहते हो; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **सेइ सेइ**—वह; **तोमा**—तुम्हें; **कराबे स्फुरण**—स्फुरित कर देंगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, “तुम जो भी करना चाहते हो, उसे कृष्ण-कृपा के बल पर सही-सही कर सकोगे। वे वास्तविक तात्पर्य प्रकट कर देंगे।

तात्पर्य

सनातन गोस्वामी कृष्ण के शुद्ध भक्त थे। शुद्ध भक्त के पास कृष्ण की सेवा करने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं रहता। फलतः कृष्ण उसकी सहायता करने के लिए सदा प्रस्तुत रहते हैं। यह वर श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को दिया था, जो कि वैष्णव स्मृति लिखने के अधिकारी थे। सनातन

गोस्वामी भगवान् के शुद्ध भक्त थे और श्री चैतन्य महाप्रभु के आशीर्वाद से वे इस ग्रन्थ को पूर्ण रूप से लिख सके।

तथापि एई सूत्रेर शुन दिग्दरशन ।
सकारण लिखि आदौ गुरु-आश्रयण ॥ ३२९ ॥

तथापि—फिर भी; **एइ सूत्रेर**—इस ग्रन्थ के सूत्रों का; **शुन**—सुनो; **दिक्-दरशन**—संकेत; **सकारण**—कारण; **लिखि**—हमें लिखना चाहिए; **आदौ**—प्रारम्भ में; **गुरु-आश्रयण**—प्रामाणिक गुरु के निर्देश में।

अनुवाद

"चूँकि तुमने मुझसे संक्षेप रूपरेखा प्रदान करने के लिए कहा है, अतः इन कुछ संकेतों को सुनो। प्रारम्भ में यह बताओ कि प्रामाणिक गुरु की शरण किस तरह ग्रहण करनी चाहिए।

गुरु-लक्षण, शिष्य-लक्षण, दोंहार परीक्षण ।
सेव्य—भगवान्, सर्व-मन्त्र-विचारण ॥ ३३० ॥

गुरु-लक्षण—एक प्रामाणिक गुरु के लक्षण; **शिष्य-लक्षण**—एक प्रामाणिक शिष्य के लक्षण; **दोंहार**—दोनों की; **परीक्षण**—परीक्षा; **सेव्य-भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पूजनीय हैं; **सर्व-मन्त्र-विचारण**—विभिन्न मन्त्रों के विचार के अनुसार।

अनुवाद

"तुम्हारी पुस्तक में प्रामाणिक गुरु तथा प्रामाणिक शिष्य दोनों के लक्षण दिये जाने चाहिए। तब गुरु स्वीकार करने के पूर्व मनुष्य गुरु की स्थिति के विषय में आश्वस्त हो सकता है। इसी तरह गुरु शिष्य की स्थिति के बारे में आश्वस्त हो सकता है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को आराध्य या सेव्य के रूप में वर्णित किये जाने चाहिए और तुम्हें कृष्ण,

राम या भगवान् के अन्य किसी अंश की पूजा के बीजमन्त्र पर विचार करना चाहिए।

तात्पर्य

पद्म पुराण में प्रामाणिक गुरु के लक्षणों का वर्णन हुआ है :

महाभागवतश्रेष्ठो ब्राह्मणो वै गुरुर्नृणाम्।
सर्वेषामेव लोकानाम् असौ पूज्यो यथा हरिः॥
महाकुलप्रसूतोऽपि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
सहस्रशाखाध्यायी च न गुरुः स्यादवैष्णवः॥

गुरु को भक्ति के सर्वोच्च पद पर स्थित होना चाहिए। भक्तों की तीन कोटियाँ होती हैं और गुरु को सर्वोच्च कोटि से स्वीकार करना चाहिए। उच्च कोटि का भक्त सभी तरह के लोगों का गुरु होता है। कहा गया है—*गुरुर्नृणाम्। नृणाम्* का अर्थ है "सारे मनुष्यों का।" गुरु किसी समूह विशेष तक ही सीमित नहीं होता है। रूप गोस्वामी कृत *उपदेशामृत* में कहा गया है कि गुरु *गोस्वामी* होता है—अर्थात् इन्द्रियों तथा मन का नियन्त्रक होता है। ऐसा गुरु विश्वभर में शिष्य बना सकता है। *पृथिवीं स शिष्यात्।* यही गुरु की परीक्षा है।

भारत में ऐसे अनेक तथाकथित गुरु हैं, जो किसी जनपद या प्रान्त तक ही सीमित हैं। वे भारत तक का भ्रमण नहीं करते, फिर भी वे अपने आपको *जगद्गुरु* घोषित करते हैं। ऐसे प्रवंचक गुरुओं को स्वीकार नहीं करना चाहिए। प्रामाणिक गुरु जिस तरह विश्वभर में शिष्य बनाता है इसे कोई भी देख सकता है। गुरु योग्य ब्राह्मण होता है, अतः वह ब्रह्म तथा परब्रह्म को जानता है। इस तरह वह परब्रह्म की सेवा में अपना जीवन लगा देता है। जो प्रामाणिक गुरु विश्वभर में शिष्य बनाता है, वह अपने गुणों के कारण विश्वभर में पूजा जाता है। *लोकानामसौ पूज्यो यथा हरिः*—संसार के लोग उसको भगवान् के समान पूजते हैं। उसे ये सारे सम्मान इसीलिए दिये जाते हैं, क्योंकि वह ब्राह्मण-नियमों का पूरी तरह पालन करता है और अपने शिष्यों को इन नियमों की शिक्षा देता है। ऐसा व्यक्ति *आचार्य* कहलाता है, क्योंकि वह भक्ति के नियमों को जानता है, स्वयं उन्हीं के अनुसार आचरण करता है और अपने शिष्यों को अपने पदचिह्नों का अनुसरण करने की शिक्षा देता है। इस तरह वह *आचार्य* या

जगद्गुरु होता है। कोई भले ही ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ हो और यज्ञ करने में अत्यन्त दक्ष हो, किन्तु यदि वह दृढ़ वैष्णव नहीं है, तो उसे *गुरु* नहीं स्वीकार किया जा सकता। गुरु योग्यता के बल पर ब्राह्मण होता है और वह अन्यों को शास्त्रीय सिद्धान्तों तथा ब्राह्मण-गुणों के आधार पर ब्राह्मण बना सकता है। ब्राह्मणत्व वंशानुगत नहीं होता है। *श्रीमद्भागवत* (७.११.३५) में श्री नारद मुनि महाराज युधिष्ठिर को बतलाते हैं कि ब्राह्मण क्या है। वे बतलाते हैं कि यदि क्षत्रियों, वैश्यों या शूद्रों में ब्राह्मण गुण पाये जाएँ, तो उन्हें ब्राह्मण के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। इस प्रसंग में श्रील श्रीधर स्वामी की टिप्पणी है—*शमादिभिरेव ब्राह्मणादि-व्यवहारो मुख्यः न जातिमात्रादीत्याह—यस्येति। यद् यदि अन्यत्र वर्णान्तरेऽपि दृश्येत, तद्वर्णान्तरं तेनैव लक्षणनिमित्तेनैव वर्णेन विनिर्दिशेत्, न तु जाति निमित्तेनेत्यर्थः।*" यह निर्णय करने के लिए कि किसी के साथ ब्राह्मण या किसी अन्य वर्ण जैसा व्यवहार किया जाए, सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसमें आत्म-संयम या ऐसे ही ब्राह्मण के गुण उपस्थित हैं या नहीं। हमें जन्म जैसे बाहरी लक्षणों के अनुसार निर्णय नहीं करना चाहिए। यह *भागवत* (७.११.३५) के *यस्य* से प्रारम्भ होने वाले श्लोक में वर्णित है। यदि एक वर्ण के गुण किसी दूसरे वर्ण में उत्पन्न व्यक्ति में दिखते हैं, तो उसका पद उसके गुणों के वर्ण पर माना जाना चाहिए न कि उसके जन्म के वर्ण पर।"

महाभारत के भाष्यकार नीलकण्ठ ने भी ऐसा ही वक्तव्य दिया है :

शूद्रोऽपि शमाद्युपेतो ब्राह्मण एव।
ब्राह्मणोऽपि कामाद्युपेतः शूद्र एव॥

"कोई भले ही शूद्र-कुल में क्यों न उत्पन्न हो, किन्तु यदि उसमें शम (मन का संयम) इत्यादि ब्राह्मण-गुण पाये जाते हैं, तो उसे ब्राह्मण के रूप में स्वीकार करना चाहिए। इसी तरह ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न व्यक्ति यदि काम इत्यादि गुणों से युक्त है, तो उसे शूद्र मानना चाहिए।" ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होने के आधार पर ही किसी को अपने आपको ब्राह्मण के रूप में प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। उसे शास्त्रों में, विशेषतया *भगवद्गीता* (१८.४२) में उल्लिखित ब्राह्मण-गुणों से मण्डित होना चाहिए।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

"शान्तिप्रियता, आत्मसंयम, तपस्या, शुद्धता, सहनशीलता, सत्यनिष्ठा, ज्ञान, विज्ञान तथा धार्मिकता—ये स्वाभाविक गुण हैं, जिनके द्वारा ब्राह्मण कार्य करते हैं।"

जब तक कोई व्यक्ति इन सारे गुणों से मण्डित नहीं हो, तब तक उसे ब्राह्मण के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह केवल ब्राह्मण-कुल में जन्म लेने की बात नहीं है। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है कि यद्यपि नरोत्तम दास ठाकुर तथा श्यामानन्द गोस्वामी ब्राह्मण-कुलों में नहीं जन्मे थे, किन्तु उन्हें प्रामाणिक गुरु के रूप में स्वीकार किया जाता है, क्योंकि वे अपने गुणों से ब्राह्मण थे। ब्राह्मण-कुलों में जन्में महापुरुषों यथा श्री गंगानारायण, रामकृष्ण तथा अनेक अन्य लोगों ने इन दोनों को—नरोत्तम दास ठाकुर तथा श्यामानन्द गोस्वामी को अपने गुरु रूप में स्वीकार किया।

महाभागवत वह है, जो अपने शरीर पर तिलक लगाता है और जिसके नाम के साथ लगा 'दास' शब्द कृष्ण का दास लगा होना सूचित करता है। वह प्रामाणिक गुरु से दीक्षित होता है और श्रीविग्रह का अर्चन करने, मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण करने, यज्ञ करने, भगवान् की स्तुति करने तथा संकीर्तन करने में दक्ष होता है। वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा करना तथा वैष्णव का सम्मान करना जानता है। जिसने महाभागवत का सर्वोच्च पद प्राप्त किया हो, उसे गुरु के रूप में स्वीकार करके उसकी पूजा हरि के ही समान करनी चाहिए। केवल ऐसा व्यक्ति ही गुरु का स्थान ग्रहण करने के लिए योग्य होता है। यदि कोई अत्यन्त योग्य है, किन्तु वैष्णव नहीं है, तो वह गुरु नहीं बन सकता। जब तक कोई वैष्णव न हो, तब तक वह ब्राह्मण नहीं हो सकता। यदि कोई वैष्णव है, तो वह पहले से ब्राह्मण है। यदि गुरु वैष्णव होने के लिए पूर्णरूपेण योग्य है, तो उसे ब्राह्मण के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए, भले ही उसका जन्म ब्राह्मण कुल में न हुआ हो। प्रामाणिक गुरु पर जन्म के आधार पर ब्राह्मण होने की जाति प्रथा लागू नहीं होती। गुरु योग्य ब्राह्मण तथा आचार्य होता है। यदि

कोई योग्य ब्राह्मण नहीं है, तो वह वैदिक साहित्य का अध्ययन करने में दक्ष नहीं होगा। *नानाशास्त्रविचारणैकनिपुणौ।* प्रत्येक वैष्णव गुरु होता है और प्रत्येक गुरु स्वतः ब्राह्मण आचरण में दक्ष होता है। वह वैदिक शास्त्रों को भी समझता है।

इसी तरह गुरु को चाहिए कि शिष्य बनाने के पूर्व शिष्य के गुणों की जाँच करे। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में शिष्य को पापी जीवन के चार स्तम्भ स्वरूप मुख्य बातों को त्यागने के लिए प्रस्तुत रहना होता है—अवैध सम्बन्ध, मांसाहार, नशा तथा जुआ खेलना। पाश्चात्य देशों में हम विशेष ध्यान रखते हैं कि शिष्य नियमों का पालन करने के लिए तैयार है कि नहीं। तब वैष्णवदास के रूप में उसका नामकरण किया जाता है और प्रतिदिन कम से कम सोलह माला हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करने के लिए उसे दीक्षित किया जाता है। इस तरह शिष्य को अपने गुरु या उसके प्रतिनिधि की देखरेख में छह मास से लेकर एक वर्ष तक भक्ति करनी होती है। इसके बाद गुरु द्वितीय दीक्षा की संस्तुति करता है, जिसमें शिष्य को यज्ञोपवीत प्रदान किया जाता है और उसे प्रामाणिक ब्राह्मण के रूप में स्वीकार किया जाता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने प्रामाणिक वैष्णव को यज्ञोपवीत प्रदान करने का सूत्रपात किया और हम भी उन्हीं के चरणचिह्नों का अनुसरण कर रहे हैं। *श्रीमद्भागवत्* (११.१०.६) में प्रामाणिक शिष्य के गुणों का वर्णन हुआ है :

अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः।
असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥

शिष्य में निम्नलिखित गुण होने चाहिए : उसे भौतिक देहात्मबुद्धि के प्रति रुचि का परित्याग कर देना चाहिए। उसे भौतिक काम, क्रोध, लोभ, मोह, पागलपन तथा ईर्ष्या का परित्याग कर देना चाहिए। उसे भगवत् विज्ञान को समझने में ही रुचि लेनी चाहिए और इससे सम्बन्धित हर बात पर विचार करने के लिए तैयार रहना चाहिए। उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि, "मैं यह शरीर हूँ" या "यह वस्तु मेरी है।" उसे गुरु में अटूट श्रद्धा के साथ प्रेम होना चाहिए और उसे स्थिर-चित्त होना चाहिए। प्रामाणिक शिष्य को दिव्य विषयों को समझने के प्रति जिज्ञासु होना चाहिए। उसे सद्गुणों में त्रुटियाँ नहीं

निकालनी चाहिए और उसे भौतिक विषयों में रुचि नहीं लेनी चाहिए। उसकी एकमात्र रुचि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण में होनी चाहिए।

जहाँ तक गुरु तथा शिष्य के पारस्परिक परीक्षण का प्रश्न है, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने बताया है कि प्रामाणिक शिष्य को दिव्य विषयों को समझने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहना चाहिए। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (११.३.२१) में कहा गया है :

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।

"जो जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य तथा लाभ को जानने के लिए उत्सुक होता है, उसे गुरु के पास जाकर शरण लेनी चाहिए।" गुरु का चुनाव करते समय गम्भीर शिष्य को सतर्क रहना चाहिए। उसे यह निश्चित कर लेना चाहिए कि वह गुरु उसकी समस्त आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगा। गुरु को देखना चाहिए कि शिष्य कितना जिज्ञासु है और दिव्य विषय को समझने के लिए कितना उत्सुक है। गुरु को शिष्य की उत्सुकता को कम से कम छह मास या एक वर्ष तक परखना चाहिए। गुरु को शिष्य का भौतिक ऐश्वर्य देखकर उसे शिष्य बनाने के लिए उत्सुक नहीं होना चाहिए। कभी-कभी बहुत बड़ा व्यापारी या जमींदार गुरु से दीक्षा लेने पहुँचता है। जिनकी रुचि भौतिकता में होती है, वे *विषयी* (*कर्मी*) कहलाते हैं, जो यह सूचित करता है कि वे इन्द्रियतृप्ति के प्रति अत्यन्त आसक्त हैं। ऐसे विषयी कभी-कभी प्रसिद्ध गुरु के पास जाकर फैशन के लिए उनका शिष्य बनना चाहते हैं। कभी-कभी ये विषयी अपने दुष्कर्मों को छिपाने तथा अपने आपको आध्यात्मिक ज्ञान में अग्रणी घोषित करने के लिए विख्यात गुरु का शिष्य बनने का दिखावा करते हैं। दूसरे शब्दों में, वे भौतिक सफलता अर्जित करना चाहते हैं। गुरु को इससे काफी सावधान रहना चाहिए। ऐसा व्यापार विश्वभर में चल रहा है। गुरु किसी समृद्ध शिष्य को यह प्रचारित करने के लिए स्वीकार नहीं करता है कि उसके पास इतना समृद्ध शिष्य है। वह जानता है कि ऐसे विषयी शिष्यों से सम्पर्क रखने से वह नीचे गिर सकता है। जो व्यक्ति किसी विषयी शिष्य को स्वीकार करता है, वह प्रामाणिक गुरु नहीं है। यदि हो भी, तो ऐसे दिखावटी विषयी शिष्य की संगति से उसकी प्रतिष्ठा को हानि पहुँच सकती है। यदि तथाकथित

गुरु अपने निजी लाभ या भौतिक लाभ के लिए शिष्य बनाता है, तो गुरु तथा शिष्य का सम्बन्ध भौतिक व्यापार बन जाता है और गुरु *स्मार्तगुरु* बनकर रह जाता है। ऐसे अनेक जात-गोस्वामी हैं, जो पेशेवर ढंग से ऐसे शिष्य बनाते हैं, जो न तो उनकी परवाह करते हैं न ही उनके उपदेशों की। ऐसे गुरु अपने शिष्यों से कुछ भौतिक लाभ प्राप्त करके ही सन्तुष्ट रहते हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने ऐसे सम्बन्ध की निन्दा की है और ऐसे गुरुओं तथा शिष्यों को वंचकों तथा वंचितों का समाज कहा है। वे *बाउल* या *प्राकृत सहजिया* भी कहलाते हैं। उनका उद्देश्य गुरु-शिष्य के सम्बन्ध को अत्यन्त सस्ता (बाजारू) बनाना है। उनमें आध्यात्मिक जीवन को समझने के लिए कोई रुचि नहीं रहती।

इस श्लोक में *चैतन्य-चरितामृत* के शब्द *सेव्य भगवान्* शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। *भगवान्* शब्द भगवान् विष्णु का द्योतक है। भगवान् विष्णु ही एकमात्र पूज्य हैं। किसी अन्य देवताओं की पूजा करने की आवश्यकता नहीं है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (७.२०) द्वारा होती है।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥

"जिनकी बुद्धि भौतिक इच्छाओं के द्वारा चुरा ली गई है, वे देवताओं की शरण में जाते हैं और अपने-अपने स्वभाव के अनुसार पूजा के विशेष विधि-विधानों का पालन करते हैं।"

स्कन्द पुराण में भी कहा गया है :

वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते।
स्वमातरं परित्यज्य स्वपचीं वन्दते हि सः॥

"जो व्यक्ति देवताओं की पूजा करता है और भगवान् वासुदेव को त्याग देता है, वह उस व्यक्ति के समान है, जो एक डाकिनी की शरण पाने के लिए अपनी माता के संरक्षण को त्याग देता है।"

भगवद्गीता (९.२३) में भगवान् कृष्ण द्वारा यह भी कहा गया है :

येऽप्यन्यदेवता-भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

"हे कुन्ती-पुत्र, जो लोग अन्य देवताओं के भक्त हैं और उनकी श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं, वास्तव में वे भी मेरी ही पूजा करते हैं, किन्तु वे इसे त्रुटिपूर्ण ढंग से करते हैं।"

देवता भी जीव हैं और कृष्ण के अंश हैं। अत: जब कोई व्यक्ति देवताओं की पूजा करता है, तो एक प्रकार से वह कृष्ण की ही पूजा करता है, किन्तु सही ढंग से नहीं करता। वृक्ष को जल सिंचने की एक उचित विधि होती है—यह विधि है, वृक्ष की जड़ में पानी डालना। किन्तु यदि कोई इसके बदले पत्तियों तथा शाखाओं को सींचता है, तो वह व्यर्थ में अपना समय ही नष्ट करता है। यदि कोई व्यक्ति भगवान् विष्णु को छोड़कर देवताओं की पूजा करता है, तो उसे जो फल प्राप्त होगा वह केवल भौतिक होगा। *भगवद्गीता* (७.२३) में भगवान् कृष्ण द्वारा पुष्टि हुई है कि :

अन्तवत्तु फलं तेषां तद् भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान् देव यजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥

"अल्पबुद्धि वाले व्यक्ति देवताओं की पूजा करते हैं और उन्हें प्राप्त होने वाले फल सीमित तथा क्षणिक होते हैं। देवताओं की पूजा करने वाले देवलोक को जाते हैं, किन्तु मेरे भक्त अन्तत: मेरे परम धाम को प्राप्त होते हैं।"

देवताओं की पूजा अज्ञानियों के लिए है, क्योंकि देव-पूजा से मिलने वाले लाभ भौतिक, क्षणिक तथा परिवर्तनशील होते हैं। *पद्मपुराण* में यह भी कहा गया है कि :

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम्॥

"जो भी भगवान् विष्णु तथा देवताओं को समकक्ष मानता है, आध्यात्मिक ज्ञान के आधार पर उसको धूर्त ही मानना चाहिए।"

भौतिक जगत् में प्रकृति के तीन गुण हैं, किन्तु जब कोई अध्यात्म को प्राप्त होता है, तो वह इस भौतिक जगत् में रहते हुए भी तीनों गुणों से ऊपर होता है। जैसाकि भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* (१४.२६) में कहा है :

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

"जो समस्त परिस्थितियों में ऐकान्तिक भाव से पूर्ण भक्ति में प्रवृत्त होता है, वह तुरन्त ही भौतिक प्रकृति के गुणों को लाँघ जाता है और इस प्रकार ब्रह्म पद तक पहुँच जाता है।" भौतिक चेतना में कोई चाहे सत्त्वगुण के पद पर ही स्थित क्यों न हो, उसके रजो तथा तमो गुणों द्वारा कलुषित होने की सम्भावना बनी रहती है। जब सत्त्वगुण रजोगुण से मिला रहता है, तब मनुष्य सूर्यदेव विवस्वान की पूजा करता है। जब सत्त्वगुण तमोगुण से मिला रहता है, तब वह गणपति अथवा गणेश की पूजा करता है। जब रजोगुण तमोगुण से मिल जाता है, तब वह दुर्गा या काली की पूजा करता है, जो भगवान् की बहिरंगाशक्ति है। जब कोई तमोगुण को प्राप्त होता है, तब वह शिवजी का भक्त बन जाता है, क्योंकि शिवजी इस भौतिक जगत् में तमोगुण के अधिष्ठाता हैं। किन्तु जब कोई व्यक्ति भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के प्रभाव से सर्वथा मुक्त रहता है, तब वह भक्ति के स्तर पर शुद्ध वैष्णव बन जाता है। जैसाकि श्रील रूप गोस्वामी ने *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.१.११) में कहा है :

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

"मनुष्य को भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति अनुकूल भाव से और सकाम कर्मों या दार्शनिक चिन्तन द्वारा भौतिक लाभ प्राप्त करने की इच्छा के बिना करनी चाहिए। यह शुद्ध भक्ति कहलाती है।"

विशुद्ध सत्त्व की स्थिति अकलुषित सत्त्वगुण की स्थिति है। उस पद पर रहकर मनुष्य समझ सकता है कि—*आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनम्*—"नन्द महाराज के पुत्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को उनके दिव्य धाम वृन्दावन समेत पूजना चाहिए।"

इस श्लोक में आये शब्दों *सर्वमन्त्र विचारण* का अर्थ है, "विभिन्न प्रकार के मन्त्रों पर विचार करके।" विभिन्न प्रकार के भक्तों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के मन्त्र होते हैं। ऐसा मन्त्र भी होता है, जो द्वादशाक्षर कहलाता है और यह बारह अक्षरों का होता है। इसी प्रकार १८ अक्षरों वाला मन्त्र भी है। इसी तरह नृसिंह मन्त्र, राम मन्त्र, गोपाल मन्त्र आदि भी हैं। इनमें से प्रत्येक मन्त्र

की अपनी अपनी आध्यात्मिक महत्ता है। गुरु अपने शिष्य की विभिन्न मन्त्र जपने की क्षमता के अनुसार कोई एक मन्त्र चुनता है।

मन्त्र-अधिकारी, मन्त्र-सिद्ध्यादि-शोधन ।
दीक्षा, प्रातः-स्मृति-कृत्य, शौच, आचमन ॥ ३३१ ॥

मन्त्र-अधिकारी—मन्त्र दीक्षा प्राप्त करने का अधिकारी; **मन्त्र-सिद्धि-आदि**—मन्त्र की सिद्धि आदि; **शोधन**—शुद्धीकरण; **दीक्षा**—दीक्षा; **प्रातः-स्मृति-कृत्य**—प्रातः कृत्य तथा भगवान् का स्मरण; **शौच**—शुचि; **आचमन**—आचमन (मुख तथा अन्य अंगों को धोना)।

अनुवाद

"तुम्हें मन्त्र प्राप्त करने के लिए आवश्यक योग्यताएँ, मन्त्र की सिद्धि, मन्त्र की शुद्धि, दीक्षा, प्रातःकालीन कर्म, भगवान् का स्मरण, शुद्धता तथा मुख एवं शरीर के अन्य भागों की शुद्धता के विषय में चर्चा करनी चाहिए।

तात्पर्य

हरिभक्ति-विलास (१.१९४) में मन्त्र अधिकारी के विषय में निम्नलिखित आदेश प्राप्त है :

तान्त्रिकेषु च मन्त्रेषु दीक्षायां योषितामपि।
साध्वीनामधिकारोऽस्ति शूद्रादीनां च सद्धियाम्॥

"शूद्र तथा परम सत्य को जानने के लिए गम्भीर साध्वी स्त्रियाँ पांचरात्रिक मन्त्रों द्वारा दीक्षा प्राप्त करने के योग्य हैं।" इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (९.३२) में भगवान् कृष्ण द्वारा हुई है :

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिं।

"हे पार्थ, जो लोग मेरी शरण ग्रहण करते हैं, वे भले ही निम्न जन्मा—स्त्री, वैश्य तथा शूद्र—क्यों न हों, वे भी परम गन्तव्य को प्राप्त कर सकते हैं।"

यदि कोई सचमुच ही कृष्ण की सेवा करना चाहता है, तो उसके लिए

शूद्र, वैश्य या स्त्री होने से कोई व्यवधान नहीं पड़ता। यदि कोई निष्ठापूर्वक हरे कृष्ण मन्त्र या दीक्षा मन्त्र का जप करना चाहता है, तो *पाञ्चरात्रिक विधि* के अनुसार वह दीक्षा प्राप्त करने के योग्य है। किन्तु वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार, केवल ब्राह्मण जो वृत्तिपरक कर्म में पूरी तरह लगा रहता है, दीक्षित किया जा सकता है। शूद्रों तथा स्त्रियों को *वैदिक दीक्षा* में प्रवेश नहीं दिया जाता। जब तक गुरु की दृष्टि में कोई योग्य नहीं होता, तब तक वह पांचरात्रिक विधि या वैदिक विधि से मन्त्र स्वीकार नहीं कर सकता। जब वह मन्त्र ग्रहण करने के योग्य बनता है, तो उसे *पाञ्चरात्रिक विधि* या *वैदिक विधि* से दीक्षा दी जाती है। प्रत्येक दशा में परिणाम वही निकलता है।

मन्त्र-सिद्धि आदि शोधन अर्थात् मन्त्र की शक्ति के विषय में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने सोलह विभाग दिये हैं, जिनकी पुष्टि *हरिभक्ति-विलास* में (१.२०४ से प्रारम्भ होकर) की गई है।

सिद्धसाध्यसुसिद्धारिक्रमाज्ज्ञेयो विचक्षणैः

ये सोलह विभाग चार सिद्धान्तों के अनुसार विभाजित किए गये हैं : (१) सिद्ध, (२) साध्य, (३) सुसिद्ध तथा (४) अरि। इन चारों को पुनः विभाजित किया जा सकता है : (१) सिद्ध-सिद्ध, (२) सिद्ध-साध्य, (३) सिद्ध-सुसिद्ध, (४) सिद्ध-अरि, (५) साध्य-सिद्ध, (६) साध्य-साध्य, (७) साध्य-सुसिद्ध, (८) साध्य-अरि, (९) सुसिद्ध-सिद्ध, (१०) सुसिद्ध-साध्य, (११) सुसिद्ध-सुसिद्ध, (१२) सुसिद्ध-अरि, (१३) अरि-सिद्ध, (१४) अरि-साध्य, (१५) अरि-सुसिद्ध तथा (१६) अरि-अरि।

जो लोग अठारह अक्षरों वाले मन्त्र से दीक्षित किये जाते हैं, उन्हें उपर्युक्त सोलह विभाजनों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जैसाकि *हरिभक्ति-विलास* (१.२१५, २१९, २२०) में कहा गया है :

न चात्र शात्रवा दोषा नर्णस्वादिविचारणा।
ऋक्षराशिविचारो वा न कर्तव्यो मनौ प्रिये॥
नात्र चिन्त्योऽरिशुद्ध्यादिर्नारिमित्रादिलक्षणम्।
सिद्धसाध्यसुसिद्धारिरूपा नात्र विचारणा॥

मन्त्र का *शोधन* अर्थात् शुद्धीकरण होता है, किन्तु कृष्ण-मन्त्र में ऐसा कुछ

आवश्यक नहीं है। *बलित्वात् कृष्णमन्त्राणां संस्कारापेक्षणं न हि*—"कृष्ण-मन्त्र इतना प्रबल है कि उसके शोधन का प्रश्न ही नहीं उठता।" (१.२३५)

दीक्षा के लिए *मध्यलीला* (१५.१०८) देखनी चाहिए। जब मनुष्य *पाञ्चरात्रिक विधि* से दीक्षित हो जाता है, तो वह पहले ही ब्राह्मण-पद को प्राप्त हो चुका होता है। इसका आदेश *हरिभक्ति-विलास* (२.१२) में दिया हुआ है :

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्॥

"जिस तरह काँसे को पारे के उपचार से सोने में बदला जा सकता है, उसी तरह प्रामाणिक गुरु द्वारा दीक्षित शिष्य तुरन्त ही ब्राह्मण-पद को प्राप्त कर लेता है।"

दीक्षा का समय गुरु पर आश्रित है। ज्योंही संयोगवश या योजना के अधीन गुरु से भेंट हो, व्यक्ति को तुरन्त दीक्षा ग्रहण कर लेनी चाहिए। *तत्त्वसागर* नामक पुस्तक में कहा गया है कि :

दुर्लभे सद्गुरूणां च सकृत्संग उपस्थिते।
तदनुज्ञा यदा लब्धा स दीक्षावसरो महान्।
ग्रामे वा यदि वारण्ये क्षेत्रे वा दिवसे निशि
आगच्छति गुरुर्दैवाद् यथा दीक्षा तदाज्ञया।
यदैवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरूपतः
न तीर्थं न व्रतं हेमो न स्नानं न जपक्रिया।
दीक्षायाः करणं किन्तु स्वेच्छाप्राप्ते तु सद्गुरौ॥

"यदि संयोगवश किसी को सद्गुरु मिल जाता है, तो चाहे वह मन्दिर में हो या जंगल में इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि सद्गुरु अर्थात् प्रामाणिक गुरु मान जाए तो व्यक्ति को उपयुक्त समय या स्थान की प्रतीक्षा किये बिना तुरन्त ही दीक्षा ले लेनी चाहिए।"

प्रातः-स्मृति के लिए प्रातःकाल (*ब्राह्ममुहूर्त*) में उठना चाहिए और तुरन्त हरे कृष्ण-मन्त्र या कम से कम "कृष्ण कृष्ण कृष्ण" का उच्चारण करना चाहिए। इस तरह कृष्ण का स्मरण करना चाहिए। कुछ श्लोक या स्तुतियाँ भी उच्चारण की जानी चाहिए। कीर्तन करने से मनुष्य तुरन्त पवित्र हो जाता है और

भौतिक गुणों के दोष से ऊपर उठ जाता है। वस्तुत: मनुष्य को चौबीसों घण्टे या जितना अधिक से अधिक सम्भव हो, कृष्ण का कीर्तन और स्मरण करना चाहिए :

स्मर्तव्य: सततं विष्णुर्विस्मतव्यो न जातुचित्।
सर्वे विधिनिषेधा: स्युरेतयोरेव किङ्करा: ॥

"कृष्ण भगवान् विष्णु के उद्गम हैं। उनका सदैव स्मरण करना चाहिए और उन्हें क्षण-भर के लिए भी नहीं भुलाना चाहिए। शास्त्रों में उल्लिखित सारे नियम तथा निषेध इन दोनों नियमों के अधीन होने चाहिए।" यह उद्धरण *पद्म-पुराण* के *बृहत्-सहस्रनाम-स्तोत्र* नामक खण्ड में से है।

चैतन्य-चरितामृत के इस श्लोक में आये शब्द *प्रात:कृत्य* का अर्थ यह है कि प्रात: नित्य शौच के बाद स्नान करना चाहिए। मनुष्य को कुल्ला करना (*आचमन*) तथा दाँत साफ करना (*दन्त-धावन*) चाहिए। चाहे इसे दातुन से या ब्रश से करें—जो भी उपलब्ध हो। इससे मुँह साफ होगा। फिर स्नान करना चाहिए। वास्तव में गृहस्थों तथा वानप्रस्थों को दिन में दो बार स्नान करना चाहिए (*प्रातर्मध्याह्नयो: स्नानां वानप्रस्थगृहस्थयो:*)। संन्यासी को हररोज तीन बार स्नान करना चाहिए और ब्रह्मचारी केवल एक बार स्नान कर सकता है। जब कोई जल से स्नान न कर सके तो वह हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन द्वारा स्नान कर सकता है। उसे *सन्ध्यादि वन्दन* भी करना चाहिए—अर्थात् दिन में तीन बार—प्रात:, दोपहर तथा शाम को गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिए।

दन्त-धावन, स्नान, सन्ध्यादि वन्दन ।
गुरु-सेवा, ऊर्ध्व-पुण्ड्र-चक्रादि-धारण ॥ ३३२ ॥

दन्त-धावन—दाँत धोना; **स्नान**—स्नान करना; **सन्ध्या-आदि वन्दन**—सन्ध्या वन्दन (मन्त्रों का नियमित जप); **गुरु-सेवा**—गुरु की सेवा; **ऊर्ध्व-पुण्ड्र**—ऊर्ध्व दिशा में सीधा तिलक लगाना; **चक्र-आदि-धारण**—शरीर पर भगवान् के नाम तथा चिह्न बनाना।

अनुवाद

"तुम्हें यह वर्णन करना चाहिए कि प्रातःकाल नियमित रूप से भक्त किसी तरह अपने दाँत साफ करे, स्नान करे, भगवान् की स्तुति करे और गुरु को नमस्कार करे। तुम्हें इसका भी वर्णन करना चाहिए कि वह गुरु की सेवा कैसे करे और अपने शरीर के बारह स्थानों पर ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) लगाये और वह अपने शरीर पर भगवान् के पवित्र नामों को या भगवान् के चिह्नों—चक्र, गदा आदि—को कैसे अंकित करे।

गोपीचन्दन-माल्य-धृति, तुलसी-आहरण ।
वस्त्र-पीठ-गृह-संस्कार, कृष्ण-प्रबोधन ॥ ३३३ ॥
गोपीचन्दन-माल्य-धृति, तुलसी-आहरण ।
वस्त्र-पीठ-गृह-संस्कार, कृष्ण-प्रबोधन ॥ ३३३ ॥

गोपी-चन्दन—गोपीचन्दन (वृन्दावन तथा द्वारका में उपलब्ध); **माल्य**—गले में कंठीमाला; **धृति**—धारण करके; **तुलसी-आहरण**—तुलसी पत्र एकत्रित करना; **वस्त्र**—वस्त्र; **पीठ**—मन्दिर; **गृह**—घर; **संस्कार**—साफ करना; **कृष्ण-प्रबोधन**—भगवान् कृष्ण के विग्रह को जगाना।

अनुवाद

"इसके बाद तुम्हें यह वर्णन करना चाहिए कि भक्त को किस तरह शरीर को गोपीचन्दन से सजाना चाहिए, गले में कंठीमाला पहनना, तुलसी के पौधे से तुलसी दल एकत्र करना, अपने वस्त्र तथा वेदी को स्वच्छ करना, अपना घर साफ करना, मन्दिर जाना तथा किस तरह भगवान् कृष्ण का ध्यान आकृष्ट करने के लिए घंटा बजाना चाहिए।

पञ्च, षोड़श, पञ्चाशतुपचारे अर्चन ।
पञ्च-काल पूजा आरति, कृष्णेर भोजन-शयन ॥ ३३४ ॥
पञ्च, षोड़श, पञ्चाशत् उपचारे अर्चन ।
पञ्च-काल पूजा आरति, कृष्णेर भोजन-शयन ॥ ३३४ ॥

पञ्च—पाँच; **षोड़श**—सोलह; **पञ्चाशत्**—पचास; **उपचारे**—सामग्रियों के साथ;

अर्चन—अर्चना; **पञ्च-काल**—पाँच समय; **पूजा**—पूजा; **आरति**—आरती; **कृष्णेर भोजन-शयन**—कृष्ण को भोजन अर्पित करना तथा विश्राम करवाना।

अनुवाद

"इसके उपरान्त तुम श्रीविग्रह की पूजा का भी वर्णन करना, जिसमें दिन में कम से कम पाँच बार कृष्ण को भोजन अर्पित किया जाए; कृष्ण को निश्चित समय में सुलाया जाए। तुम पाँच, सोलह या पचास वस्तुओं की सूची के अनुसार भगवान् की पूजा तथा आरती करने की विधि का भी वर्णन करना।

तात्पर्य

अर्चाविग्रह की पूजा के लिए पाँच वस्तुएँ ये हैं (१) सुगन्ध, (२) उत्तम फूल, (३) अगुरु (अगरबत्ती), (४) दीपक तथा (५) कोई खाद्य वस्तु। *षोडशोपचार* में सोलह वस्तुएँ होती हैं (१) आसन अर्पण करना, (२) कृष्ण को बैठने के लिए कहना, (३) अर्घ्य अर्पण करना, (४) पादप्रक्षालन के लिए जल देना, (५) मुख धोना, (६) मधुपर्क अर्पण करना, (७) मुँह धोने के लिए पानी देना (आचमन), (८) स्नान कराना, (९) वस्त्र अर्पित करना, (१०) भगवान् के शरीर को आभूषणों से सजाना, (११) सुगन्ध अर्पित करना, (१२) सुगन्धित पुष्प—यथा गुलाब या चम्पक के फूल अर्पण करना, (१३) अगुरु (अगरबत्ती) भेंट करना, (१४) दीपक भेंट करना, (१५) अच्छा भोजन भेंट करना तथा (१६) स्तुति करना।

हरिभक्ति-विलास (ग्यारहवाँ विलास, श्लोक १२७-१४०) में श्रीविग्रह की पूजा के लिए जो-जो सामग्री चाहिए, उसका विस्तृत वर्णन किया गया है। उसमें चौंसठ वस्तुओं का वर्णन मिलता है। मन्दिर में पूजा इतनी भव्य होनी चाहिए कि भगवान् की तुष्टि के लिए चौसठों वस्तुएँ उपलब्ध हों। कभी-कभी चौसठों वस्तुएँ जुटा पाना कठिन हो जाता है, अतः हम यह संस्तुति करते हैं कि कम से कम स्थापना के प्रथम दिवस ये सभी वस्तुएँ उपलब्ध कराई जाएँ। भगवान् की स्थापना हो जाने के बाद जहाँ तक सम्भव हो सके, पूजा में इन चौंसठों वस्तुओं का प्रयोग चालू रखा जाए। ये चौंसठ वस्तुएँ हैं (१) मन्दिर कक्ष के सम्मुख एक बड़ा-सा घंटा लगाना चाहिए, जिससे आने

वाला हर व्यक्ति उस घंटे को बजा सके। यह *प्रबोधन* अर्थात् भगवान् के समक्ष अपने आपको विनयपूर्वक अर्पण करना कहलाता है। यह पहली वस्तु है। (२) दर्शक घंटा बजाते समय "जय श्री राधागोविन्द!" या "जय श्री राधामाधव!" कहे। प्रत्येक दशा में वह *जय* अवश्य कहे। (३) दर्शक तुरन्त दण्डवत् प्रणाम करे। (४) प्रातःकाल, सूर्योदय से डेढ़ घंटा पूर्व मन्दिर में नियम से *मंगल-आरती* हो। (५) वेदी के समक्ष *आसन* हो। यह आसन गुरु के लिए होता है। शिष्य सारी वस्तुएँ गुरु के समक्ष लाता है और गुरु सारी वस्तुएँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को अर्पित करता है। (६) मंगल आरती के बाद, अर्चाविग्रह को दाँत साफ करना होता है, इसलिए दातुन भेंट की जाए। (७) अर्चाविग्रह के चरण धोने के लिए जल दिया जाए। (८) अर्घ्य दिया जाए। (९) आचमन के लिए जल दिया जाए। (१०) *मधुपर्क* (एक कटोरे में शहद, थोड़ा घी, थोड़ा जल, थोड़ी चीनी, दही तथा दूध) दिया जाए। इसे मधुपर्क आचमन कहते हैं। (११) भगवान् के समक्ष खड़ाऊँ रखे जाएँ। (१२) भगवान् के शरीर की मालिश की जाए। (१३) भगवान् के शरीर पर तेल मला जाए। (१४) मुलायम गीले स्पंज से भगवान् के शरीर से तेल को पोंछा जाए। (१५) सुगन्धित जल से भगवान् को स्नान कराया जाए (जिसमें सुगन्धित पुष्पों को लम्बे समय तक डूबाये गये हों)। (१६) जल से स्नान कराने के बाद दुग्ध से स्नान कराया जाए। (१७) इसके बाद दही से स्नान कराया जाए। (१८) तब घी से स्नान कराया जाए। (१९) तब शहद से स्नान कराया जाए। (२०) तब चीनी घुले जल से स्नान कराया जाए। (२१) तब अर्चाविग्रह को जल से धोकर निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण किया जाए :

चिन्तामणिप्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम्।
लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

(२२) भगवान् के सारे शरीर को तौलिए से पोंछकर सुखायें। (२३) भगवान् के शरीर में नया वस्त्र पहनायें। (२४) जनेऊ पहनायें।

(२५) मुँह साफ करने के लिए जल दिया जाए (आचमन)। (२६) सुगन्धित तेल यथा चन्दन के गीले लेप को सारे शरीर पर मला जाए। (२७) शरीर में तरह तरह के आभूषण तथा मुकुट पहनाये जाएँ। (२८) तब फूल मालाएँ तथा अलंकरण के लिए फूल चढ़ाये जाएँ। (२९) अगुरु (अगरबत्ती) जलायें। (३०) दीपक भेंट करें। (३१) भगवान् के शरीर को असुर और नास्तिक लोग हानि न पहुँचायें, इसका ध्यान रखा जाए। (३२) भगवान् के समक्ष भोजन की भेंट रखी जाए। (३३) चबाने के लिए सुवासित मसाला प्रदान किया जाए। (३४) पान (ताम्बूल) दिया जाए। (३५) उचित समय पर भगवान् के शयन करने का प्रबन्ध हो। (३६) भगवान् के बालों को साजा-सँवारा जाए। (३७) सुन्दर वस्त्र प्रदान किये जाएँ। (३८) सुन्दर मुकुट दिया जाए। (३९) वस्त्रों को सुगन्धित बनाया जाए। (४०) कौस्तुभ मणि तथा अन्य आभूषण दिये जाएँ। (४१) तरह तरह के फूल दिये जाएँ। (४२) दूसरी मंगल आरती की जाए। (४३) दर्पण दिखाया जाए। (४४) सुन्दर पालकी में रखकर भगवान् को वेदी पर लाये जाए। (४५) भगवान् को सिंहासन पर बिठाये जाए। (४६) पादप्रक्षालन के लिए पुनः जल दिया जाए। (४७) खाने के लिए पुनः कुछ दिया जाए। (४८) संध्या आरती की जाए। (४९) चामर डुलाई जाए और भगवान् के सिर के ऊपर छाता ताना जाए। (५०) हरे कृष्ण मन्त्र तथा नियत भजन गाये जाएँ। (५१) वाद्ययन्त्र बजाये जाएँ। (५२) अर्चाविग्रह के समक्ष नृत्य किया जाए। (५३) अर्चाविग्रह की प्रदक्षिणा की जाए। (५४) पुनः नमस्कार किया जाए। (५५) भगवान् के चरणकमलों पर तरह तरह की स्तुतियाँ की जाएँ। (५६) सिर से भगवान् के चरणकमलों का स्पर्श किया जाए—यह प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किया जाना सम्भव न हो, तो पुजारी इसे अवश्य करे। (५७) पिछले दिन अर्पित किये गये पुष्पों का सिर पर स्पर्श किया जाए। (५८) भगवान् के शेष प्रसाद को ग्रहण करें। (५९) भगवान् के समक्ष बैठे और सोचे कि वह भगवान् के पैर दबा रहा है। (६०) भगवान् के शयन के पूर्व उनके बिस्तर को फूलों से सजायें। (६१) भगवान् को अपना हाथ अर्पण करें। (६२) अर्चाविग्रह को शय्या तक ले जायें। (६३) भगवान् के पाँव धोकर शय्या पर बिठायें। (६४) शय्या पर लिटाकर उनके पाँव दबायें।

प्रतिदिन अर्चाविग्रह की पाँच बार आरती की जाए—सूर्योदय के पूर्व, प्रातःकाल, दोपहर में, संध्या-समय तथा रात्रि में। इसका अर्थ यह है कि पूजा होनी चाहिए तथा वस्त्रों एवं फूलों को बदलते रहना चाहिए। जहाँ तक खाद्य वस्तुओं का सम्बन्ध है, व्यंजन उत्तमोत्तम होने चाहिए। इसमें उत्कृष्ट चावल, दाल, फल, खीर, तरकारियाँ, लेह्य, पेय तथा चबाने वाले पदार्थ होने चाहिए। अर्चाविग्रह को अर्पित होने वाले खाद्य अद्वितीय होने चाहिए। इस समय यूरोप तथा अमरीका में आर्थिक अभाव नहीं है। लोग निर्धन नहीं हैं, अतः यदि वे अर्चाविग्रह पूजा की इन विधियों का पालन करें, तो वे आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ सकते हैं। जहाँ तक विग्रह को बिस्तर पर रखने का प्रश्न है, यदि अर्चाविग्रह विशाल और भारी हों, तो प्रतिदिन उन्हें हिलाना-डुलाना कठिन होगा। अच्छा यही होगा कि छोटा सा अर्चाविग्रह जिसकी भी पूजा की जाती है, उन्हें सुलाया जाए। जिस मन्त्र का उच्चारण किया जाए वह है—*आगच्छ शयनस्थानं प्रियाभिः सह केशव*—"हे केशव, श्रीमती राधारानी समेत अपनी शय्या में कृपा करके आइये।" (हरिभक्ति-विलास ११.४०)

अर्चाविग्रह को श्रीमती राधारानी समेत शय्या में सुलाना चाहिए। इसका संकेत वेदी से खड़ाओं को शय्या के पास लाकर दिया जाता है। जब अर्चाविग्रह को लिटा दिया जाता है; तो उनके पाँव दबाये जाने चाहिए। सुलाने के पूर्व अर्चाविग्रह को एक गिलास दूध तथा चीनी पीने को दिया जाना चाहिए। इस गाढे दूध को ग्रहण करने के बाद अर्चाविग्रह को लिटा देना चाहिए और तब पान-सुपारी तथा मसाला खाने को देना चाहिए।

श्री-मूर्ति-लक्षण, आर शालग्राम-लक्षण ।
कृष्ण-क्षेत्र-यात्रा, कृष्ण-मूर्ति-दरशन ॥३३५॥
श्री-मूर्ति-लक्षण, आर शालग्राम-लक्षण ।
कृष्ण-क्षेत्र-यात्रा, कृष्ण-मूर्ति-दरशन ॥ ३३५ ॥

श्री-मूर्ति-लक्षण—श्रीविग्रह के लक्षण; **आर**—तथा; **शालग्राम-लक्षण**—शालग्राम शिला के लक्षण; **कृष्ण-क्षेत्र-यात्रा**—वृन्दावन, द्वारका तथा मथुरा जैसे तीर्थों की यात्रा; **कृष्ण-मूर्ति-दरशन**—मन्दिर के विग्रह के दर्शन।

अनुवाद

"उसमें अर्चाविग्रह तथा शालग्राम शिला के लक्षणों की विवेचना हो। मन्दिर में अर्चाविग्रहों के दर्शन तथा वृन्दावन, मथुरा तथा द्वारका जैसे पवित्र स्थानों की यात्रा करने की भी व्याख्या हो।

नाम-महिमा, नामापराध दूरे वर्जन ।
वैष्णव-लक्षण, सेवापराध-खण्डन ॥ ३३६ ॥

नाम-महिमा—हरिनाम की महिमा; **नाम-अपराध**—पवित्र नामजप में अपराध; **दूरे वर्जन**—सावधानीपूर्वक त्याग करना; **वैष्णव-लक्षण**—एक वैष्णव के लक्षण; **सेवा-अपराध-खण्डन**—श्रीविग्रह की आराधना में अपराध त्यागना।

अनुवाद

"तुम भगवन्नाम की महिमा का वर्णन करना और यह भी लिखना कि भगवन्नाम जपते समय होने वाले अपराधों का सावधानीपूर्वक त्याग करना चाहिए। तुम्हें वैष्णव के लक्षणों का वर्णन करना चाहिए। अर्चाविग्रह की पूजा करते समय होने वाले सभी प्रकार के अपराधों (सेवापराध) को त्याग देने या उन्हें निष्प्रभावित करने की भी विवेचना होनी चाहिए।

तात्पर्य

भक्त को हरे कृष्ण मन्त्र का जप करते समय होने वाले दस अपराधों से बचने के लिए अत्यन्त सावधान रहना चाहिए। यदि भक्त अर्चाविग्रह-पूजा की विधियों का दृढ़ता से पालन करता है, तो वह शीघ्र ही शुद्ध वैष्णव बन जाता है। शुद्ध वैष्णव को भगवान् पर अचल श्रद्धा होती है और वह रंचमात्र भी विचलित नहीं होता। वह सदैव अर्चाविग्रह पूजन में पूर्णतः लगा रहता है।

अर्चाविग्रह पूजा के विरुद्ध विशिष्ट अपराधों का भी उल्लेख करना चाहिए। इनका उल्लेख स्वयं व्यासदेव ने *स्कंद पुराण* (अवन्ती खण्ड) में किया है। मनुष्य को सभी प्रकार के अपराधों को समाप्त कर देना चाहिए।

जहाँ पर्याप्त मात्रा में तुलसी दल उपलब्ध हों, वहाँ शालग्राम शिला की

पूजा तुलसी दल से की जानी चाहिए। इस्कान के सारे मन्दिरों में शालग्राम शिला के पूजन का सूत्रपात होना चाहिए। शालग्राम शिला भगवान् की कृपा का रूप है। ऊपर बताई गई ६४ सामग्रियों से अर्चाविग्रह की पूजा करना कठिन कार्य हो सकता है, किन्तु भगवान् इतने लघु हो गये हैं कि कोई भी व्यक्ति किसी भी मन्दिर में शालग्राम शिला का पूजन करके वही कार्यकलाप सम्पन्न कर सकता है।

श्रीविग्रह की सेवा में बत्तीस अपराध इस प्रकार हैं, जिनसे बचना चाहिए—(१) सवारी पर चढ़कर मन्दिर में प्रवेश न करें। मन्दिर में प्रवेश करने के पूर्व जूते-चप्पल उतार दें। (२) अर्चाविग्रह को देखते ही नमस्कार करें। (३) स्नान करके मन्दिर में प्रवेश करें, अर्थात् मनुष्य को अत्यधिक स्वच्छ रहना चाहिए। (४) एक हाथ से भगवान् को नमस्कार न करें। (५) अर्चाविग्रह के सामने अन्य देवी-देवताओं की परिक्रमा न करें। (६) अर्चाविग्रह के समक्ष पाँव न पसारें। (७) अपने पाँवों को हाथ से न छुएँ। (८) अर्चाविग्रह के समक्ष लेटें नहीं। (९) अर्चाविग्रह के समक्ष खाये नहीं। (१०) अर्चाविग्रह के समक्ष झूठ न बोलें। (११) अर्चाविग्रह के समक्ष जोर से न बोलें। (१२) अर्चाविग्रह के समक्ष व्यर्थ की बातें न करें। (१३) अर्चाविग्रह के समक्ष रोये नहीं। (१४) अर्चाविग्रह के समक्ष अन्यों के साथ व्यवहार न करें। (१५) अर्चाविग्रह के समक्ष कटुवचन न बोलें। (१६) विग्रह के सामने कंबल न ओढ़ें। (१७) विग्रह के सामने अन्यों से ईर्ष्यालु होकर बातें न करें। (१८) विग्रह के सामने अन्यों की प्रशंसा न करें। (१९) विग्रह के सामने गाली-गलौज न करें। (२०) अर्चाविग्रह के सामने वायुत्याग न करें। (२१) अर्चाविग्रह की पूजा की चौंसठ वस्तुओं की उपेक्षा न करें। (२२) अर्चाविग्रह को भोग लगाये बिना कुछ न खायें। (२३) मौसमी फल उपलब्ध होने पर तुरन्त उन्हें भोग लगाने से न चूकें। (२४) अर्चाविग्रह को ताजे, अछूते फल अर्पित करें। (२५) अर्चाविग्रह की ओर पीठ करके न बैठें। (२६) अर्चाविग्रह के समक्ष अन्यों को नमस्कार न करें। (२७) अपने गुरु की अनुमति के बिना अर्चाविग्रह के निकट न बैठें। (२८) विग्रह के सामने आत्म-प्रशंसा सुनकर गर्वित न हों। (२९) देवताओं की निन्दा न करें। (३०) अर्चाविग्रहों के समक्ष अन्यों के प्रति

निष्ठुर न बनें। (३१) मन्दिर के सारे उत्सव मनायें। (३२) अर्चाविग्रह के समक्ष कलह न करें।

शङ्ख-जल-गन्ध-पुष्प-धूपादि-लक्षण ।
जप, स्तुति, परिक्रमा, दण्डवन्दन ॥ ३३७॥
शङ्ख-जल-गन्ध-पुष्प-धूपादि-लक्षण ।
जप, स्तुति, परिक्रमा, दण्डवत् वन्दन ॥ ३३७॥

शङ्ख—शंख को; **जल**—जल के; **गन्ध**—गन्ध या (अगरबत्ती); **पुष्प**—फूलों के; **धूप-आदि**—धूप आदि के; **लक्षण**—लक्षण; **जप**—जप; **स्तुति**—प्रार्थनाएँ; **परिक्रमा**—परिक्रमा; **दण्डवत्**—प्रणाम; **वन्दन**—वन्दनाएँ।

अनुवाद

"पूजा सामग्री—यथा जल, शंख, फूल, धूप (अगरबत्ती) तथा दीपक का वर्णन किया जाए। तुम धीरे धीरे जप करने, स्तुति करने, प्रदक्षिणा करने तथा नमस्कार करने का भी उल्लेख करना। इन सबका ठीक से वर्णन करना।

तात्पर्य

ये सारी बातें *हरिभक्ति-विलास* में वर्णित हैं। सम्भव हो तो इस ग्रन्थ के *अष्टम विलास* को देखना चाहिए।

पुरश्चरण-विधि, कृष्ण-प्रसाद-भोजन ।
अनिवेदित-त्याग, वैष्णव-निन्दादि-वर्जन ॥ ३३८॥
पुरश्चरण-विधि, कृष्ण-प्रसाद-भोजन ।
अनिवेदित-त्याग, वैष्णव-निन्दादि-वर्जन ॥ ३३८॥

पुरश्चरण-विधि—पुरश्चरण की विधियाँ; **कृष्ण-प्रसाद-भोजन**—कृष्ण को अर्पित भोजन का शेष खाना; **अनिवेदित-त्याग**—भगवान् को अर्पित न किए गये खाद्य का त्याग; **वैष्णव-निन्दा-आदि-वर्जन**—वैष्णव की निन्दा का पूर्णतया त्याग।

अनुवाद

"अन्य उल्लेखनीय बातें हैं—पुरश्चरण करने की विधि, कृष्ण-प्रसाद ग्रहण करना, अनिवेदित भोजन का त्याग तथा भगवद्भक्तों की निन्दा न करना।

तात्पर्य

वैष्णव-निन्दा के लिए *मध्यलीला* (१५.२६१) देखें।

साधु-लक्षण, साधु-सङ्ग, साधु-सेवन ।
असञ्जङ्ग-त्याग, श्री-भागवत-श्रवण ॥ ३३९॥

साधु-लक्षण, साधु-सङ्ग, साधु-सेवन ।
असत्सङ्ग-त्याग, श्री-भागवत-श्रवण ॥ ३३९॥

साधु-लक्षण—एक भक्त के लक्षण; **साधु-सङ्ग**—भक्तों का संग; **साधु-सेवन**—भक्तों की सेवा; **असत्-सङ्ग-त्याग**—अभक्तों के संग का त्याग; **श्री-भागवत-श्रवण**—नियमित रूप से *श्रीमद्भागवत* का श्रवण।

अनुवाद

तुम्हें भक्त के लक्षण, भक्तों की संगति करने की विधि, सेवा द्वारा भक्त को प्रसन्न करने की विधि तथा अभक्तों के संग का त्याग करने की विधि का वर्णन करना चाहिए। इसके उपरान्त नियमित रूप में श्रीमद्भागवत्-पाठ श्रवण के महत्त्व की भी व्याख्या होनी चाहिए।

दिन-कृत्य, पक्ष-कृत्य, एकादश्यादि-विवरण ।
मास-कृत्य, जन्माष्टम्यादि-विधि-विचारण ॥ ३४०॥

दिन-कृत्य, पक्ष-कृत्य, एकादश्यादि-विवरण ।
मास-कृत्य, जन्माष्टम्यादि-विधि-विचारण ॥ ३४०॥

दिन-कृत्य—दैनिक कृत्य; **पक्ष-कृत्य**—पक्ष कृत्य; **एकादशी-आदि-विवरण**—एकादशी आदि का विवरण; **मास-कृत्य**—प्रति मास के कर्तव्य; **जन्माष्टमी-आदि**—जन्माष्टमी आदि का पालन; **विधि**—विधि का; **विचारण**—विचार।

अनुवाद

"नित्य कर्तव्यों का वर्णन करना चाहिए और पाक्षिक कृत्य का भी—विशेषतया एकादशी व्रत रखने की विधि का भी वर्णन करना चाहिए। तुम्हें मासिक कृत्यों का, विशेषतया जन्माष्टमी, रामनवमी तथा नृसिंह-चतुर्दशी जैसे उत्सवों को मनाने का भी वर्णन करना चाहिए।

एकादशी, जन्माष्टमी, वामन-द्वादशी ।
श्री-राम-नवमी, आर नृसिंह-चतुर्दशी ॥३४१॥

एकादशी, जन्माष्टमी, वामन-द्वादशी ।
श्री-राम-नवमी, आर नृसिंह-चतुर्दशी ॥ ३४१ ॥

एकादशी—एकादशी व्रत; **जन्माष्टमी**—भगवान् कृष्ण का जन्मोत्सव; **वामन-द्वादशी**—भगवान् वामन का आविर्भाव दिवस; **श्री-राम-नवमी**—भगवान् रामचन्द्र का जन्मोत्सव; **आर**—तथा; **नृसिंह-चतुर्दशी**—भगवान् नृसिंह का आविर्भाव दिवस।

अनुवाद

"एकादशी, जन्माष्टमी, वामनद्वादशी, रामनवमी तथा नृसिंह-चतुर्दशी—इन सबका वर्णन करना चाहिए।

एइ सबे विद्धा-त्याग, अविद्धा-करण ।
अकरणे दोष, कैले भक्तिर लम्भन ॥३४२॥

एइ सबे विद्धा-त्याग, अविद्धा-करण ।
अकरणे दोष, कैले भक्तिर लम्भन ॥ ३४२ ॥

एइ सबे—ये सभी; **विद्धा-त्याग**—विद्धा या मिश्रित एकादशी का त्याग; **अविद्धा-करण**—शुद्ध एकादशी का पालन; **अकरणे दोष**—उन्हें न पालन करने के दोष; **कैले**—यदि किये जाएँ; **भक्तिर लम्भन**—भक्ति में कमियाँ आ जायेगीं।

अनुवाद

"तुम्हें संस्तुति करनी चाहिए कि मिश्रित एकादशी से बचा जाए और शुद्ध एकादशी मनाई जाए। तुम्हें इसके न मनाने से होने वाले दोष का भी वर्णन करना चाहिए। इन बातों के विषय में सतर्कता की आवश्यकता है। यदि सतर्क नहीं रहा जायेगा, तो भक्ति की उपेक्षा होगी।

सर्वत्र प्रमाण दिबे पुराण-वचन ।
श्री-मूर्ति-विष्णु-मन्दिर-करण-लक्षण ॥३४३॥

सर्वत्र प्रमाण दिबे पुराण-वचन ।
श्री-मूर्ति-विष्णु-मन्दिर-करण-लक्षण ॥ ३४३ ॥

सर्वत्र—सभी जगह; **प्रमाण**—प्रमाण; **दिबे**—तुम दो; **पुराण-वचन**—पुराणों से प्रमाण लेकर; **श्री-मूर्ति**—श्रीविग्रह; **विष्णु-मन्दिर**—विष्णु मन्दिर के; **करण-लक्षण**—निर्माण के लक्षण।

अनुवाद

"तुम वैष्णव-आचरण, वैष्णव-मन्दिरों तथा अर्चाविग्रहों की स्थापना के विषय में या अन्य बातों के विषय में जो भी कहो, उसकी पुष्टि पुराणों के प्रमाण से होनी चाहिए।

'सामान्य' सदाचार, आर 'वैष्णव'-आचार ।
कर्तव्याकर्तव्य सब 'स्मार्त' व्यवहार ॥ ३४४॥

'सामान्य' सदाचार, आर 'वैष्णव'-आचार ।
कर्तव्याकर्तव्य सब 'स्मार्त' व्यवहार ॥ ३४४॥

सामान्य—सामान्य; **सत्-आचार**—सदाचार; **आर**—तथा; **वैष्णव**—भगवान् विष्णु के भक्तों का; **आचार**—आचरण; **कर्तव्य-अकर्तव्य**—कर्तव्य और अकर्तव्य; **सब**—सब; **स्मार्त**—विधि-निषेध से युक्त; **व्यवहार**—व्यवहार।

अनुवाद

"तुम्हें वैष्णव के आचरण एवं कार्यों का सामान्य तथा विशिष्ट वर्णन प्रस्तुत करना चाहिए। तुम करणीय तथा अकरणीय बातों की भी रूपरेखा प्रस्तुत करो। इन सबका वर्णन विधि एवं शिष्टाचार के रूप में होना चाहिए।

এই সঙ্ক্ষেপে সূত্র কহিলুঁ দিগ্দরশন ।
যবে তুমি লিখিবা, কৃষ্ণ করাবে স্ফুরণ ॥ ৩৪৫॥

এই সঙ্ক্ষেপে সূত্র কহিলুঁ দিগ্দরশন ।
যবে তুমি লিখিবা, কৃষ্ণ করাবে স্ফুরণ ॥ ৩৪৫॥

এই—इस प्रकार; **सङ्क्षेपे**—संक्षेप में; **सूत्र**—संकेत; **कहिलुँ**—मैंने कहा है; **दिक्-दरशन**—थोड़ा सा निर्देशन; **यबे**—जब; **तुमि**—तुम; **लिखिबा**—लिखोगे; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **कराबे**—करेंगे; **स्फुरण**—प्रकट।

अनुवाद

"इस प्रकार मैंने वैष्णव विधि-विधानों की संक्षिप्त रूपरेखा दी है। मैंने यह सब संक्षेप में कहा है, जिससे तुम्हें कुछ निर्देश मिल सके। जब तुम इस विषय में लिखोगे, तो कृष्ण तुम्हें आध्यात्मिक रूप से जाग्रत करके तुम्हारी सहायता करेंगे।

तात्पर्य

कृष्ण तथा गुरु-शिष्य परम्परा के आशीर्वाद के बिना आध्यात्मिक विषयों पर लिखना सम्भव नहीं है। महाजनों के आशीर्वाद ही व्यक्ति के अधिकार-पत्र हैं। श्रेष्ठ जनों द्वारा अधिकृत किये बिना वैष्णव-आचरण तथा कार्यकलापों के विषय में लिखने का प्रयास नहीं करना चाहिए। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (४.२) द्वारा होती है—*एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।*

एइ त' कहिलु प्रभुर सनातने प्रसाद ।
याहार श्रवणे चित्तेर खण्डे अवसाद ॥३४६॥

एइ त' कहिलु प्रभुर सनातने प्रसाद ।
याहार श्रवणे चित्तेर खण्डे अवसाद ॥ ३४६ ॥

एइ त'—इस प्रकार; **कहिलु**—मैंने वर्णन किया है; **प्रभुर**—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; **सनातने**—सनातन गोस्वामी पर; **प्रसाद**—कृपा; **याहार श्रवणे**—जिसे सुनकर; **चित्तेर**—मन का; **खण्डे**—नष्ट हो जाता है; **अवसाद**—दुःख।

अनुवाद

इस प्रकार मैंने सनातन गोस्वामी पर श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा का वर्णन किया है। जब कोई इन कथाओं को सुनेगा, तो उसके हृदय के सारे कलुष धुल जायेंगे।

निज-ग्रन्थे कर्णपूर विस्तार करिया ।
सनातने प्रभुर प्रसाद राखियाछे लिखिया ॥३४७॥

निज-ग्रन्थे कर्णपूर विस्तार करिया ।
सनातने प्रभुर प्रसाद राखियाछे लिखिया ॥ ३४७ ॥

निज-ग्रन्थे—अपने ग्रन्थ में; **कर्णपूर**—कवि कर्णपूर ने; **विस्तार करिया**—विस्तारपूर्वक वर्णन करके; **सनातने**—सनातन गोस्वामी के प्रति; **प्रभुर**—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; **प्रसाद**—कृपा; **राखियाछे**—रखी है; **लिखिया**—लिखकर।

अनुवाद

प्रामाणिक कवि कवि-कर्णपूर ने चैतन्य-चन्द्रोदय-नाटक नामक एक ग्रन्थ लिखा है। इसमें बताया गया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने किस तरह अपनी विशेष कृपा से सनातन गोस्वामी को आशीर्वाद दिया।

गौड़ेन्द्रस्य सभा-विभूषण-मणिस्त्यक्त्वा य ऋद्धां श्रियं
रूपस्याग्रज एष एव तरुणीं वैराग्य-लक्ष्मीं दधे ।
अन्तर्भक्ति-रसेन पूर्ण-हृदयो बाह्येऽवधूताकृतिः
शैवालैः पिहितं महा-सर इव प्रीति-प्रदस्तद्विदाम् ॥ ३४८ ॥

गौड़-इन्द्रस्य—गौड़ देश (बंगाल) के राजा की; **सभा**—सभा के; **विभूषण**—आधारभूत; **मणिः**—हीरे को; **त्यक्त्वा**—त्यागकर; **यः**—जो; **ऋद्धाम्**—ऐश्वर्यपूर्ण; **श्रियम्**—राजसिक सुखभोग; **रूपस्य अग्रजः**—श्रील रूप गोस्वामी के बड़े भाई; **एषः**—यह; **एव**—अवश्य; **तरुणीम्**—युवती को; **वैराग्य-लक्ष्मीम्**—वैराग्य के धन को; **दधे**—स्वीकार किया; **अन्तः-भक्ति-रसेन**—कृष्ण-प्रेम के आन्तरिक रस से; **पूर्ण-हृदयः**—पूर्ण रूप से सन्तुष्ट; **बाह्ये**—बाहरी रूप से; **अवधूत-आकृतिः**—एक वैरागी का वेश; **शैवालैः**—काई से; **पिहितम्**—आवृत; **महा-सरः**—विशाल सरोवर या गहरा सरोवर; **इव**—जैसे; **प्रीति-प्रदः**—बहुत प्रसन्नता देने वाले; **तत्-विदाम्**—उनको जो लोग प्रेममयी सेवा के विज्ञान को जानते हैं।

अनुवाद

"श्रील रूप गोस्वामी के बड़े भाई श्रील सनातन गोस्वामी बंगाल के शासक हुसेन शाह की सरकार में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मन्त्री थे और वे उस सभा के अत्यन्त उज्ज्वल मणि माने जाते थे। उनके पास राजकीय पद का सारा ऐश्वर्य था, किन्तु उन्होंने वैराग्य की तरुणी देवी को अंगीकार करने

के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया। यद्यपि बाहर से वे ऐसे साधु लगते थे जिसने सर्वस्व त्याग दिया हो, किन्तु उनका हृदय भक्ति के आनन्द से ओतप्रोत था। इस तरह वे काई से आच्छादित गहरे सरोवर के समान थे। वे उन समस्त भक्तों के लिए आनन्द के विषय थे, जो भक्ति के विज्ञान को जानते थे।

तात्पर्य

यह श्लोक और आगे के दोनों श्लोक *चैतन्य-चन्द्रोदय-नाटक* (९.३४, ३५, ३८) से लिये गये हैं।

तं सनातनमुपागतमक्ष्णोर्
दृष्ट-मात्रमतिमात्र-दयार्द्रः ।
आलिलिङ्ग परिघायत-दोर्भ्यां
सानुकम्पमथ चम्पक-गौरः ॥ ३४९॥

तं सनातनमुपागतमक्ष्णोर्
दृष्ट-मात्रमतिमात्र-दयार्द्रः ।
आलिलिङ्ग परिघायत-दोर्भ्यां
सानुकम्पमथ चम्पक-गौरः ॥ ३४९॥

तम्—उनको; **सनातनम्**—सनातन गोस्वामी को; **उपागतम्**—आकर; **अक्ष्णोः**—आँखों से; **दृष्ट-मात्रम्**—मात्र देखकर; **अति-मात्र**—अत्यन्त; **दया-आर्द्रः**—दयावान; **आलिलिङ्ग**—गले लगा लिए; **परिघायत-दोर्भ्याम्**—अपनी दोनों भुजाओं से; **स-अनुकम्पम्**—अत्यन्त स्नेहवश; **अथ**—इसलिए; **चम्पक-गौरः**—चंपक फूल के समान रंग वाले श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

"जैसे ही सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष आये, वैसे ही वे उन्हें देखते ही दयार्द्र हो उठे। सुनहले चम्पक फूल के वर्ण वाले महाप्रभु ने अपनी बाँहों में भरकर उनका आलिंगन किया और अत्यधिक स्नेह व्यक्त किया।"

कालेन वृन्दावन-केलि-वार्ता
लुप्तेति तां ख्यापयितुं विशिष्य ।

कृपामृतेनाभिषिषेच देवस्
तत्रैव रूपं च सनातनं च ॥३५०॥
कालेन वृन्दावन-केलि-वार्ता
लुप्तेति तां ख्यापयितुं विशिष्य ।
कृपामृतेनाभिषिषेच देवस्
तत्रैव रूपं च सनातनं च ॥ ३५०॥

कालेन—कालक्रम में; **वृन्दावन-केलि-वार्ता**—वृन्दावन में भगवान् कृष्ण की लीलाओं के दिव्य रसों की वार्ता; **लुप्ता**—लुप्त प्राय; **इति**—इस प्रकार; **ताम्**—उन सबको; **ख्यापयितुम्**—वर्णित करने के लिए; **विशिष्य**—विशिष्ट करके; **कृपा-अमृतेन**—कृपा के अमृत से; **अभिषिषेच**—छिड़क दिया; **देवः**—भगवान्; **तत्र**—वहाँ; **एव**—वास्तव में; **रूपम्**—श्रील रूप गोस्वामी को; **च**—तथा; **सनातनम्**—सनातन गोस्वामी को; **च**—साथ ही।

अनुवाद

"काल के प्रभाव से वृन्दावन में कृष्ण-लीलाओं का दिव्य समाचार प्रायः विलुप्त हो चुका था। उन दिव्य लीलाओं प्रस्थापित करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी को अपनी कृपारूपी अमृत से शक्ति प्रदान की, जिससे वे वृन्दावन में यह कार्य पूरा कर सकें।"

एइ त' कहिलुँ सनातने प्रभुर प्रसाद ।
याहार श्रवणे चित्तेर खण्डे अवसाद ॥३५१॥
एइ त' कहिलुँ सनातने प्रभुर प्रसाद ।
याहार श्रवणे चित्तेर खण्डे अवसाद ॥ ३५१॥

एइ त'—इस प्रकार; **कहिलुँ**—मैंने वर्णन किया; **सनातने**—सनातन गोस्वामी के प्रति; **प्रभुर प्रसाद**—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा; **याहार श्रवणे**—जिसे सुनकर; **चित्तेर**—हृदय का; **खण्डे**—दूर हो जाता है; **अवसाद**—दुःख।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा सनातन गोस्वामी पर कृपा प्रदान करने का वर्णन किया है। यदि कोई इसे सुनेगा, तो उसके हृदय का सारा विषाद लुप्त हो जायेगा।

কৃষ্ণের স্বরূপ-গণের সকল হয় 'জ্ঞান' ।
বিধি-রাগ-মার্গে 'সাধন-ভক্তি'র বিধান ॥৩৫২॥

কৃষ্ণের স্বরূপ-গণের সকল হয় 'জ্ঞান' ।
বিধি-রাগ-মার্গে 'সাধন-ভক্তি'র বিধান ॥ ৩৫২॥

কৃষ্ণের স্বরূপ-গণের—ভগবান্ কৃষ্ণ का उनके विभिन्न विस्तारों में; **सकल**—समस्त; **हय**—होता है; **ज्ञान**—ज्ञान; **विधि-राग-मार्गे**—विधि साधना भक्ति या रागानुग प्रेम में; **साधन भक्तिर विधान**—भक्ति करने का प्रामाणिक उपाय।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी को दिये गये इन उपदेशों को पढ़कर कृष्ण के विविध अंशों तथा वैधी एवं रागानुगा भक्ति की विधियों से पूरी तरह अवगत हुआ जा सकेगा। इस तरह प्रत्येक वस्तु पूरी तरह से जानी जा सकती है।

'কৃষ্ণ-প্রেম', 'ভক্তি-রস', 'ভক্তির সিদ্ধান্ত' ।
ইহার শ্রবণে ভক্ত জানেন সব অন্ত ॥৩৫৩॥

'কৃষ্ণ-প্রেম', 'ভক্তি-রস', 'ভক্তির সিদ্ধান্ত' ।
ইহার শ্রবণে ভক্ত জানেন সব অন্ত ॥ ৩৫৩॥

कृष्ण-प्रेम—कृष्ण-प्रेम; **भक्ति-रस**—भगवत् सेवा के रस; **भक्तिर सिद्धान्त**—भक्ति के सिद्धान्त; **इहार श्रवणे**—यह अध्याय सुनकर; **भक्त**—भक्त; **जानेन**—जान जाता है; **सब**—सबकी; **अन्त**—सीमा।

अनुवाद

इन उपदेशों को पढ़कर शुद्ध भक्त कृष्ण-प्रेम, भक्ति-रस तथा भक्ति के निष्कर्ष को समझ सकता है। इन उपदेशों का अध्ययन करके हर व्यक्ति इन बातों के अन्तिम निष्कर्ष को अच्छी तरह समझ सकता है।

শ্রী-চৈতন্য-নিত্যানন্দ-অদ্বৈত-চরণ ।
যাঁর প্রাণ-ধন, সেই পায় এই ধন ॥৩৫৪॥

শ্রী-চৈতন্য-নিত্যানন্দ-অদ্বৈত-চরণ ।
যাঁর প্রাণ-ধন, সেই পায় এই ধন ॥ ৩৫৪॥

श्री-चैतन्य-नित्यानन्द-अद्वैत-चरण—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु के चरणकमल; **याँर प्राण-धन**—जिसके प्राण धन हैं; **सेइ**—ऐसा व्यक्ति; **पाय**—प्राप्त करता है; **एइ धन**—यह प्रेममयी सेवा के धन का भण्डार।

अनुवाद

इन उपदेशों के निष्कर्ष को वही जान सकता है, जिसके लिए श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु के चरणकमल ही जीवन तथा प्राण हैं।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे याँर आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ ३५५ ॥

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे याँर आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ ३५५ ॥

श्री-रूप—श्रील रूप गोस्वामी के; **रघुनाथ**—श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; **पदे**—चरणकमलों में; **याँर**—जिनकी; **आश**—आशा; **चैतन्य-चरितामृत**—*चैतन्य चरितामृत* नामक ग्रन्थ; **कहे**—वर्णन करते हैं; **कृष्णदास**—श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए एवं सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत की मध्यलीला के चौबीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें आत्माराम श्लोक तथा सनातन गोस्वामी पर महाप्रभु की कृपा का वर्णन हुआ है।